Birla Central Library
PILANI (Jaipur State)
Class No :- 329.5084
Book No :- S662ST V.2
Accession No :- 16467

REQUEST

IT IS EARNESTLY DESIRED THAT THE BOOK BE HANDLED WITH CARE AND BE NOT MARKED, UNDERLINED OR DISFIGURED IN ANY OTHER WAY, OTHERWISE IT WILL HAVE TO BE REPLACED OR PAID FOR BY THE BORROWER IN THE INTEREST OF THE LIBRARY

LIBRARIAN

TRIVANDRUM SANSKRIT SERIES.
No. XCVIII.

Śrî Setu Lakṣmî Prasâdamâlâ.

No. X.

# शिल्परत्नं

## श्रीकुमारप्रणीतम्

---

# THE ŚILPARATNA

OF

## ŚRÎ KUMÂRA

EDITED BY

K. SÂMBAŚIVA ŚÂSTRÎ,

*Curator of the Department for the Publication of Sanskrit Manuscripts, Trivandrum.*

---

**Part II.**

PUBLISHED UNDER THE AUTHORITY OF THE GOVERNMENT OF HER HIGHNESS THE MAHARANI REGENT OF TRAVANCORE.

---

TRIVANDRUM:
PRINTED BY THE SUPERINTENDENT, GOVERNMENT PRESS,
1929.

*All Rights Reserved.*]

TRIVANDRUM SANSKRIT SERIES.

No. XCVIII.

Śrî Setu Laksmi Prasadamala.

No. X.

# THE SILPARATNA

OF

## ŚRÎ KUMÂRA

EDITED BY

K. SĀMBAŚIVA ŚĀSTRĪ.

*Curator of the Department for the Publication of Sanskrit Manuscripts, Trivandrum.*

**Part II**

PUBLISHED UNDER THE AUTHORITY OF THE GOVERNMENT OF HER HIGHNESS THE MAHARANI REGENT OF TRAVANCORE.

TRIVANDRUM:

PRINTED BY THE SUPERINTENDENT, GOVERNMENT PRESS,

1929.

*All Rights Reserved.*]

अनन्तशयनसंस्कृतग्रन्थावलिः ।

ग्रन्थाङ्कः ९८.

श्रीसेतुलक्ष्मीप्रसादमाला ।

ग्रन्थाङ्कः १०.

# शिल्परत्नं

## श्रीकुमारप्रणीतं

संस्कृतग्रन्थप्रकाशनकार्याध्यक्षेण

के. साम्बशिवशास्त्रिणा

संशोधितम् ।

उत्तरो भागः ।

तच्च

अनन्तशयने

महामहिमश्रीसेतुलक्ष्मीमहाराज्ञीशासनेन

राजकीयमुद्रणयन्त्रालये तदध्यक्षेण

मुद्रयित्वा प्रकाशितम् ।

कोल्लम्वाब्दाः ११०४, क्रैस्ताब्दाः १९२९.

# PREFACE.

The second part of the Śilparatna consisting of 35 chapters deals with iconography and allied matters. This is a highly useful work for those who are interested in iconography and architecture. The science of Silpa founded by Matanga, Bhṛgu and other hoary sages was elaborately dealt with by Nārāyaṇa, Ravi and others; while in the Śilparatna Śrīkumāra has collected all the important subjects from the vast Silpa literature, at the instance of Devanārāyaṇa, an ancient ruler of Ambalappuzha (North Travancore). The verse in the beginning of the first part,

सम्पूज्यते सदसि भार्गवसृष्टभूभा-
गेऽस्मिन् बुधैः सकलशिल्पकथासु योऽसौ ।
तं मे नमामि पितरं भृगुवंशजातं
शश्वत् स्वपुत्रहितपूरणजागरूकम् ॥

as well as the closing colophon, श्रीरामपुत्रेण भार्गवगोत्रसंभूतभूदेवेन श्रीकुमारनामधेयेन श्रीदेवनारायणराजचूडामणिपादसेवकेन लिखितमिदम् । show that the author was a Kerala Brahmin belonging to Bhargava Gotra. In the preface to the first part, it is stated that the author lived at the close of the 16th century A. D., on the ground that he was a protege of Devanārāyaṇa who is said to have entertained in his court Nārāyaṇa Bhaṭṭa, the famous poet and grammarian of Kerala of the 16th century. However, as the word Devanārāyaṇa is known to be a title of the rulers of Ambalappuzha, the determination of the date of the author is, I think, in need of further evidences.

The word सेतूर्ध्वकानन mentioned in the verse,

नानाविशालगणितागमशिल्पशास्त्रा-
द्युत्पत्तिमुख्यभुवमद्भुतविक्रमाख्याम् ।
सेतूर्ध्वकाननिवासकृताधिवासां
वन्दे षडाननवतीं परदेवतां मे ॥

as the seat of the family deity of the author seems to be the Sanskritization of the Malayala Desa Chiramelkkatu. From a conversation with my friend Brahmasri Kanippayyar Sankaran Namburi, I come to learn that this Deśa is now found in Talapalli Taluk in Cochin State.

It is a matter of satisfaction for me that I have been able to edit the second part with more manuscript materials than before and thus realise the hope expressed in the preface

to the first part by Mahāmahopādhyāya Dr. T. Gaṇapati Śāstri, my illustrious predecessor in office viz., "An edition of the second part based on all available manuscripts will be published before long."

The edition of the work is based on four manuscripts.

1. (क) belonging to the Palace Library, Trivandrum about three centuries old.

2. (ख) lent by Brahmasri P. Narayanan Bhattatiri, Kuzhikkattu Illom, Tiruvalla, about a century old. A few chapters are missing in the middle in this manuscript.

3. (ग) lent by Brahmasri Kesavar Kesavar, Kalpakamangalam Manalikkara Matom, Padmanabhapuram, about two centuries old.

4. (घ) lent by Mr. Narayanan Nambiar, Olavur, Kunnatunad. It is about two centuries old and contains the four chapters from the 22nd to the 25th and the last chapter.

*Trivandrum,*
*24-12-1104.*

K. SĀMBAŚIVA ŚĀSTRI.

# निवेदना ।

उत्तरभागोऽयमितः प्रकाशितस्य **श्रीकुमार**कृतेः **शिल्परत्नस्य**, यो बिम्बसाधनादिशस्त्रलक्षणान्तैरध्यायैः पञ्चत्रिंशता सम्पुटितः।

**इदं च रत्नं** मान्त्रिकाणां तान्त्रिकाणां च सर्वदा हृदि धार्यं रुचिमत् किमप्यनर्घं भूषणम् । प्राक्तनैर्मतङ्गभृगुमुख्यैर्मुनिमुख्यैर्दृष्टम्, अर्वाक्तनैः **श्रीनारायणर**विप्रभृतिभिः पण्डितप्रकाण्डैर्घृष्टं, **श्रीकुमारेण** समुत्तेज्य संसाधितं, साम्प्रतिकश्रीवञ्चिराज्यान्तर्गतस्य **अम्बलप्पुळ**देशस्य पूर्वाधिपतिश्री**देवनारायण**सन्निधावुपहृतमद्य **अनन्तशयन**संस्कृतग्रन्थावलेरलङ्कारतामाधिगतमिति स एष आगमप्रकारोऽस्य **रत्नस्य**।

अस्य प्रणेता **श्रीकुमारः** पूर्वभागस्योपक्रमे —

"सम्पूज्यते सदसि भार्गवसृष्टभूभा-
गेऽस्मिन् बुधैः सकलशिल्पकथासु योऽसौ ।
तं मे नमामि पितरं भृगुवंशजातं
शश्वत् स्वपुत्रहितपूरणजागरूकम् ॥"
(पा० २. श्लो० ६)

इति,

उपसंहारे —

"**श्रीराम**पुत्रेण भार्गवगोत्रसम्भूतभूदेवेन **श्रीकुमार**नामधेयेन **श्रीदेवनारायण**राजचूडामणिपादसेवकेन लिखितमिदम्"

इति च दृश्यमानाभ्यां भागाभ्यां केरलीयः कोऽपि भृगुवंशाभिजनो भूदेव इति ज्ञायते । **श्रीदेवनारायणा**श्रयमात्रेण **प्रक्रियासर्वस्व**कार**श्रीनारायणभट्ट**पादोपजीव्यं **श्रीदेवनारायणं** सम्मत्य क्रिस्वब्दीयषोडशशतकान्तिमभागोऽस्य जीवितसमय इति पूर्वभागनिवेदनायां निरूपितं दृश्यते । इदं — "**अम्बलप्पुळ**-देशाधिपतीनां राज्ञां **देवनारायण**-स्यातिराधिपत्यस्थानप्रयुक्तैव न व्यक्तिप्रयुक्ते"ति प्रसिद्धेः प्रबलतरमुपष्टम्भकमन्यत् किमपि प्रमाणं प्रतीक्षमाणं मन्ये न सद्यो व्यवस्थापनमर्हति ।

"नानाविशालगणितागमशिल्पशास्त्रा-
द्युत्पत्तिमुख्यभुवमद्भुतविक्रमाढ्याम् ।
सेतूर्ध्वकाननिवासकृताधिवासां
वन्दे षडाननवतीं परदेवतां मे ॥"
(पूर्वभागः पा० १. श्लो० ४)

इत्येतद्घटक'सेतूर्ध्वकानन'पदस्यार्थपर्यालोचनायामस्य श्रीकुमारस्य देशसंज्ञा भाषाव्यपदेशे 'चिरमेक्काडु' इति प्रतिभाति । स चायं देशः कोचिराज्यान्तर्गते तलप्पळ्ळितालूरघटिते कस्मिंश्चिदुत्तरस्मिन् भाग इत्यस्मत्सुहृदां ब्रह्मश्रीकाणिप्पैयूर् शङ्करन्नम्पूरिमहाशयानां मुखतो भाषणाज्ज्ञायते ।

महामहोपाध्यायब्रह्मश्रीगणपतिशास्त्रिमहाशयैरध्यक्षचरैरस्मद्गुरुचरणैः पूर्वभागनिवेदनायां —

"उत्तरभागस्तु सर्वादर्शसम्पत्साह्येन संशोध्यानतिचिरेण प्रकाश्येत ।"

इति कृतां प्रतिज्ञां सफलयितुकामेन मया तदनुग्रहात् समुपलब्धैरादर्शैः संशोध्य प्रकाश्यमानोऽयमस्तु सतां प्रसादाय ।

एतत्संशोधनमादर्शांश्चतुरः समाश्रित्य निरवर्त्यत ।

तत्र प्रथमः—अनन्तशयनस्थमहाराजग्रन्थशालीयः क-संज्ञः समग्रः त्रिशतवर्षवृद्धः ।

द्वितीयः— तिरुवल्ला कुळिक्काट्टिलं ब्रह्मश्री पि. नारायणन्भट्टतिरिस्वामिकः ख-संज्ञः मध्ये लुप्तः वर्षशतकानधिकपर्युषितः ।

तृतीयः — कल्कुलं मणलिक्करमठाधिपतिब्रह्मश्री केशवस्वामिकः ग-संज्ञः समग्रो द्विशतवर्षेभ्यः प्राचीनः ।

तुरीयः — कुन्नत्तुनाटु ओळवूर् श्रीमन्नारायणन्नम्पियार्स्वामिकः घ-संज्ञः द्वाविंशतेरापञ्चविंशं चतुर्भिः, पञ्चत्रिंशेन चाध्यायैः सम्पुटितः द्विशतवर्षपर्युषितः ।

अनन्तशयनम्,
२४-१२-१०४.

के. साम्बशिवशास्त्री.

श्री

श्रीपद्मनाभसेवि-
न्यखिलश्रीवर्धनी महाराज्ञी ।
श्रीसेतुलक्ष्म्यभिख्या
प्रत्यक्षा जयति वश्चिभूलक्ष्मीः ॥

ग्रन्थावलिरियमिन्धे
प्रसाधिता तत्प्रसादगुणगुम्फा ।
श्रीसहितसेतुलक्ष्मी-
प्रसादमाला सुवर्णमणिचित्रा ॥

# विषयानुक्रमणी ।


| विषयः. | पृष्ठम्. |
|---|---|
| **प्रथमोऽध्यायः ।** | |
| **बिम्बादिसाधनविधिः १—७** | |
| मङ्गलाचरणम् | १ |
| शुभवेलायां लिङ्गसङ्ग्रहायाभिप्रयाणम् | ,, |
| निमित्तानि | २ |
| बिम्बानां सप्तप्रकारता | ३ |
| बिम्बार्थं शिलापरिग्रहः | ,, |
| शिलादोषाः | ४ |
| रत्नलिङ्गम् | ,, |
| लौहलिङ्गम् | ५ |
| दारवलिङ्गम् | ,, |
| आममार्त्तिकलिङ्गम् | ६ |
| पक्वलिङ्गम् | ,, |
| मिश्रलिङ्गम् | ,, |
| लेप्यलिङ्गम् | ,, |
| सैकतगौमयादिलिङ्गानि | ,, |
| लिङ्गपीठम् | ७ |
| **द्वितीयोऽध्यायः ।** | |
| **लिङ्गलक्षणम् ७—२२** | |
| सुखासनायष्टादश लिङ्गानि | ,, |
| लिङ्गविकल्पाः | ८ |
| लिङ्गप्रमाणानि | ,, |
| लौहलिङ्गविधिः | ११ |
| लिङ्गभेदाः | १३ |
| सर्वसमलिङ्गम् | १४ |
| सर्वतोभद्रादिलिङ्गानि | १५ |
| लिङ्गपीठविधौ छायादोषपरिहारः | १६ |
| पौष्करकारणोक्तलिङ्गविधानम् | १८ |
| लिङ्गशिरोवर्तनविधिः | १९ |
| बाणलिङ्गविधिः | २१ |
| **तृतीयोऽध्यायः ।** | |
| **लक्षणोद्धारविधिः २२—२८** | |
| लक्षणोद्धारः | २२ |
| मुखलिङ्गविधिः | २६ |
| योनिवारादिघटनापूर्वकं लिङ्गविधानम् | २८ |
| **चतुर्थोऽध्यायः ।** | |
| **प्रतिमोत्सेधविधिः २८—३४** | |
| सकलबिम्बोत्सेधविधिः | २८ |
| बहुबेरोत्सेधविधिः | ३० |
| गृहविधुक्तयोन्यादीनां बिम्बविधाव-प्यूहः | ३१ |
| कौतुकोच्चम् | ,, |
| तालनियमः | ३२ |
| **पञ्चमोऽध्यायः ।** | |
| **उत्तमदशतालललक्षणम् ३४—४५** | |
| **षष्ठोऽध्यायः ।** | |
| **मध्यमदशतालललक्षणम् ४५,४६** | |
| **सप्तमोऽध्यायः ।** | |
| **अधमदशतालललक्षणम् ४६—५०** | |
| **अष्टमोऽध्यायः ।** | |
| **उत्तमनवतालललक्षणम् ५० ६४** | |
| **नवमोऽध्यायः ।** | |
| **मध्यमनवतालललक्षणम् ६५—६८** | |
| **दशमोऽध्यायः ।** | |
| **अधमनवतालललक्षणम् ६९** | |
| **एकादशोऽध्यायः ।** | |
| **अष्टतालललक्षणम् ६९,७०** | |
| **द्वादशोऽध्यायः ।** | |
| **सप्ततालललक्षणम् ७०,७१** | |

| विषयः. | पृष्ठम्. |
|---|---|
| **त्रयोदशोऽध्यायः ।** | |
| **षट्तालललक्षणम् ७१** | |
| **चतुर्दशोऽध्यायः ।** | |
| **पञ्चतालललक्षणम् ७२—७४** | |
| उत्तमेन पञ्चतालेन विघ्नेशविधिः | ७२ |
| मध्यमेन पञ्चतालेन तद्विधिः | ७४ |
| **पञ्चदशोऽध्यायः ।** | |
| **चतुस्तालविधिः ७५,७६** | |
| मध्यमचतुस्तालविधिः | ७६ |
| **षोडशोऽध्यायः ।** | |
| किरीटकटकादिलक्षणम् ७६—८३ | |
| किरीटम् | ७६ |
| कुण्डलम् | ७८ |
| ग्रैवेयम् | ,, |
| कटकम् | ,, |
| केयूरम् | ,, |
| मुद्रिकाः | ७९ |
| वरदादिहस्तभेदाः | ,, |
| यज्ञोपवीतम् | ८० |
| उरःसूत्रम् | ,, |
| चन्द्रवीरम् | ,, |
| ग्रैवेयहारम् | ,, |
| अक्षमाला | ,, |
| स्कन्धमाला | ,, |
| कटिसूत्रम् | ,, |
| जालकम् | ८१ |
| भुजङ्गवलयम् | ,, |
| वस्त्रम् | ,, |
| धनुः | ,, |
| शरः | ,, |
| टङ्कः | ८२ |
| मृगः | ,, |
| चक्रम् | ,, |

| विषयः. | पृष्ठम्. |
|---|---|
| शङ्खः | ८२ |
| डमरुः | ,, |
| कमण्डलुः | ,, |
| पादाधस्तनं पद्मम् | ,, |
| नालम् | ,, |
| **सप्तदशोऽध्यायः ।** | |
| **शूलस्थापनलक्षणम् ८३—८७** | |
| लेप्यबिम्बे देवानां शूलविधानम् | ८३ |
| दृवीनां शूलविधानम् | ८६ |
| **अष्टादशोऽध्यायः ।** | |
| **रज्जुबन्धलक्षणम् ८७—९०** | |
| **एकोनविंशोऽध्यायः ।** | |
| **मृल्लेपनविधिः ९०—९४** | |
| **विंशोऽध्यायः ।** | |
| **देवीकुमारलक्षणम् ९४** | |
| **एकविंशोऽध्यायः ।** | |
| **वाहनलक्षणम् ९५—१०१** | |
| वृषलक्षणम् | ९५ |
| अश्वलक्षणम् | ९६ |
| गजलक्षणम् | ९९ |
| **द्वाविंशोऽध्यायः ।** | |
| **ध्याने शैवप्रकरणम् १०१—१२१** | |
| सुखासनलक्षणम् | १०१ |
| सोमास्कन्दलक्षणम् | १०२ |
| चन्द्रशेखरलक्षणम् | १०३ |
| वृषारूढलक्षणम् | १०४ |
| नवानां नृत्तमूर्तीनां लक्षणम् | ,, |
| गङ्गाधरलक्षणम् | १०८ |
| त्रिपुरान्तकलक्षणम् | ,, |
| कल्याणमूर्तिलक्षणम् | ११० |
| अर्धनारीश्वरलक्षणम् | १११ |
| गजघ्नमूर्तिलक्षणम् | ,, |

| विषयः | पृष्ठम् |
|---|---|
| पाशुपतलक्षणम् | ११२ |
| कङ्कालिलक्षणम् | ,, |
| हरिहरलक्षणम् | ११३ |
| भिक्षाटनलक्षणम् | ११४ |
| चण्डेशानुग्रहलक्षणम् | ११५ |
| धर्मव्याख्यानदक्षिणामूर्तिलक्षणम् | ,, |
| वीणाधरदक्षिणामूर्तिलक्षणम् | ११६ |
| ज्ञानदक्षिणामूर्तिलक्षणम् | ,, |
| योगदक्षिणामूर्तिलक्षणम् | ,, |
| कालारिलक्षणम् | ११७ |
| लिङ्गोद्भवलक्षणम् | ११८ |
| श्रीपञ्चाक्षरी | ,, |
| रुद्रः | ,, |
| प्रासादः | ११९ |
| प्रासादभेदः | ,, |
| मृत्युञ्जयः | ,, |
| शैवमष्टाक्षरम् | ,, |
| दक्षिणामूर्तिः | १२० |
| अघोरः | ,, |
| मृत्युञ्जयभेदः | ,, |
| चिन्तामणिः | ,, |
| अनुष्टुप् | ,, |
| संवादम् | ,, |
| शक्तिपञ्चाक्षरी | ,, |
| कालारिः | १२२ |
| किन्नरशिवः | ,, |
| रक्षोघ्नः | ,, |
| सद्योजातादिमूर्तयः | ,, |


## त्रयोविंशोऽध्यायः ।


ध्याने वैष्णवप्रकरणम् १२३—१३३

| | |
|---|---|
| अष्टाक्षरी | १२३ |
| गायत्री | ,, |
| श्रीकराष्टाक्षरम् | १२४ |
| सुदर्शनम् | ,, |
| निग्रहचक्रम् | १२४ |
| नृसिंहः | ,, |
| विदारणनृसिंहः | १२५ |
| तद्भेदः षडक्षरी | ,, |
| वराहः | ,, |
| तद्भेदः | ,, |
| चतुरक्षरी | ,, |
| धन्वन्तरिः | १२६ |
| तद्भेदः | ,, |
| हयग्रीवः | ,, |
| कार्तवीर्यः | ,, |
| श्रीपञ्चामृतम् | १२७ |
| सन्तानगोपालम् | ,, |
| तद्भेदः | ,, |
| आवहन्ती | ,, |
| पुरुषसूक्तम् | १२८ |
| लक्ष्मीनारायणम् | ,, |
| द्वाविंशत्यक्षरी | ,, |
| विंशत्यक्षरी | ,, |
| तद्भेदः | ,, |
| अष्टादशाक्षरी | १२९ |
| तद्भेदः | ,, |
| श्रीरामषडक्षरम् | ,, |
| रामध्यानभेदः | ,, |
| गोपालकभेदः | १३० |
| श्रीकराष्टाक्षरभेदः | ,, |
| धन्वन्तरिभेदः | १३१ |
| अष्टादशाक्षरीभेदः | ,, |
| वासुदेवादिचतुष्कम् | ,, |
| केशवाद्याः | १३२ |
| वराहभेदः | ,, |
| विश्वरूपम् | ,, |
| आयुधानि, पूजासु तेषां स्थानादिकं च | ,, |


## चतुर्विंशोऽध्यायः ।


ध्याने शाक्तप्रकरणम् १३३—१४५

| विषयः. | पृष्ठम्. |
|---|---|
| मूलदुर्गा | १३३ |
| लिपिः | १३७ |
| भुवनेश्वरी | ,, |
| हल्लेखा | १३५ |
| वागीश्वरी | ,, |
| श्रीः | ,, |
| त्वरिता | ,, |
| धूमावती | १३६ |
| काली | ,, |
| भेलखी | १३७ |
| मातङ्गी | ,, |
| शक्तिप्रणवः | ,, |
| वनदुर्गा | १३८ |
| त्रैलोक्यमोहिनी | १३९ |
| संवित | ,, |
| इन्द्राणी | ,, |
| स्वयंवरा | १४१ |
| प्राणशक्तिः | १४२ |
| अश्वारूढा | ,, |
| वज्रप्रस्तारिणी | ,, |
| नित्यक्लिन्ना | १४३ |
| श्रीसूक्तम् | ,, |
| त्रिपुटा | १४४ |
| त्रिपुरा | ,, |
| भूमिः | ,, |
| शूलिनी | १४५ |
| गायत्री | ,, |
| गायत्री त्रिष्टुप् | ,, |
| सौरी चतुरक्षरी | १४६ |
| अन्नपूर्णा | ,, |
| सप्तमातरः | ,, |
| श्रीचक्रप्रस्तारः | १४७ |

**पञ्चविंशोऽध्यायः ।**

इन्द्रादिदेवताध्यानप्रकरणम् १५०-१७३

| विषयः. | पृष्ठम्. |
|---|---|
| इन्द्रः | १५० |
| ऐन्द्री गायत्री | १५२ |
| ऐन्द्री त्रिष्टुप | १५३ |
| अग्निः | ,, |
| संवादाग्निः | ,, |
| समर्द्धिः | ,, |
| तद्भेदः | १५४ |
| रक्षोहाग्निः | ,, |
| यमः | ,, |
| निर्ऋतिः | १५५ |
| वरुणः | ,, |
| वायुः | ,, |
| धनदः | ,, |
| सोमः | १५५ |
| ब्रह्मा | १५६ |
| शेषः | ,, |
| महागणपतिः | ,, |
| बीजगणपतिः | १५८ |
| हेरम्बः | १५९ |
| बालगणपतिः | ,, |
| सुब्रह्मण्यः | ,, |
| नागयक्षी | १६० |
| शास्ता | ,, |
| प्रभा | १६१ |
| सत्यकः | ,, |
| अनुष्टुप्त्रयम् | ,, |
| शक्तिगणपतिः | १६२ |
| लक्ष्मीनारायणः | ,, |
| अर्धनारीश्वरः | ,, |
| शङ्करनारायणः | १६३ |
| सूर्यः | ,, |
| सौरमष्टाक्षरम् | ,, |
| कामः | १६४ |
| वीरभद्रः | ,, |
| हनूमान् | ,, |

| विषयः. | पृष्ठम्. |
|---|---|
| गरुडः | १६५ |
| अश्विनौ | १६६ |
| पितरः | ,, |
| अप्सरसः | ,, |
| सप्तर्षयः | १६७ |
| एकादशरुद्राः | ,, |
| क्षेत्रपालः | ,, |
| वामनः | १६८ |
| वराहः | ,, |
| नृसिंहः | १६९ |
| त्रिविक्रमः | ,, |
| मत्स्यमूर्तिः | ,, |
| कूर्मः | ,, |
| ब्रह्मा | १७० |
| कुमारः | ,, |
| नागः | ,, |
| असुराः | १७१ |
| दानवाः | ,, |
| पिशाचाः | ,, |
| वेताला: | ,, |
| नवग्रहाः | ,, |
| गृध्राः | १७३ |


## षड्विंशोऽध्यायः।


बिम्बदोषलक्षणम् १७४—१८२

| | |
|---|---|
| पुरुषलक्षणम् | १७४ |
| स्त्रीलक्षणम् | १८० |
| एतयोर्बिम्बविधावतिदेशः | १८२ |


## सप्तविंशोऽध्यायः।


पीठादिलक्षणम् १८२—१९१

| | |
|---|---|
| पद्मपीठम् | १८२ |
| नालः | ,, |
| पीठविधिः | १८३ |
| नागरम् | १८३ |
| वेसरम् | ,, |
| द्राविडम् | १८४ |
| मेरुसुन्दरम् | ,, |
| लक्ष्मीसुन्दरम् | १८५ |
| विष्णुसम्मीलनम् | ,, |
| पद्मभद्रम् | ,, |
| समाज्ञभद्रम् | ,, |
| रुद्रकान्तम् | १८६ |
| सोमकान्तम् | ,, |
| सर्वाज्ञभद्रकम् | ,, |
| श्रीकरम् | ,, |
| पुष्टिवर्धनम् | ,, |
| सौम्यम् | १८७ |
| शिवलिङ्गपीठावेधिः | ,, |
| पीठोपरिगतांशविभागः | १८७ |
| नालविधिः | ,, |
| पादशिला | १८८ |
| नागरादिब्रह्मशिला | १८९ |
| स्थानासनभेदेन पीठभेदः | १९० |


## अष्टाविंशोऽध्यायः।


प्रतिष्ठाविधानम् १९१—२०३

| | |
|---|---|
| प्रतिष्ठाविधिः | १९१ |
| बीजावापपात्रादिकल्पनिः | ,, |
| पालिकाघटिकाशरावाणां लक्षणम् | ,, |
| पीठोच्छ्रयः | १९२ |
| चतुरश्रकुण्डम् | १९३ |
| योनिरूपकुण्डम् | ,, |
| अर्धचन्द्राकारकुण्डम् | १९४ |
| त्रिकोणकुण्डम् | ,, |
| वृत्तकुण्डम् | ,, |
| षट्कोणकुण्डम् | ,, |
| अष्टदलकुण्डम् | १९५ |

| विषयः. | पृष्ठम्. |
|---|---|
| अष्टाश्रकुण्डम् | १९५ |
| स्रुवलक्षणम् | ,, |
| जुहूलक्षणम् | १९६ |
| महास्रुग्लक्षणम् | ,, |
| भद्रकलक्षणम् | ,, |
| चक्राब्जलक्षणम् | १९८ |
| शक्तिदण्डलक्षणम् | १९९ |
| षड्दललक्षणम् | ,, |
| स्वस्तिकभद्रम् | २०० |
| प्रतिष्ठास्थाननियमादिः | ,, |
| पीठप्रतिष्ठापूर्विका बिम्बप्रतिष्ठा | २०२ |

**एकोनत्रिंशोऽध्यायः ।**

**जीर्णोद्धारप्रकरणम् २०३—२०७**

| | |
|---|---|
| जीर्णोद्धारोद्देशः | २०३ |
| बालालयविधानम् | ,, |
| निष्कामणं सङ्कोचनं च | २०४ |
| जीर्णोद्धारे यथासम्भवं पूर्ववत् कल्पनम् | २०५ |

**त्रिंशोऽध्यायः ।**

**लिङ्गप्रासादकरणम् २०७— २०९**

**एकत्रिंशोऽध्यायः ।**

**मनुष्यालयलक्षणम् २०९ —२२६**

| | |
|---|---|
| प्रकृताध्यायप्रमेयनिर्देशः | २०९ |
| द्विजादिवर्णानां वेदिविस्तारायामादिविधानम् | २१० |
| वृतिवप्रादिविधिः | २११ |
| सूत्रवांध्यादिनिर्णयः | २१२ |
| योन्यादयः | २१३ |
| त्रिशालविधानम् | २१४ |
| द्विशालविधानम् | २१५ |
| चतुःशालविधानम् | ,, |
| शालाभेदाः | २१६ |
| द्वारविधानम् | ,, |

| विषयः. | पृष्ठम्. |
|---|---|
| उपगृहविधिः | २१७ |
| द्वारमानम् | ,, |
| अन्यथा चतुश्शालविधानम् | २१८ |
| प्रकारान्तरेण षोडश गेहानि | २१९ |
| स्तम्भसंख्याप्रमाणतो बहुविधनृपगेहविधिः | २२० |
| तेषामुपगृहविधानम् | २२२ |
| वास्तुबलिः | २२३ |
| राज्ञां गृहप्रवेशः | २२५ |

**द्वात्रिंशोऽध्यायः ।**

**कूपप्रश्नविधानम् २२६—२२८**

**त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ।**

**आसनादिपरिच्छदलक्षणम् २२८—२४४**

| | |
|---|---|
| आसनविधिः | २२८ |
| व्यजनम् | २२९ |
| छत्रम् | २३० |
| पर्यङ्कः | २३१ |
| पञ्च वाहनानि | २३३ |
| तत्र डोला | ,, |
| सुखासनम् | ,, |
| रथः | २३४ |
| नौः | ,, |
| प्लवकः | ,, |
| शयनसाधनम् | २३५ |
| अष्टविधा शय्या | ,, |
| तत्र दन्ताङ्घ्रिनाम मञ्चः | २३६ |
| लोहचरणः | ,, |
| अष्टापदमयः | ,, |
| अचलः | ,, |
| चलः | ,, |
| वेत्रकः | ,, |
| पट्टिकामयः | ,, |
| डोलाख्यः | ,, |

| विषयः. | पृष्ठम्. |
|---|---|
| मञ्चोपधानविधानम् | २३७ |
| पादुकम् | ,, |
| कुड्डवादिमानसाधनम् | ,, |
| उलूखलादि | २३८ |
| तुला | २३९ |
| तैलद्रोणिः | ,, |
| जलयन्त्रम् | ,, |
| इक्षुयन्त्रम् | २४१ |
| नाडीयन्त्रम् | २४२ |
| स्वर्णकीलम | २४३ |

**चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ।**

कर्मकारवेतनाक्रमः २४४—२४६

| विषयः. | पृष्ठम्. |
|---|---|
| दारुखण्डिमूल्यज्ञानम् | २४४ |
| ऋकचवेतनम् | २४५ |
| शिलादारणश्लक्ष्णकिरणादीनां वेतनम् | ,, |
| बिम्बादिनिर्माणे वेतनम् | २४६ |
| लौहभूषादिक्रियाया वेतनम् | ,, |

**पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ।**

शस्त्रलक्षणम् २४७—२५१

| | |
|---|---|
| शस्त्रप्रश्नः | २४७ |
| धनुर्लक्षणम् | २५० |
| ग्रन्थसमाप्तिः | २५१ |

॥ श्रीः ॥

श्रीकुमारप्रणीतं

# शिल्परत्नम् ।

(उत्तरभागः ।)

---

अनन्तकोटिब्रह्माण्डेष्वखिलेष्वाततः क्रमात् ।
निःशेषविश्वकर्ता यः स जीयान्मधुसूदनः ॥ १ ॥
अथ बिम्बादिपीठादिकुण्डमण्डलकादिकम् ।
मानुषाणां चतुश्शालाद्यखिलं वक्तुमारभे ॥ २ ॥

तत्र पूर्वं शिलादिबिम्बसाधनम् ।

एवं कृत्वा मन्दिरं मन्मथारेः
सार्धं दक्षैः शिल्पिभिः शस्त्रहस्तैः ।
आचार्योऽसौ शुक्लपक्षे मुहूर्ते
शुद्धे विप्रान् भोजयित्वा यथार्हम् ॥ ३ ॥

संपूज्य वस्त्रैः स्थपतींश्च दक्षा-
नाराध्य देवं प्रणिपत्य भूयः ।
कृत्वास्त्रयागं परिपूज्य शस्त्रा-
ण्यस्त्रेण लिङ्गार्थमभिप्रयच्छेत् ॥ ४ ॥

परीक्ष्य पूर्वाभिमुखो निमित्तं
गच्छेन्निमित्तेऽथ शुभे प्रदिष्टे ।

G. P. T. 1254. 500. 8-11-1103 B

नीत्वा च मासं शकुनेऽशुभे चेत्
कृत्वा तदानीं शुभकर्म गच्छेत् ॥ ५ ॥

ज्वलदग्निप्रभं दीपं वृषा वेश्याश्च कन्यकाः ।
पुष्पान्नपूर्णकुम्भाज्यशङ्खक्षीरदधीनि च ॥ ६ ॥

व्रीहयः शालयो मांसं मधुच्छत्रं च चामरम् ।
मङ्गल्यो योषितो राजा ध्वजः पूर्णधनूंषि च ॥ ७ ॥

क्षीरिणी गौस्तुरङ्गाश्च दृश्यन्तेऽभिमुखं यदा ।
यातुरिष्टार्थसिद्ध्यै स्यात् सुतरां तत् प्रदक्षिणम् ॥ ८ ॥

गौलिकावायसरुतं प्रयाणे वामतः शुभम् ।
प्रवेशे दक्षिणे शस्तं क्षुतं ह्यादावशोभनम् ॥ ९ ॥

अन्यत्र पृष्ठे वामे च शस्तं नृणां च कूजितम् ।
स्यात्तांसि(?) भरटादीनां वामे शस्तं तु दक्षिणे ॥

गानं च दिशि शान्तायां पिङ्गलानां द्वयं हितम् ।
सृगालवायसौ व्याघ्राश्चकोरश्च कपोतिका ॥ ११ ॥

वामाद् दक्षिणगाः शस्ताः फणी सर्वत्र निन्दितः ।
शशकौशिकगृध्राश्च श्येनाश्च मृगडुण्डुभाः ॥ १२ ॥

दक्षिणाद् वामगाः शस्ताः शुभा वाचः शुभप्रदाः ।
बालेयगोध्वनिर्वामे गतिर्दक्षिणतः शुभा ॥ १३ ॥

अशनिर्दुर्दिनं[२] वर्ष[३] प्रतिकूलास्तथा गिरः ।
प्रतिकूलं गुरोर्वाक्यं कलहश्चेति निन्दिताः ॥ १४ ॥

ताडनं शिरसोऽङ्गानां दक्षिणाङ्घ्रेर्विशेषतः ।
वर्णवाहनवेषाणां मनःशस्त्रदिशामपि ॥ १५ ॥

---

१. 'त्ता' ग. पाठः. २. 'र्दिनं' ख. पाठः. ३. 'र्गं' ख. ग. पाठः.

अप्रसादोऽथ दिग्दाहपरिवेषाः शिवारुतम्।
चन्द्रसूर्योपरागोल्काभूकम्पेन्द्रधनूंषि च ॥ १६ ॥
वृक्षध्वजायुधच्छत्रयानभङ्गा विनिन्दिताः।
चक्रिक्षपणनग्नाश्च मुण्डितामङ्गलाङ्गनाः ॥ १७ ॥
विप्रास्तपस्विनो व्रात्या यतयो वामनादयः।
विकला जालिकाः सूनाः पाषण्डा दण्डपाणयः ॥ १८ ॥
कापालिकाः काष्ठधरा मुक्तकेशाश्च दुःखिनः।
आर्द्रवस्त्राश्च निन्द्याः स्युर्दृष्टाः प्रतिमुखागताः ॥ १९ ॥
अद्भुतेषु निमित्तेषु मासं नीत्वा शुभे व्रजेत्।
शिलामयं मणिमयं लौहं दारुमयं तथा ॥ २० ॥
मृन्मयं मिश्रकं लेख्यं बिम्बं सप्तविधं स्मृतम्।
तेषामभिमतं द्रव्यं शिलाद्यं बहुशिक्षितम् ॥ २१ ॥
गत्वान्विष्यानयेत् तत्तदुचितं लक्षणान्वितम्।
ब्राह्मणक्षत्रविट्छूद्रशिलाः स्युर्धवलारुणाः ॥ २२ ॥
पीताः कृष्णाश्च लिङ्गानि कुर्यात् ताभिर्यथाक्रमम्।
सर्वेषामथवा सर्वाः शिलाः स्युरिति केचन ॥ २३ ॥
मुक्तिं जयं धनं धान्यं दद्युः शुक्लादिकाः शिलाः।
उद्धृत्य संस्थिता तत्र (याद्दृ?यां दि)शं वीक्षते शिला ॥
तामेव प्रतिमां गेहे पश्यन्तीं स्थापयेद् दिशम्।
बिम्बार्थं पुंशिला ग्राह्या पीठार्थं स्त्रीशिला तथा ॥ २५ ॥
नपुंसकशिला पादशिलार्थमखिले मता।
यथोचितां शिलां दृष्ट्वा बलिं दत्त्वा यथाविधि ॥ २६ ॥

हेमसूच्यष्टलाभ्यां तु छित्त्वोद्धृत्याङ्कयेत् ततः ।
अन्तर्बहिश्चाग्रमूलप्रदेशे पुनरानयेत् ॥ २७ ॥

स्त्रीशिलाकल्पिते लिङ्गे राष्ट्रं राजा च नश्यति ।
पुंशिलाकल्पिते पीठे लिङ्गे पीठे च षण्ढके ॥ २८ ॥

स्त्रिया पुंसा च भूपीठे कृते स्याद् राष्ट्रनाशनम् ।
एवं विज्ञाय तद्योग्यामानयेदम्बरावृतम् ॥ २९ ॥

एवं कृत्वा समारोप्य रथं नीत्वा शिवालयम् ।
कौबेर्यां दिशि संस्थाप्य लिङ्गं सम्यक् प्रकल्पयेत् ॥ ३० ॥

अथ रत्नानि ।

स्फटिकं पद्मरागं च वज्रं नीलं हिरण्मयम् ।
वैडूर्यं विद्रुमं पुष्यं रत्नबिम्बं तथाष्टधा ॥ ३१ ॥

स्फटिकं सूर्यकान्तं च चन्द्रकान्तमिति त्रिधा ।
स्फटिकस्यैव भेदाः स्युः काममोक्षार्थदाः क्रमात् ॥ ३२ ॥

श्रियं कामं तथारोग्यमृद्धिं पुत्रं जयं सुखम् ।
लभते पद्मरागादिबिम्बानां क्रमशोऽर्चनात् ॥ ३३ ॥

माणिक्यं च दिवाकरस्य शशिनो मुक्ताफलं विद्रुमं
भौमस्येन्दुसुतस्य वै मरतकं तत् पुष्यरागं गुरोः ।
वज्रं दैत्यगुरोर्दिवाकरभुवो नीलं च गोमेदकं
राहोर्यद् ग्रहरत्नकं शृणु सखे ! केतोश्च वैडूर्यकम् ॥ ३४ ॥

रत्नानामिह सर्वेषां दोषाः सामान्यतो नव ।
रेखा बिन्दुः कलङ्कश्च काकाङ्घ्रिक्षतधूलयः ॥ ३५ ॥

तुषारत्रासरन्ध्राणि यत्नाद् रत्नेषु वर्जयेत् ।
रेखा बिन्दुः कलङ्कं च त्रासः काकपदं क्षतम् ॥ ३६ ॥
खद्योतो मक्षिका छायाभेदाः सन्धि[1]तुषारके ।
निम्नमस्तकता चेति दोषा रत्नभवास्तथा ॥ ३७ ॥
स्त्रीपुंनपुंसकभिदा न स्याद् रत्नेषु सर्वतः ।

अथ लोहम् ।

सौवर्णं राजतं ताम्रं पैत्तलं कांस्यमायसम् ॥ ३८ ॥
सैसकं त्रापुषं चेति लौहं बिम्बं तथाष्टधा ।
भुक्तिमुक्तिप्रदं हैमं लिङ्गं रौप्यं तु पुष्टिदम् ॥ ३९ ॥
ताम्रजं पुत्रदं विद्यात् तथैव स्यात् तु पैत्तलम् ।
आयुरारोग्यदं कांस्यमायसं मारणं स्मृतम् ॥ ४० ॥
सैसकं त्रापुषं चापि विद्वेषोच्चाटनादिषु ।
मुख्यलोहानि चत्वारि हेमादीनि शुभानि हि ॥ ४१ ॥
पिशाचलोहान्यन्यानि कांस्यादीनीति केचन ।

अथ दारुः ।

चन्दनं देवदारुश्च शमीपिप्पलशिंशपाः ॥ ४२ ॥
खदिरासनमालूरमधूका बकुलस्तथा ।
पद्मकं कर्णिकारं च विप्रादीनां त्रयं त्रयम् ॥ ४३ ॥
क्रमाद् दारवलिङ्गानां विज्ञेयास्तरवः शुभाः ।

अथ मृदः ।

तीर्थक्षेत्राचलारामपुण्यदेशोद्भवां मृदम् ॥ ४४ ॥

१. 'न्ति' ख. ग. पाठः.

शुक्लां रक्तां तथा पीतां कृष्णामादाय चूर्णयेत् ।
यवगोधूममाषाणां चूर्णानां गुग्गुलोरपि ॥ ४५ ॥
लाक्षाश्रीवेष्टकश्यामासर्जानां च समांशकैः ।
कुन्दुरिक्षस्य चांशेन मृच्चूर्णं सर्वसम्मतम ॥ ४६ ॥
कपिलापञ्चगव्येन सतैलेन तु मर्दयेत् ।
तां मृदं मर्दितां पक्षं मासमात्रोषितां पुनः ॥ ४७ ॥
गृहीत्वा कारयेल्लिङ्गं सपीठं लक्षणान्वितम् ।
मासं तु शोषयेद् घर्मे बिम्बमानं तु मार्त्तिकम् ॥ ४८ ॥
अथवा केवलां मृत्स्नां कर्मयोग्यां विचूर्णिताम् ।
मर्दितां पञ्चगव्याद्रिर्मासमात्रं तथोषिताम् ॥ ४९ ॥
गृहीत्वा कारयेल्लिङ्गं सपीठं त्विष्टमानतः ।
विपचेत कुशलैरग्नौ पक्वलिङ्गं तु तद् भवेत ॥ ५० ॥
कृत्वा दारुमयं शूलं लोहपट्टविभूषितम् ।
मृदा विधिवदालिप्य शोषयेन्मिश्रलिङ्गकम् ॥ ५१ ॥
भित्त्यादावालिखेद् वर्णैर्लेख्यबिम्बं यथोदितम् ।
मृन्मयं वार्क्षिकं बिम्बं सर्वसिद्धिप्रदं सदा ॥ ५२ ॥
मृन्मये हेमरत्नानि मध्ये संस्थाप्य कारयेत् ।
सैकतं गौमयं पैष्टमाज्यं गौलं फलात्मकम् ॥ ५३ ॥
नावनीतं च लिङ्गानि त्यज्यतां प्रतिवासरम् ।
नैतेषां पीठिका कार्या कुर्याल्लिङ्गं तदासने ॥ ५४ ॥
नैषां त्रिखण्डमानं वा न शिरोवर्तनादिकम् ।
नैषां कालं मुहूर्ताद्यं नाधिवासादिकाः क्रियाः ॥ ५५ ॥

निर्माय सद्यस्तल्लिङ्गे शिवमावाह्य पूजयेत् ।
विसृज्य निरपेक्षं तल्लिङ्गमप्सु विनिक्षिपेत् ॥ ५६ ॥

अथ पीठम् ।

स्वयोनिः पीठिकैव स्याच्छैलादीनामदूषणा ।
अभावे त्वैष्टकी शैले रत्नजानां हिरण्मयी ॥ ५७ ॥

राजती ताम्रजा वा स्याच्छ्रेष्ठमध्याधमक्रमात् ।
न्यूनैर्वा परलोहानामिष्टकाभिश्च दारवे ॥ ५८ ॥

इति शिल्परत्नेऽन्त्यभागे बिम्बादिसाधनविधिर्नाम
प्रथमोऽध्यायः ॥

---

अथ द्वितीयोऽध्यायः ।

अथ लिङ्गलक्षणम् ।

सुखासनं तु प्रथमं स्कन्दोमासहितं ततः ।
तृतीयं चन्द्रमूर्धानं चतुर्थं वृषवाहनम् ॥ १ ॥

पञ्चमं नृत्तमूर्तिस्तु गङ्गाधरमतः परम् ।
सप्तमं त्रिपुरारिः स्यात् ततः कल्याणसुन्दरम् ॥ २ ॥

अर्धनारीश्वरं पश्चाद् दशमं गजहा तथा ।
एकादशं पाशुपतं कङ्कालं द्वादशं स्मृतम् ॥ ३ ॥

अर्धनारायणं पश्चाद् भिक्षाटनमतः परम् ।
चण्डेश्वरप्रसादं तु दक्षिणामूर्तिरेव च ॥ ४ ॥

ततः कालारिमूर्तिश्च लिङ्गमष्टादशं स्मृतम् ।
एवं लिङ्गोद्भवं पूर्वैः प्रोक्तं शैवपरायणैः ॥ ५ ॥

१. 'दि' ग. पाठः.

अथ बिम्बं तु त्रिविधं निष्कलं सकलं तथा ।
मिश्रं चेति च तद् बिम्बमचलं च चलं तथा ॥ ६ ॥
चलाचलमिति त्रेधा तत्प्रपञ्चः प्रदर्श्यते ।
निष्कलं केवलं लिङ्गमन्यत्त्ववयवान्वितम् ॥ ७ ॥
तदेव चित्रमर्धाङ्गदर्शनं त्वर्धचित्रकम् ।
चित्राभासं तथा लेख्यमुत्तमादिक्रमेण तु ॥ ८ ॥
सकलं त्रिविधं ज्ञेयं मिश्रलक्षणलक्षितम् ।
मिश्राख्यं मुखलिङ्गं स्यादचलादिकमुच्यते ॥ ९ ॥
निधिकुम्भप्रतिष्ठादि सर्वमुक्तानुसारतः ।
कृत्वा प्रतिष्ठितं बिम्बमचलं परिकीर्तितम् ॥ १० ॥
पीठिकोपरि संस्थाप्य पूजितं चलमेव हि ।
सौधं च पार्थिवं शैलं सङ्करं त्वचलं शुभम् ॥ ११ ॥
रत्नजं दारुजं लौहं त्रयं चैतच्चलं शुभम् ।
धातुवर्णादिभिर्लेख्यं पटादौ तच्चलाचलम् ॥ १२ ॥
लिङ्गं गर्भगृहद्वारस्तम्भाधिष्ठानकिष्कुभिः ।
तालमानाङ्गुलैश्चापि तथा मात्राङ्गुलैरपि ॥ १३ ॥
यजमानोच्चमानेन चैवं नवविधं स्मृतम् ।

गर्भन्यासे विभक्ते स्मरशरनवनेत्रैस्त्रिपञ्चैकभागै-
र्लिङ्गानि त्रीणि तेषु त्रिषु गुणदलितेष्वेकभागैर्द्विभागैः ।
द्वे द्वे तानि स्युरेवं नव चरणयुतं तत्समं पादहीनं
द्वाराद् द्व्येकांशकाभ्यामपि गुणदलिते तत्र पञ्चेतराणि
॥ १४ ॥

प्रासादमानाच्च तथा वेदबाणर्तुभागतः ॥ १५ ॥
लिङ्गायामोऽथवा कार्यः प्रकारोऽन्यश्च कथ्यते ।
गर्भगेहविशालार्धं लिङ्गायामं प्रकल्पयेत् ॥ १६ ॥
द्वाराधिष्ठानपादानां समं पादाधिकं तु वा ।
पादहीनमथैतेषां तन्मध्येऽब्धिविभाजिते ॥ १७ ॥
पृथक्कृत्वा तत्तदंशैः स्यान्मानं नवधा स्मृतम् ।
लिङ्गानि सायककरादिपदोनिताश्वि-
हस्तान्तिमानि चरणांशवियुक्तकल्प्या ।
स्युर्वर्णिनां मुखभुजोरुपदोद्भवानां
पञ्चाग्निपावकजगत्परिसङ्ख्यकानि ॥ १८ ॥
अङ्घ्र्यंशकक्रमकृतह्रसनेन भूयो
द्वे चैकमप्यनुविलोमकुलोत्थयोः स्युः ।
तान्युत्तरोत्तरकुलप्रभवेषु चानु-
लोम्यात् प्रकल्पयतु चैककरादिकानि ॥ १९ ॥
आरभ्य हस्तं नवहस्तकान्तं
लिङ्गं विधेयं नरदैत्यदेवैः ।
हस्तादिकं पञ्चकरान्तमादौ
लिङ्गं मनुष्यस्य विभिन्नवर्णम् ॥ २० ॥
दैत्यस्य षट्सप्तकरं च लिङ्गं
गीर्वाणलिङ्गं च नवाष्टहस्तम् ।
देवादियोन्यष्टकभेदकानि
लिङ्गानि सन्त्यत्र न वर्णितानि ॥ २१ ॥

हस्तोच्चमानादारभ्य पादवृद्धिक्रमेण तु ॥ २२ ॥
त्रिहस्तान्तं कनिष्ठानि लिङ्गानि स्युर्नवैव हि ।
चतुर्हस्तायताल्लिङ्गात् प्राग्वत् पादविवर्धनात् ॥ २३ ॥
षड्ढस्तान्तं मध्यमानि लिङ्गानि नव कल्पयेत् ।
सप्तहस्तोच्चमारभ्य पादवृद्ध्या तु पूर्ववत् ॥ २४ ॥
श्रेष्ठानि नव लिङ्गानां त्रयस्त्रिंशदुदाहृतम् ।
तालादिनवतालान्तं तालमानेन कीर्तितम् ॥ २५ ॥
पूजांशोच्चे चतुर्विंशत्याधिक्यशतभाजिते ।
मूललिङ्गेऽङ्गुलं कृत्वा तालमानं प्रकल्पयेत् ॥ २६ ॥
एकाङ्गुलादिद्वियववर्धनेनानलाङ्गुलात् ।
कनिष्ठनवलिङ्गानि तथा वेदाङ्गुलादितः ॥ २७ ॥
मध्यानि नव लिङ्गानि तथैवाङ्गाङ्गुलान्ततः ।
सप्ताङ्गुलादिद्वियववर्धनेना नवाङ्गुलात् ॥ २८ ॥
श्रेष्ठानि नव लिङ्गानि रत्नजानि विशेषतः ।
कनिष्ठमध्यलिङ्गानि रत्नजातानि सर्वतः ॥ २९ ॥
चलानि गेहे पूज्यानि स्थिराण्येवोत्तमानि हि ।
तान्यालये प्रतिष्ठाप्य स्थिरलिङ्गानि पूजयेत् ॥ ३० ॥
रामाङ्गुलादितो लौहं लिङ्गमा षोडशाङ्गुलात् ।
चललिङ्गं स्मृतं तस्मात् स्थिराण्यूर्ध्वं भवन्ति हि ॥ ३१ ॥
मधूच्छिष्टेन निर्माय सकलं निष्कलं तु वा ।
बद्ध्वा मृदा दृढं शुष्कं[1]मधूच्छिष्टं बहिः सृजेत्[2] ॥ ३२ ॥

---

१. 'ष्के', २. 'हिस्त्यजेत्' ख. पाठः.

तत्र लोहार्द्रमापूर्य कारयेल्लौहमुत्तमम् ।
अथ तत्प्रक्रियां वक्ष्ये कर्मकारहिताय तु ॥ ३३ ॥
कठिना मन्दकठिना मृद्वी मृदुतरा तथा ।
मूषाकरणयोग्येति पञ्चधा मृत्तिका स्मृता ॥ ३४ ॥
पूर्वोक्तां नाकुजां वाथ मृत्स्नामादाय यत्नतः ।
मृल्लोष्टचूर्णसंयुक्तां यथायुक्ति विमर्दयेत् ॥ ३५ ॥
शुद्धाम्भसा पूगचर्मसारं युक्त्या सुयोजयेत् ।
कारयेत् कठिनामेवं शिलामुसलताडिताम् ॥ ३६ ॥
तस्मिन् गोमयसंयुक्ते स्यान्मन्दकठिना पुनः ।
मृद्भाण्डचूर्णसंयुक्तां तत्पादांशकमृत्तिकाम् ॥ ३७ ॥
पेषण्यां पेषयेद् यां सा मृद्वीति कथिता पुरा ।
तदेव गोमययुता मृत्स्ना मृदुतरा स्मृता ॥ ३८ ॥
तुषाद्यङ्गारचूर्णेन संयुक्ता घटमृत्तिका ।
कार्पासपटचूर्णेन समं मुसलपीडिता ॥ ३९ ॥
एषा मूषामृदाख्याता कर्तव्या सानया दृढम् ।
यत्किञ्चिदीप्सितं तन्तु किञ्चिन्न्यूनप्रमाणतः ॥ ४० ॥
कृत्वा द्वितीयया शुष्के तप्ते लिप्त्वा पुनः पुनः ।
अन्ते गोमयसारेण लिप्त्वा श्लक्ष्णीकृते पुनः ॥ ४१ ॥
कृत्वा तस्मिन् मधूच्छिष्टपट्टं युक्तघनान्वितम् ।
इष्टप्रमाणं[1] तत् सर्वं कृत्वा तेन सलक्षणम् ॥ ४२ ॥
भूषणादीनि सर्वाणि मधूच्छिष्टस्य तन्तुना ।
कृत्वा तिन्त्रिणिसारेण वेणुसारेण वा तथा ॥ ४३ ॥

१. 'णात् त' ख. ग. पाठः.

कृतेन युक्तशस्त्रेण सुस्निग्धं कारयेदथ ।
पुनर्विलेपयेन्मृत्स्नामार्द्रां मृदुतरां क्रमात् ॥ ४४ ॥
शुष्के तस्मिन् पुनर्लिप्त्वा मृद्वया संशोषयेत् पुनः ।
कठिनेन पुनस्तत्र कृष्णायसपटादिभिः ॥ ४५ ॥
बद्ध्वा यथाबलं पश्चात् कठिनेन विलेपयेत् ।
आवृत्त्या लेपयेत् तेन यथातोषं यथाबलम् ॥ ४६ ॥
अप्रधानावयवगस्थाने स्याल्लोहपद्धतिः ।
एवं शुष्के पुनर्यन्त्रवशादातप्य वह्निना ॥ ४७ ॥
मधूच्छिष्टं बहिस्त्यक्त्वा तं दहेत् काष्ठवेष्टितम् ।
यदा कूष्माण्डपुष्पाभं वर्णमन्तर्गतं पुनः ॥ ४८ ॥
लोहमार्गादिरन्ध्रेण दृश्यते तत् तदैव हि ।
अवरुह्य भुवः श्वभ्रे विन्यस्योर्ध्वमुखं यथा ॥ ४९ ॥
मूषायामार्द्रितं लोहं शीघ्रमादाय यत्नतः ।
निक्षिप्य तन्मुखे मन्दमन्तर्भागं सुपूरयेत् ॥ ५० ॥
पांसुना बहिराच्छाद्य कालाच्छीतलिते पुनः ।
तीक्ष्णायसकृतैः शस्त्रैर्मृदं त्यक्त्वा सुधीः क्रमात् ॥ ५१ ॥
सुश्लक्ष्णं कारयेत् तैस्तैरुचितैः शस्त्रभेदकैः ।
एवं तत्कर्मकुशलैर्लोहजं कारयेद् बुधः ॥ ५२ ॥
घनं चेल्लोहजं बिम्बं मधूच्छिष्टेन केवलः ।
कृत्वा मृल्लेपनादीनि पूर्ववत् क्रमतश्चरेत् ॥ ५३ ॥

पुनरपि बिम्बोन्मानमाह —

अष्टाङ्गुलं समारभ्य (द्विद्य ? चाष्टा)ङ्गुलविवर्धनात् ।

लौहानि नव लिङ्गानि त्रिहस्तान्तानि कल्पयेत् ॥ ५४ ॥
तथाष्टाङ्गुलमारभ्य द्विद्व्यङ्गुलविवर्धनात् ।
त्रिहस्तान्तानि लिङ्गानि त्रयस्त्रिंशद् भवन्ति हि ॥ ५५ ॥
षोडशाङ्गुलमारभ्य दारुलिङ्गान्यनुक्रमात् ।
षोडशाङ्गुलवृद्ध्या स्युः षड्ढस्तान्तानि वै नव ॥ ५६ ॥
षोडशाङ्गुलमारभ्य चतुरङ्गुलवर्धनात् ।
दारवाणि त्रयस्त्रिंशल्लिङ्गान्या रसहस्ततः ॥ ५७ ॥
यस्य यस्मिन् भवेदास्था विभूतिर्यस्य यादृशी ।
लिङ्गं तदनुसारेण कारयेदालयोचितम् ॥ ५८ ॥
कारयेदेवमेवात्र लिङ्गं मात्राङ्गुलैरपि ।
यजमानसमं तस्य नेत्रास्यहनुदोःसमम् ॥ ५९ ॥
स्तनान्तं हृदयान्तं च लिङ्गोच्चमिति सप्तधा ।
तत्रैकहस्तलिङ्गस्य चतुर्हस्तं तु विस्तृतम् ॥ ६० ॥
विमानं स्यात् तथा पञ्चगुणं षड्गुणमेव वा ।
विस्तारद्विगुणोच्चं तु नागरं त्रिगुणं यदि ॥ ६१ ॥
भूमिजाख्यं स्मृतं तस्माद् द्विगुणं शिखरं यदा ।
नागरं वलभिर्नाम विमानं भवति स्फुटम् ॥ ६२ ॥
लिङ्गायामे विकारांशे भूतवेदाग्निविस्तरम् ।
जयदं पौष्टिकं सार्वकामिकं द्राविडे भवेत् ॥ ६३ ॥
अभिकृत्यंशके गर्भे षोडशांशं तदुत्तमम् ।
त्रयोदशांशमधमं तयोर्मध्येऽष्टभाजिते ॥ ६४ ॥
नव लिङ्गानि सिध्यन्ति वेसरे तानि कल्पयेत् ।

१. 'म' ग. पाठः.

पञ्चपञ्चांशके दैर्घ्ये वसुसप्तषडंशकैः ॥ ६५ ॥
विस्तारं वेसरे विद्यात् पूर्ववज्जयदादिकम् ।
लिङ्गं सर्वसमं समोन्मितिविभक्तांशत्रयं तत् पुनः
स्वायत्या समनाहकं यदि समांशं चाथ वृद्ध्युत्तरम् ।
भक्ते भानुयुजोच्छ्रयेऽद्रिवसुनन्दांशैस्तु मूलादिषू-
पेतं दिग्दलिते त्रिलोकयुगसङ्ख्यातैस्तथेशाधिकम् ॥ ६६ ॥

आयामे दलिते दिवाकरयुजाभीष्टेऽष्टभिर्विस्तृतिः
कार्यांशैरपि पञ्चपञ्चयवयुक्तैः सप्तभिः पञ्चभिः ।
स्वायामार्कयुगांशकद्विरसनांशः स्याद् यवः केवलैः
पञ्चांशैरपि गर्भगेहनवमांशेनापि सा स्मर्यते ॥ ६७ ॥

मार्ताण्डद्वयभागभक्तमखिलं लिङ्गं विधायांशकै-
रष्टाभिर्यवपञ्चयुक्तमुनिभिः सार्धं यवैः पञ्चभिः ।
भूतैः पञ्चभिरेव वर्णविहितैर्विप्रादितो विस्तृतैः
कुर्यात् सर्वसमं समांशविहितं वृद्ध्युत्तरेशाधिके ॥ ६८ ॥

भागैश्चतुर्विंशतिभिः समस्त-
लिङ्गस्य दीर्घं प्रविभज्य सम्यक् ;
विष्कम्भमंशैरथ पञ्चभिश्च
नाहं मितं षोडशभिश्च भागैः ॥ ६९ ॥

आरभ्य षड्भागमतः क्रमेण
पादांशवृद्ध्या नवधा विभागैः ।
वस्वन्तमेतानि नवोदितानि
लिङ्गानि मित्रद्वयभागभक्ते ॥ ७० ॥

अष्टाष्टार्धनवांशकैर्विभजिते विस्तारमंशद्वयं
श्रेष्ठं मध्यममंशकैस्त्रिभिरतश्चार्धांशवृद्ध्योत्तरे ।
भक्ते कन्यकमंशकैस्त्रिभिरतो भक्ते च भागद्वयं
विष्कम्भं पुनरेवमेव नवधा संकल्पयेद् वा क्रमात् ॥ ७१ ॥
रागिदाराक्षनिहतं कृत्वा विष्कम्भमार्जितम् ॥ ७२ ॥
अनूननेत्रवीभक्तं[1] परिणाहं समीपगम् ।
विष्कम्भमानात् त्रिगुणं निधाय
विष्कम्भवस्त्वंशकतोऽष्टमांशम् ।
विक्षिप्य वा नाहविधिस्तदेक-
विंशद्विभागो निहितोऽथवा स्यात् ॥ ७३ ॥
सर्वतोभद्रकं लिङ्गं वर्धमानं शिवाधिकम् ॥ ७४ ॥
स्वस्तिकं च चतुर्धा स्यात् तल्लक्ष्म पृथगुच्यते ।
विप्राणां सर्वतोभद्रं भूभुजां वर्धमानकम् ॥ ७५ ॥
शिवाधिकं विशामिष्टं शूद्राणां स्वस्तिकं मतम् ।
प्रतिलोमानुलोमादिवर्णानामपि स्वस्तिकम् ॥ ७६ ॥
यथोचितातानवितानयुक्तां
शिलां यथोक्तक्रमतोऽभिभज्य ।
मूलं युगाश्रं विदधीत मध्य-
मष्टाश्रकं वृत्तमयं परं च ॥ ७७ ॥
तुर्यश्रे सुसमे प्रसार्य भुजसूत्रं कर्णसूत्राध्वना
तस्यान्ताहितलक्ष्मसु प्रतिदिशं द्वे द्वे भुजासूत्रके ।

---

१. 'अन्यनेत्रविभ' ग. पाठः.

कृत्वा तद्वयमध्यसंस्थितचतुष्कोणानि संशोध्य सा-
ध्वष्टाश्रं विदधीत वृत्तमपि तद् द्व्यष्टाश्रकादिक्रमात् ॥ ७८॥

तुर्यश्रेऽष्टाश्रके वृत्ते ब्रह्मा विष्णुः शिवः क्रमात् ।
देवताः सर्वलिङ्गेषु त्रिखण्डेषु विशेषतः ॥ ७९ ॥

कांशः पादशिलायां स्याद् विष्ण्वंशः पीठिकासमम् ।
दृश्यः शिवांशः पूज्यः स्यात् सर्वलिङ्गेष्वयं विधिः ॥८०॥

सममाना भवेद् वेदी लिङ्गस्यावारिका यथा ।
पूजांश एव निर्दिष्टो लिङ्गशब्देन चात्र हि ॥ ८१ ॥

वेदाश्रपीठिकायास्तु[1] लिङ्गे सर्वं समं त्विदम् ।
तल्लिङ्गपरिणाहस्थब्रह्मसूत्रचतुष्टये ॥ ८२ ॥

विस्तारः सम एव स्याच्छायादोषोऽन्यथा भवेत् ।
अ(थो ? तो) लिङ्गसमं पीठं स्याच्छायादोषवर्जितम् ॥८३॥

पीठेषु लिङ्गतुल्या स्यात् परिणाहं तु विस्तृतिः ।
तथा तुङ्गेषु लिङ्गेषु पीठिकाधिकविस्तृतिः ॥ ८४ ॥

अवगम्य शिवांशे तु वर्धयेत् तत्समं यथा ।
यावद् वृद्धं शिवांशे तु ब्रह्मांशे ह्रापयेत् तु तत् ॥ ८५ ॥

तद्वत्[2] स्थूलेषु लिङ्गेषु न्यूनतां पीठविस्तृतेः ।
विज्ञाय पूजाभागं तु कुर्याद्ध्रस्वं तदंशतः ॥ ८६ ॥

ब्रह्मांशे वर्धयेद् भागे वृद्धिहानी न वैष्णवे ।
छायादोषो विचार्योऽयं लिङ्गे सर्वसमे स्मृतः ॥ ८७ ॥

---

१ 'वीथिका' ग. पाठः. २. 'द्वन्मूलेषु लि' ख. ग. पाठः

वर्धमानादिलिङ्गेषु नैतत् स्यादिति केचन ।
तद्वद् व्यक्तेषु लिङ्गेषु व्यक्ताव्यक्ते च रत्नजे ॥ ८८ ॥
स्वयंभुवि तथा बाणेऽप्यार्षे वा नियमो नहि ।
वर्धमानादिलिङ्गानां त्रयाणमप्ययं विधिः ॥ ८९ ॥
यमसूत्रे तु कथिता छायादोषं विना यथा ।
लिङ्गायतिप्रमाणानीत्यादिना पीठविस्तृतिः ॥ ९० ॥
शिवभागसमा कार्या व्याख्यातं सङ्ग्रहे तथा ।
यावल्लिङ्गस्य वै दैर्घ्यं तावत् पीठस्य विस्तृतिः ॥ ९१ ॥
सङ्कृत्यंशे तु लिङ्गोच्चे सप्ताष्टनवभिः क्रमात् ।
अंशैर्ब्रह्महरीशानभागाः स्युर्वर्धमानके ॥ ९२ ॥
लिङ्गायामे प्रकृत्यंशे षट्सप्ताष्टांशकल्पिताः ।
क्रमाद् ब्रह्मादिभागास्त एवं वा वर्धमानके ॥ ९३ ॥
पञ्चषट्सप्तभागैर्वा चतुष्पञ्चषडंशकैः ।
वर्धमानं भवेल्लिङ्गं श्रेष्ठमध्याधमक्रमात् ॥ ९४ ॥
लिङ्गायामे तु षड्वृत्यंशे रामाग्निश्रुतिसम्मितैः ।
अंशैर्ब्रह्मादिभागाः स्युः क्रमाल्लिङ्गे शिवाधिके ॥ ९५ ॥
लिङ्गोत्सेधे तु नन्दांशे षट्सप्तवसुभागकैः ।
ब्रह्मविष्ण्वीशभागानां क्रमान्नाहाः प्रकीर्तिताः ॥ ९६ ॥
लिङ्गं त्रैराशिकं नाम भवेत् सर्वसमे तु तत् ।
स्वायामार्धार्धविस्तारं स्वस्तिकं वा शिवाधिकम् ॥ ९७ ॥
वर्धमानं च तल्लिङ्गं नाम्ना सुरगणार्चितम् ।
तत् सार्वदेशिकं ज्ञेयं सर्ववर्णहितावहम् ॥ ९८ ॥

पौष्करे कारणाख्ये च यथोक्तं तत्तु कथ्यते ।
चतुरंशादि विप्राणां पञ्चांशादि नृपोचितम् ॥ ९९ ॥

षड्भागादि विशां योग्यं सप्तांशाद्यं तु वार्षलम् ।
वर्धमानं चतुर्भेदमेवं वर्णक्रमादिदम् ॥ १०० ॥

आकृत्यंशे तु लिङ्गोच्चे सप्तसप्ताष्टभागकैः ।
ब्रह्माद्यंशेषु यल्लिङ्गं विप्राभीष्टं शिवाधिकम् ॥ १०१ ॥

एकोनविंश(ता ? त्या) भक्ते तुङ्गे षट्षट्तुरङ्गकैः ।
ब्रह्मादिभागतुङ्गं चेद् भौपमीशाधिके स्मृतम ॥ १०२ ॥

त्रयोदशांशे लिङ्गोच्चे वेदवेदशरांशकैः ।
कादिभागं विशां योग्यं लिङ्गमुक्तं शिवाधिकम ॥ १०३ ॥

लिङ्गतुङ्गे दशांशे तु गुणाग्निश्रुतिभागिकम् ।
ब्रह्माद्यंशेषु शूद्राणामिष्टं लिङ्गं शिवाधिकम् ॥ १०४ ॥

पूर्वोक्तसमलिङ्गे च धारालिङ्गं विकल्पितम् ।
चतुरश्रं द्विरष्टाश्रं तन्मूले परिकल्पयेत् ॥ १०५ ॥

वैष्णवांशे च शैवांशे धारा द्विद्विगुणीकृते ।
सर्वेषामपि लिङ्गानां धारालिङ्गं त्रिधा मतम् ॥ १०६ ॥

मूलेऽष्टाश्रं वा कलाश्रं युगाश्रं
तस्मादूर्ध्वं तद्युगाः स्युश्च धाराः ।
एवं पूर्वाचार्यकैरीश्वरस्य
प्रोक्तं धारालिङ्गमेतत् त्रिधैव ॥ १०७ ॥

सर्वतोभद्रलिङ्गेषु धाराः स्युः पञ्चविंशतिः ।
सप्तपर्णदलाकाराः समाः सर्वाः समान्तराः ॥ १०८ ॥

एकैकस्यां तु धारायां चत्वारिंशत्प्रसङ्ख्यया ।
कुर्यात् समानि लिङ्गानि स्यात् तल्लिङ्गसहस्रकम् ॥ १०९ ॥

चतुरश्रस्य कोणार्धसूत्रलाञ्छनमध्यतः ।
कोणत्यागात् तदष्टाश्रं कुर्याद् विष्वंशसिद्धये ॥ ११० ॥

अथवा लिङ्गविस्तारं सप्तधा विभजेत् समम् ।
मध्ये त्रिभागं संस्थाप्य द्विद्विभागविवर्जनात् ॥ १११ ॥

वस्वश्रं सिध्यति सममथ वृत्तं निगद्यते ।
चतुरश्रस्य लिङ्गस्य शिरोमध्ये निधाय तु ॥ ११२ ॥

सूत्रं दिगन्तमानेन भ्रामयेद् वृत्तसिद्धये ।

अथ शिरोवर्तनम् ।

कुर्वीत त्रपुपीफलाग्रसदृशं छत्रोपमं मस्तकं
बालेन्द्वाकृति कुक्कुटाण्डसदृशं विप्रादिवर्णक्रमात् ।
भेदाः सर्वसमांशकप्रभृतयो नाहप्रभेदान्विता-
स्तेऽप्येतत्क्रमतः स्युरेतदनुलोमाङ्गीकृतिश्चेष्यते ॥

विस्तारं शिवलिङ्गमूर्ध्नि वसुनन्दादित्यरुद्रांशकं
कृत्वात्र क्रमतो विशोध्य परितो द्व्येकद्विलोकांशकान् ।
कृत्वात्यष्टितिथिप्रकृत्यतिधृतिख्यातांशयुक्तं क्रमात्
पूजाभागमिहोक्तभागमुपरिष्टाच्छोधयेद् वर्णिषु ॥

१. 'णोर्ध्व' ख. पाठः. २. 'न्तं तेनैव भ्रा' ख. ग. पाठः.

तन्मस्तके नवविभागतया विभक्ते
भागं विशोध्य परितः शिवभागदैर्घ्यम् ।
द्वात्रिंशदंशकतया परिकल्प्य भागा-
नेकैकशो द्विजमुखेषु विशोधयेद् वा ॥ ११५ ॥

छत्राभं त्रपुषाकारं कुक्कुटाण्डनिभं तथा ।
अर्धेन्दुसदृशं चाथ बुद्बुदाभं तु पञ्चमम् ॥ ११६ ॥

सर्वेषामपि लिङ्गानां शिरसो वर्तनक्रमम् ।
लिङ्गव्यासात् षोडशांशमेकद्वित्रियवाधिकम् ॥ ११७ ॥

आरोप्य केऽधः संलम्ब्य लिङ्गस्योभयपार्श्वयोः ।
वर्तयेत् तत्र चत्वारि छत्राभाणि भवन्ति हि ॥ ११८ ॥

प्रथमं च द्वितीयं च समलिङ्गे नियोजयेत् ।
शिवाधिके तृतीयं तु चतुर्थं वर्धमानके ॥ ११९ ॥

वर्तनं सङ्करं नैव कुर्यात् तदशुभं यतः ।
षडंशे लिङ्गविस्तारे सार्धद्व्यंशेन वर्तयेत् ॥ १२० ॥

त्रपुषाभशिरःसिद्ध्यै रामांशैः कुक्कुटाण्डकम् ।
लिङ्गव्यासतृतीयांशवर्तनादर्धचन्द्रकम् ॥ १२१ ॥

लिङ्गव्यासेऽष्टधा भक्ते सार्धांशत्रयवर्तनात् ।
बुद्बुदाभस्य लिङ्गस्य शिरः सिध्यति शोभनम् ॥

लिङ्गानां शिरसीप्सितांशमुभयोः संलम्ब्य तत्पार्श्वयोः
कृत्वा मत्स्ययुगं तदास्यजघनान्निष्क्रान्तसूत्रद्वये ।
तस्माद् यत्र च संयुतिर्मतिमता बिन्दुत्रयाढ्यं यथा
तत्तद् वर्तयितव्यमत्र बहुधा सोपायमीशोदितम् ॥

अथ लिङ्गं स्थूलमूलं स्थूलं मध्ये कृशं तथा ।
शेषं स्थूलशिरस्कं च चतुर्धेति मयोदितम् ॥ १२४ ॥
लिङ्गव्यासेऽष्टधा भक्ते मूले मध्याग्रयोरपि ।
भागाधिकं च हीनं च स्थूलमूलादिकं स्मृतम् ॥ १२५ ॥
लिङ्गसार्षं तथा स्वायम्भुवमित्यत्र द्विधास्ति तत् ।
वेदाश्रौ ब्रह्मविष्ण्वंशौ लिङ्गेष्वार्षेषु सम्मतौ ॥ १२६ ॥
शिवांशो वृत्त एव स्याच्छिरसो वा न वर्तनम् ।
अथ स्वयम्भूलिङ्गानि जर्जराणि कृशानि च ॥ १२७ ॥
ह्रस्वानि चातिदीर्घाणि फलकासदृशानि च ।
अनेकाग्राणि गोकर्णमातुलुङ्गनिभान्यपि ॥ १२८ ॥
षट्पञ्चत्रिदशाग्राणि मानोन्मानादिभिर्विना ।
शृङ्गाण्यपि च वक्राणि नानावर्णाकृतीनि च ॥ १२९ ॥
सपीठानि विपीठानि सालयान्यगृहाणि च ।
वनपर्वतनद्यब्धितीर्थक्षेत्रगतान्यपि ॥ १३० ॥
दर्शनस्पर्शनार्चाभिर्येषां सिद्धिरनुत्तमा ।
विद्यात् स्वयम्भूलिङ्गानि येषु नित्यं स्थितः शिवः ॥१३१॥
मूलं न शोधयेत् तेषां शोधनं सर्वनाशकृत् ।
अमीमांस्यानि तान्याहुः पूज्यान्येव यथास्थिति ॥१३२॥
नैषां मूर्तिविभागोऽस्ति नच स्यान्मन्त्रसङ्करः ।
मानुषेष्वेव लिङ्गेषु मन्त्रमूर्त्यादिसङ्करः ॥ १३३ ॥

अथ बाणलिङ्गम् ।

बाणलिङ्गं तु यत् सर्वं यथाजातं निधापयेत् ।
स्वेच्छयार्धं तु रामांशं वा पञ्चांशं द्विभागिकम् ॥ १३४ ॥

पीठे सलक्षणे लौहे सौधे वा स्थापयेच्छुभे ।
कोट्यस्तिस्रस्तु लिङ्गाद्रौ तिस्रः श्रीपर्वते स्थिताः ॥ १३५ ॥
तिस्रस्तु कालिकागर्ते तिस्रश्चाप्यमरेश्वरे ।
कन्यातीर्थे महेन्द्राद्रौ नेपाले कन्यकाश्रमे ॥ १३६ ॥
तेष्वेकैका स्थिता कोटिरेवं कोट्यस्तु षोडश ।
सपीठं वाप्यपीठं वा सप्रासादमवर्तनम् ॥ १३७ ॥
सर्वसङ्करहीनं तत् सर्वेषां भुक्तिमुक्तिदम् ।
पूजयेद् बाणलिङ्गं तत् प्रतिष्ठाप्य विधानतः ॥ १३८ ॥
अन्यान्यपि च लिङ्गानि नद्यब्धिगिरिकान्यपि ।
अकृतानि विशिष्टानि देवदैत्यमुनीश्वरैः ॥ १३९ ॥
दिव्यैरन्यैः सिद्धमुख्यैः पूज्यान्येव हि बाणवत् ॥ १४० ॥

इति शिल्परत्ने उत्तरभागे लिङ्गलक्षणं नाम
द्वितीयोऽध्यायः ॥

---

## अथ तृतीयोऽध्यायः ।

### अथ लक्षणोद्धारः ।

एवं लिङ्गं कारयित्वा महात्मा
शून्यं दोषैर्लक्षणैरन्वितं च ।
लक्ष्मोद्धारं कारयेद् वर्णयोग्यं
यद्वत् प्रोक्तं तत्क्रमात् (स्वर्ग ? स्वाग)मेषु ॥ १ ॥
लिङ्गमूर्ध्नि क्षतं स्याच्चेद् राज्ञां कर्तुश्च नाशनम् ।
छिद्रं भार्यां सुतं शङ्खे वक्त्रे हन्याच्च शिल्पिनम् ॥ २ ॥

मध्ये दुःखं च दुर्भिक्षं क्रोडे वृष्टिविनाशनम् ।
अत्यायतं चातिह्रस्वं कृशं स्थूलं नृपान्तकृत् ॥ ३ ॥

पर्यासकर्म यल्लिङ्गं शोणादि(?)र्वालुकादिभिः ।
गोबालरज्जुभिश्चैव घर्षयेन्निर्व्रणं समम् ॥ ४ ॥

मुकुरोदरवच्छ्लक्ष्णं दृश्यच्छायं सुवर्तुलम् ।
ततः शुद्धाम्बुगोक्षीरनालिकेरेक्षुवारिभिः ॥ ५ ॥

प्रक्षाल्य तीर्थतोयेन प्रोक्तचिह्नानि लक्षयेत् ।
राजसर्षपमात्राश्चेद् यत्र स्युः स्वर्णबिन्दवः ॥ ६ ॥

लिङ्गे वा पीठिकायां वा सर्ववर्णहितावहम् ।
स्वल्पदोषमपि त्याज्यं लिङ्गं पीठं च तद् भवेत् ॥ ७ ॥

निर्दोषमन्यत् संपाद्य लक्षणोद्धारमाचरेत् ।

भङ्क्त्वा त्रेधा शिवांशायतिमुपरितनं भागमुत्क्षिप्य शिष्टं
कृत्वाष्टांशं समास्फाल्य च विपुलसिरासूत्रमत्राष्टमांशे ।
लिङ्गाभं लक्ष्म साधारणमथ यवरूपं महेक्षणाभं
व्रीह्याकारं च बद्धाञ्जलिनिभमपि विप्रादिकल्पत्या लिखेद्
[वा ॥ ८ ॥

रेखां लक्षणमूलतो मणिमयीं मूलांशयुग्मान्तिमं
रेखे लक्षणपार्श्वजे च परिलिख्येष्वंशमध्यावधि ।
ऊर्ध्वाग्रैर्ऋतुसूत्रकैस्त्रिदशकोष्ठानि प्रकल्प्याथ ते
तत्कर्णक्रमतः परागवनिपङ्क्त्यन्ते मिथो योजयेत् ॥ ९ ॥

विस्तारोऽधमलक्षणे द्वियवतस्तत्पादवृद्ध्योर्ध्वतो
रेखा तद्दलतो मिता मणिमयी तत्सामिकल्पे परे ।

रेखा दक्षिणवाममध्यरचिता ब्रह्माजितानङ्गजि-
द्दैवत्यश्चतुरश्रकादिशिवलिङ्गांशाश्च तद्देवताः ॥ १० ॥

प्रथमं नागरालिङ्गे षोडशभागं कृते शिवायामे ।
षड्भूतवेदभागांस्त्यक्त्वोर्ध्वे कन्यसाद्युदयम् ॥ ११ ॥

एवं त्रिकमुत्सेधं बुद्ध्वा च त्र्यंशकास्तु सर्वेषाम् ।
विष्ण्वंशादिमुखे द्वे सूत्रे संलम्बयेत् पार्श्वे ॥ १२ ॥

पृष्ठे तयोर्युतिः स्याद्धीने वेदाग्निदस्रेषु ।
मध्ये भूतवनानिलपांशेषु (?)युतिस्तयोः पृष्ठे ॥ १३ ॥

श्रेष्ठे षड्भूतवनानलपांशेपूदिता तु युतिः ।
तेषु ग्रीवैकांशं त्रिद्व्यंशं सूत्रविष्कम्भम् ॥ १४ ॥

यावदधोविष्ण्वंशं प्रोक्तोत्सेधे नयेत् तु समम् ।
एवं नागरलिङ्गे सूत्रं सम्यङ् मयेनोक्तम् ॥ १५ ॥

पादोनं भागमर्धं वा ब्रह्मसूत्रविशालता ।
भवेद् विष्ण्वंशपर्यन्तं ब्रह्मसूत्रस्य तु स्थितिः ॥ १६ ॥

तदर्धं पार्श्वसूत्रस्य लेखा मध्यभवा भवेत् ।
तथा द्राविडलिङ्गोच्चे त्रिपञ्चांशे क्रमेण तु ॥ १७ ॥

नन्ददिग्रुद्रभागोच्चं हीनादुच्चमिहोदितम् ।
सप्ताष्टनवभागे(स्यात् ? भ्यः) क्रमात् सूत्रे तु लम्बयेत् ।

नीचे युगाग्निद्वितये मध्ये बाणयुगाग्निषु ।
द्वयोश्चाथोत्तमे लिङ्गे रसेषु श्रुतिभागिषु ॥ १९ ॥

युतिः स्याद् द्राविडे सू(त्रे ? त्र)व्यासः स्वांशार्धतः समः ।
तदर्धं पक्षसूत्रस्य व्यासागाधे च पूर्ववत् ॥ २० ॥

षोडशांशे शिवायामे सूत्रायामो दशांशतः ।
ऊर्ध्वांशश्च चतुर्भागः स्यादधश्च द्विभागिकः ॥ २१ ॥

मुकुलाकारमारभ्य पार्श्वसूत्रद्वयं क्रमात् ।
द्व्यंशं विहाय पृष्ठे तु युतिर्युक्ता तयोः पुनः ॥ २२ ॥

अथवा षोडशांशेऽधोभागं वेदांशमूर्ध्वतः ।
त्यक्त्वा सूत्रं तु रुद्रांशैरुच्चात् प्राग्वद् युतिः स्मृता ॥

इत्थं द्राविडलिङ्गस्य लक्षणोद्धारणं स्मृतम् ।
अथ वेसरलिङ्गस्य त्रिपञ्चांशे शिवोच्छ्रये ॥ २४ ॥

नालायामो दशांशः स्याद् वस्वंशप्रभृति क्रमात् ।
सूत्रयोर्लम्बनं कुर्याद् भूतवेदगुणांशकैः ॥ २५ ॥

तयोर्युतिर्भवेच्छ्रेष्ठे विष्कम्भः षोडशांशतः ।
मध्येंऽशे वसुभागोच्चे वेदांशैर्नालमुन्नतम् ॥ २६ ॥

ऊर्ध्वे त्रयोंऽशाः शोध्योंऽशो गुणभागात् प्रभृत्यधः ।
सूत्रे तु लम्बयेत् त्रिद्विभागेषु स्यात् तयोर्युतिः ॥ २७ ॥

गृहीतांशे त्रिधा भक्ते व्यासो भागद्वयेन तु ।
एवं मध्यममुक्तं स्याल्लिङ्गे वेसरसंज्ञिते ॥ २८ ॥

कनिष्ठवेसरस्याथ द्वादशांशे शिवोच्छ्रये ।
अधोंऽशमंशा(दू ? वू)र्ध्वे तु सूत्राया(मे ? मो) नवांशतः ॥

सङ्क्रमः पूर्ववज्ज्ञेयो भागे वै षोडशांशिते ।
भागेन सूत्रव्यासः स्यात् तदर्धं पक्षसूत्रयोः ॥ ३० ॥

कनिष्ठवेसरस्यैवं लक्षणोद्धारणं स्मृतम् ।
छत्राभमस्तके लिङ्गे सूत्राग्रं स्याद् गजाक्षवत् ॥ ३१ ॥
खण्डेन्दुमस्तके लिङ्गे सूत्राग्रं बुद्बुदोपमम् ।
लिङ्गाग्रे त्रपुषाभे तु सूत्राग्रं कुक्कुटाण्डवत् ॥ ३२ ॥
कुक्कुटाण्डशिरोलिङ्गे सूत्राग्रं छत्रसन्निभम् ।
सामान्येन तु लिङ्गानां सूत्राग्रमथ कथ्यते ॥ ३३ ॥
कदलीमुकुलाभं वा सरोजमुकुलाकृति ।
अश्वत्थपत्रसदृशं सामान्यं हि यवोपमम् ॥ ३४ ॥
अत्यष्टयंशे तु लिङ्गाभे भागं त्रेधा विभज्य तु ।
मध्यसूत्रततिद्व्यंशं तदर्धं पक्षसूत्रयोः ॥ ३५ ॥
कनिष्ठवेसरस्यैवं लक्षणोद्धार ईरितः ॥ ३६ ॥

अथ मुखलिङ्गम् ।

यथोक्ताव्यक्तलिङ्गेषु शिवांशे दशभाजिते ।
अश्विनेत्राग्निभागैः[1] स्यात् स्कन्धः कण्ठस्तथाननम् ॥ ३७ ॥
उष्णीषोंऽशस्तु मकुटं द्व्यंशमूर्ध्वं तु भागतः ।
भागेन मुखविष्कम्भो विस्तृतश्चोर्ध्वलिङ्गवत् ॥ ३८ ॥
ललाटकण्ठभ्रूनेत्रघ्राणगण्डमुखादिकम् ।
मानोन्मानप्रमाणेन सर्वं सकलवत् स्मृतम् ॥ ३९ ॥
अथैकत्रं चतुर्वक्त्रं ग्रामादिष्वेव विन्यसेत् ।
द्विवक्त्रं पर्वतेऽरण्ये परराष्ट्रान्तिकेऽपि च ॥ ४० ॥
स्थापयेत् तदरिध्वंसं विदधाति स्वलक्षणम् ।
चतुस्त्र्येकानन भूत्यै पञ्चास्यं चाभिचारकम् ॥ ४१ ॥

---

१. 'गे' ग. पाठः.

(वि ? द्वि)मुखं चारिनाशाय स्थाप्यं शैलवनादिषु ।
सर्वेषां मुखलिङ्गानां निर्गमः स्यात् पृथक् पृथक् ॥ ४२ ॥
प्रविष्टा कन्धरा कार्या विष्णुभागोपरि स्थिता ।
हस्तादिपञ्चहस्तान्तं मुखलिङ्गं प्रकल्पयेत् ॥ ४३ ॥
अतः परं न कुर्वीत मुखलिङ्गं शुभेच्छया ।
पूजांशार्धं त्रिभागैकं गाढं वा स्फाटिके मतम् ॥ ४४ ॥
समं त्रिपादमर्धं वा पूजांशात् तस्य विस्तृतिः ।
सधारं वाथ वृत्तं वा लिङ्गं स्यात् स्फाटिकं स्मृतम् ॥४५॥
शिरसो वर्तनं प्राग्वद् ब्रह्मसूत्रं न भावयेत् ।
ब्रह्मसूत्रं विनाप्येतत् तेजोद्रव्यं वरप्रदम् ॥ ४६ ॥
स्फटिकादिशिलाद्यैस्तु प्रतिमाकरणे पुनः ।
वज्रं[1] शस्त्रं प्रकर्तव्यं कारयेत् तेन शाणया ॥ ४७ ॥
दारणच्छेदनादौ तु कृष्णलौहशलाकया ।
शाणाचूर्णेन तोयेन यथायुक्ति समाचरेत् ॥ ४८ ॥
स्फाटिकं शकलं वाथ दग्ध्वा चूर्णीकरोत्वथ ।
पिष्ट्वा तच्चूर्णमम्भोभिस्तत पिष्टं[2] कदलीदले ॥ ४९ ॥
विन्यस्याङ्गाररााशौ तु पाचयेन्मोदकं यथा ।
तस्मिन्नग्निनिभे जाते मन्दमादाय चूर्णयेत् ॥ ५० ॥
तच्चूर्णं किंशुकाकल्पफलकायां समाहितः ।
किञ्चिदुद्धूलनं कृत्वा तल्लिङ्गं तेन मर्दयेत् ॥ ५१ ॥
यावत् सुश्लक्ष्णता तद्वत् प्रभाजालसमुद्गतिः ।
जायते तावदेवं हि मर्दयेत् स्फाटिकादिकम् ॥ ५२ ॥

१. 'ज्र', २. 'ष्ट्वा' ख. पाठः.

अथ योन्याद्यम् ।

त्रिविधाङ्गुलमानानां जात्यंशं नातिरोपयेत् ।
बेरेषु तेषु योन्याद्यं नयेत् स्वैः स्वैरिहाङ्गुलैः ॥ ५३ ॥
लिङ्गानामपि शिष्टानां जात्यंशारोपणं मतम् ।
(माने) चतुरशीत्यंशे (द्विषष्ट्यंशे) तदुच्छ्राये ॥ ५४ ॥
सङ्कृत्यंशे विकारांशे विप्रादीनां यथाक्रमम् ।
एकांशारोपणादुक्तं[1] जात्यंशारोपणं हितम्[2] ॥ ५५ ॥
प्रस्तुतप्रतिमोत्सेधं त्रिंशदंशादितः क्रमात् ।
शतांशान्तं विभज्यैषु भागैरन्यतमैर्बुधैः ॥ ५६ ॥
उक्तविप्रादिमानेषु जात्यंशारोपणं स्मृतम् ।
गृहीतोत्सेधमाने तु मानाङ्गुलविभाजिते ॥ ५७ ॥
वृद्ध्या वाङ्गुलिविच्छेदं परिहृत्य प्रकल्पयेत् ।
मानं प्रमाणमित्यादि पूर्वोक्तन्यायमाश्रितः ॥ ५८ ॥
योनिवारादिघटनां योजयेच्छोभनं यथा ॥ ५८ ॥

इति शिल्परत्ने उत्तरभागे लक्षणोद्धारविधिर्नाम
तृतीयोऽध्यायः ॥

## अथ चतुर्थोऽध्यायः ।

### अथ सकलबिम्बोत्सेधः ।

द्वारोत्सेधसमं तदङ्घ्रिरहितं द्वारेऽखिले चोनिते
नन्दांशेन गजांशकेन च समं भक्ते त्रिधा द्वयंशकैः ।

---

१. 'क्त' ख., 'क्ता' क. ग. पाठः. २. 'त्' ख. पाठः.

कल्पितानीत्युदितानि पञ्च मनुबिम्बान्यत्र गर्भालये
भक्ते लोकशरेक्षणैर्द्विगुणभूम्यंशग्रहात् त्रीणि च ॥१॥
गर्भगेहे ततो नन्दभागे नन्दविधोन्नतम् ।
अथवा गर्भगेहे तु त्रिनवांशविभाजिते ॥ २ ॥
एकांशादेकवृद्ध्या तु सप्तविंशतिधा पुनः ।
अथवाष्टादशांशे तु गर्भगेहविशालके ॥ ३ ॥
तावता बिम्बमानोच्चमेकादेकांशवर्धनात् ।
गर्भद्वारस्य चोत्सेधं गजभागविभाजिते ॥ ४॥
पञ्चांशमुत्तमोत्सेधं मध्यमं चतुरंशकम् ।
अधमं तु गुणांशं स्यात् त्रिविधं द्वारमानतः ॥ ५॥
अधमोत्तमयोर्मध्यं वसुभागविभाजिते ।
नवधा सकलोत्तुङ्गं द्वारमानाद् विधीयते ॥ ६ ॥
अथवा द्वारतुङ्गं तु सप्तविंशतिभाजिते ।
एकैकांशविहीनेन बिम्बोच्चं व्यक्षभेदतः ॥ ७ ॥
एवं हि द्वारमानेन षट्त्रिंशद्भेदतोदितम् ।
अथाधिष्ठानमानेन एवमेवाङ्घ्रिमानतः ॥ ८ ॥
बाह्यप्रासादमानेन गर्भगेहोक्तवत् स्मृतम् ।
एकादिनवहस्तान्तं नवधा हस्तमानतः ॥ ९ ॥
तालादिदशतालान्तं तालमानेन कल्पयेत् ।
कर्तुश्च हृदयान्तं वा स्तनान्तं बाहुसीमकम् ॥ १० ॥
हन्वन्तं चास्यसीमान्तं नेत्रसूत्रावसानकम् ।
कर्तुश्चोदयतुल्यं वा यजमानवशादिमे ॥ ११ ॥

अथ वा कर्तृतुङ्गं तु नवभागविभाजिते ।
एकैकांशकहीनेनाप्यष्टधा सकलोदयम् ॥ १२ ॥
मानाङ्गुलैः पुरा प्रोक्तैस्तथा मात्राङ्गुलैरपि ।
सप्ताङ्गुलं समारभ्य द्विद्व्यङ्गुलविवर्धनात् ॥ १३ ॥
त्रयोविंशाङ्गुलं यावत् तावद् बिम्बोदयं स्मृतम् ।
सर्वेषामपि बिम्बानां प्रोक्तानां बहुधात्र हि ॥ १४ ॥
उष्णीषात् पादपर्यन्तं तुङ्गमापादमूर्धकम् ।

अथ बहुबेरे—

शम्भोर्नासाग्रमानं वा हनुसीमान्तमेव वा ॥ १५ ॥
(ते कांस्ये मथाभिघार्य हविषा मूलेन लिङ्गाकृतिं
कृत्वाथा दशरुद्रदिग्वसुदो भिन्नैर्मतं चाङ्गुलैः ।
विप्रादिष्वथ वर्णभेदविहितं साज्यं दधि क्लेदितम् ?)
..... ॥ १६ ॥
तयोर्मध्येऽष्टधा भङ्क्त्वा नवधा शक्तितुङ्गकम् ।
सर्वेषामपि पार्श्वाङ्कस्थितशक्त्युदयं तथा ॥ १७ ॥
बहुबेरविधानमूलबिम्बं सुसमं द्वारसमुच्छ्रयेण कार्यम् ।
चरणांशविवृद्धमर्धवृद्धं पादोनद्विगुणं द्विसंगुणं च ॥
गृहे त्वात्मार्थबिम्बानां मानं मात्राङ्गुलेन तु ।
कर्तव्यमन्यथाचेत्तु वक्तव्यं कर्तृनाशनम् ॥ १९ ॥
अङ्गुलैर्निर्मितं बिम्बं सर्वजात्यर्हकं शुभम् ।
अङ्गुलीनिर्मिते बिम्बे जात्यंशं नातिरोपयेत् ॥ २० ॥

अङ्गुलादन्यबिम्बोच्चे सवेदाशीतिभाजिते ।
एकांशं रोपयेत् तत्तु विप्रजात्यर्हकं स्मृतम् ॥ २१ ॥
द्विभागाधिकषष्ट्यंशैर्भङ्क्त्वैकांशसमन्वितम् ।
नृपजात्यर्हकं बिम्बमथार्कद्विगुणांशिते ॥ २२ ॥
एकांशारोपणं वैश्ययोग्यं बिम्बमिति स्मृतम् ।
षोडशांशेंऽशमारोप्यं बिम्बं शूद्रस्य सम्मतम् ॥ २३ ॥
एवं जात्यंशसंयुक्तबिम्बमानेन पूर्ववत् ।
योन्यादीनि समानीय चिन्तयेत्तु शुभाशुभम् ॥ २४ ॥
गृहोक्तमार्गमाश्रित्य विशेषः कथ्यतेऽत्र हि ।
यद्योनिर्निलयेऽर्चायां तद्योनिः स्यान्नाचान्यथा ॥ २५ ॥
कर्तुश्च जन्मनक्षत्रान्नृपवास्तुदिनात् तथा ।
गुणयेद् बिम्बतारान्तं तेन लोकप्रसिद्धितः ॥ २६ ॥
विचार्य गणयोगादि शोभनं तु परिग्रहेत् ।
भौमवारो विवर्ज्यः स्यान्मध्यमौ सौरिसूर्ययोः ॥ २७ ॥
भानुवारादिभिर्युक्तं विशाखादि चतुश्चतुः ।
वियोगं मरणं नाशममृतं च यथाक्रमम् ॥ २८ ॥
सर्वेषामपि वृद्ध्यर्थं जात्यंशारोपणं स्मृतम् ।
तस्मात् तदनु कर्तव्यमायादीनां तु चिन्तनम् ॥ २९ ॥

अथ कौतुकोच्चम् ।

सकले सति मूलबिम्बके निगमांशोन्मिति कर्मबिम्बकम् ।
सकलाकृति निष्कलेऽपि वा स्थितमासीनमतः प्रकल्पयेत्
[॥ ३० ॥

आयामेन शिवांशकस्य रचयेन्नाहेन वा सम्मितं
व्यासेनापिच मन्त्रलिङ्गविषये तत् कर्मबिम्बं शिवे ।
भङ्क्त्वा षोडशधा पुनस्त्रयमिदं रुद्राङ्कशैलाशुगा-
ग्न्यंशैर्वाधिकमूनितं च कुहचित् कुर्यात् तदौचित्यतः ॥३१॥
सौवर्णे.....।
..... ..... ॥
लिङ्गमानेन बिम्बोच्चं कथ्यते पूर्वशास्त्रतः ।
पूजांशद्विगुणा वा स्यात् तुङ्गे द्वात्रिंशदंशिते ॥ ३२ ॥
तेषु वै सप्तविंशांशं पञ्चविंशांशमेव वा ।
त्रिभागाधिकविंशांशमेकविंशांशमेव वा ॥ ३३ ॥
एकोनविंशतिर्वाथ नृपांशं विश्वभागिकम् ।
रुद्रांशं नन्दभागं वा सप्तांशं पञ्चभागिकम् ॥ ३४॥
स्थूलदेशस्य लिङ्गानां पूर्वोक्तपरिणाहतः ।
तुल्यं विस्तारतो वाथ पूर्वोक्तक्रमतो द्वयम् ॥ ३५ ।
अंशीकृत्य यथोक्तांशैः कौतुकोच्चं करोतु वा ।
पूजांशोच्चं तु नाहं वितनिमपि पृथग् द्व्यष्टभागं तु कृत्वा
तैरेवांशैस्त्रिभेदैर्गुणशरमुनिनन्दांशरुद्रांशकैर्वा ।
न्यूनं चैवाधिकं वा सममपि कथितं लिङ्गतो बेरमानं
भेदैर्गीर्वाणसंख्यैरिति विदितमभूत् पूर्वशास्त्रान्तरेषु॥३६॥

अथ तालनियमः —

उत्तमं दशतालाख्यं चतुर्विंशच्छताङ्गुलम् ।
मध्यमं दशतालं स्याद् विंशाधिकशताङ्गुलम् ॥ ३७ ॥

अधमं दशतालं तु कलाधिकशताङ्गुलम्।
तालं प्रत्ययमेवं तु क्रमाद् वेदांशहानितः॥ ३८॥
उत्तमं नवतालादि बिम्बमानमुदाहृतम्।
उत्तमं दशतालेन ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः॥ ३९॥
मध्यमं दशतालेन तथैवोमासरस्वती।
उषा भूमिश्च दुर्गा च लक्ष्मीर्ज्येष्ठा च मातरः॥ ४०॥
मध्यमं दशतालेन वा त्रिमूर्तीन् प्रकल्पयेत्।
कन्यसं दशतालेन चन्द्रादित्यावथाश्विनौ॥ ४१॥
आर्यं शतमखं चैव चण्डेशं क्षेत्रपालकम्।
महर्षीणां गणांश्चैव तेषां देवीश्च कारयेत्॥ ४२॥
उत्तमं नवतालेन विघ्नेशान् लोकपालकान्।
वसूंश्च दिक्पतींश्चैव अस्त्रमूर्तीश्च गुह्यकान्॥ ४३॥
देवानन्यांश्च देवीस्ताः कारयेल्लक्षणान्वितम्।
मध्यमं नवतालेनाप्यष्टमूर्तिमरुद्गणान्॥ ४४॥
यक्षासुरगणाश्चैव करोतु शुभलक्षणम्।
कन्यसं नवतालेन विद्याधरगणांस्तथा॥ ४५॥
असुरान् सिद्धगन्धर्वान् पितरश्च तथैव च।
अष्टतालेन मर्त्यांस्तु पिशाचाः सप्ततालतः॥ ४६॥
षष्ठतालेन कुब्जाश्च तत्तच्छ्रेष्ठान्तराधमाः।
तत्तदुत्तममध्यादिभेदेनैव भवन्त्यतः॥ ४७॥
पञ्चतालोत्तमेनैव विघ्नेशं स्कन्दमेव च।
वामनं च करोत्वस्य भूतान् मध्येन वाधमात्॥ ४८॥

बालांस्तु वेदतालेन कुर्याद् भूतगणांस्तु वा ।
त्रितालेन तु कर्तव्या यक्षकिन्नरजातयः ॥ ४९ ॥
द्वितालेनैव कूष्माण्डांस्तालात् कूर्माकृतिर्हरिः ।
यथोक्तप्रतिमायामं मूर्तिभेदवशादिह ॥ ५० ॥
विभज्यार्काङ्गुलं तालं गोलकं वा कलां तथा ।
विदिताद्यङ्गुलं मानमङ्गुलाष्टांशकं यवम् ॥ ५१ ॥
प्रायः स्ववाञ्छितमिति द्विगुणायतेष्ट-
पादोनविस्तृततदर्धघनां शिलां ताम् ।
तुर्यश्रितां समतले निपुणां निधाय
प्रस्तारमत्र तनुयादथ मन्त्रमूर्तेः ॥ ५२ ॥

इति शिल्परत्ने उत्तरभागे प्रतिमोत्सेधविधिर्नाम
चतुर्थोऽध्यायः ॥

---

## अथ पञ्चमोऽध्यायः ।

### अथोत्तमं दशतालम् ।

त्रियवाधिकचन्द्रांशमुष्णीषोच्चमुदाहृतम् ।
तस्मादापूर्वकेशान्तं कारयेदग्निभागतः ॥ १ ॥
केशान्तादक्षिसूत्रान्तं युगांशं त्रियवाधिकम् ।
अक्षिसूत्रान्नासिकान्तं तस्माच्च हनुसीमकम् ॥ २ ॥
प्रत्येकं त्रियवाधिक्ययुगभागोदयं तथा ।
हन्वादिगलमानं तु चतुर्यवमुदाहृतम् ॥ ३ ॥
यवैकोनयुगांशं तु कण्ठोच्चं परिकीर्तितम् ।
कण्ठान्ततिर्यक्सूत्रं तु तालुसूत्रमुदाहृतम् ॥ ४ ॥

हिक्कासूत्राद्धृदयान्तं हृदयान्नाभिसीमकम् ।
नाभेस्तु मेढ्रमूलान्तं विश्वांशत्रियवैः पृथक् ॥ ५ ॥
मेढ्रमूलगतं तिर्यक्सूत्रं मध्याभिधं स्मृतम् ।
मध्यसूत्रादूरुदीर्घं सप्तविंशांशकैः स्मृतम् ॥ ६ ॥
तस्माद् वेदाङ्गुलं जानुतुङ्गं जङ्घोरुमानवत् ।
तस्मात् पादतलोत्सेधं युगांशं परिकीर्तितम् ॥ ७ ॥
अङ्गुष्ठाग्रात्तु पार्ष्ण्यन्तं तलं सप्तदशाङ्गुलम् ।
हिक्कासूत्रादधो बाहुदीर्घमृक्षाङ्गुलं तथा ॥ ८ ॥
कोर्परायाममश्व्यंशमेकविंशांशकं ततः ।
प्रकोष्ठस्यायतं तस्मात् सार्धत्रयोदशांशकम् ॥ ९ ॥
मध्याङ्गुलाग्रपर्यन्ततलायामं करस्य तु ।
सार्धभान्वङ्गुलं तारं मुखे तस्यान्तविस्तृतिः ॥ १० ॥
सार्धत्रयोदशैरंशैर्ग्रीवाग्रे सार्धनन्दकैः ।
ग्रीवामूले दशांशैस्तु विस्तारं परिकल्पयेत् ॥ ११ ॥
हिक्काधो बाहुसीमान्तं चत्वारिंशांशमेव हि ।
सार्धद्वाविंशदंशं तु कक्षयोरन्तरं तथा ॥ १२ ॥
नवांशं चतुर्यवोपेतं बाहुमूलविशालकम् ।
एकविंशतिभागं तु स्तनदेशे तु विस्तृतिः ॥ १३ ॥
हृदयावधिविस्तारमेकोनविंशदङ्गुलम् ।
कलांशं चतुर्यवोपेतं मध्यव्यासमुदाहृतम् ॥ १४ ॥
एकोनविंशदंशं तु श्रोणीदेशविशालकम् ।
तत्र मेढ्रविशालं तु द्वियवाधिकमङ्गुलम् ॥ १५ ॥

तदधः कटिपार्श्वान्तं सार्धविंशांशकैः स्मृतम् ।
पादोनमनुभागं तदूरुमध्यविशालकम् ॥ १६ ॥
जानुदेशस्य विस्तारं पादहीननवांशकम् ।
सपादपञ्चभागं तु जङ्घामूलविशालकम् ॥ १७ ॥
पादोनसप्तभागं तु जङ्घामध्यविशालकम् ।
तयोर्मध्यततं भागैर्नवभिः संप्रकीर्तितम् ॥ १८ ॥
पादोनपञ्चभागं तु नलकायास्तु विस्तृतम् ।
त्रियवाधिकपञ्चांशं गुल्फाक्षव्यासमानकम् ॥ १९ ॥
अक्षादातलतुङ्गं तु सार्धवेदाङ्गुलं स्मृतम् ।
पार्ष्णितारं च तत्तुल्यं पार्ष्णेरुच्चं तदेव हि ॥ २० ॥
तलमध्यं षडंशं तु यवद्वयसमन्वितम् ।
तलाग्रविस्तृतं सप्तभागमित्येवमीरितम् ॥ २१ ॥
द्वियवाधिकवेदांशं पादाङ्गुष्ठाङ्गुलायतम् ।
यवोपेतद्वयांशं तु तस्य विस्तारमेव हि ॥ २२ ॥
तारार्धं नखविस्तारं ततः पादोनमायतम् ।
त्रियवोपेतवेदांशं तर्जन्यायाममानकम् ॥ २३ ॥
पादोनवेदभागं तु दीर्घं मध्यमिकाङ्गुले ।
यवोपेताग्निभागं तदुपान्त्याङ्गुलिकायतम् ॥ २४ ॥
सार्धपक्षांशमानं तु कनिष्ठाङ्गुलिकायतम् ।
देशिन्यादि क्रमात् तारं नवसप्तार्धसप्तभिः ॥ २५ ॥
षड्भिरंशैः पृथक् तत्र कल्पयेच्छिल्पवित्तमः ।
नखमानं स्वतारार्धमित्याद्युक्तप्रकारतः ॥ २६ ॥

तत्तदङ्गुलविस्तारं वेदांशैर्विभजेत् पुनः।
त्रिभागमङ्गुलाग्रोच्चमशेषं वा नखेतरे॥ २७॥

त्रियवाधिकवस्वंशं बाहुमध्यविशालकम्।
सपादसप्तभागं तु कोर्परे व्यासमुच्यते॥ २८॥

पादोनरसभागं तु प्रकोष्ठे मध्यविस्तृतिः।
पादोनचतुरंशं तु मणिबन्धविशालकम्॥ २९॥

सप्तांशं तत्तलायामं सार्धाङ्गैर्मध्यमाङ्गुलिः।
सपादभूतभागं ह्यप्यनामिकाङ्गुलायतम्॥ ३०॥

यवसंयुक्तपञ्चांशं तर्जन्यङ्गुलिकायतम्।
सपादवेदभागं तु दीर्घमन्याङ्गुलद्वये॥ ३१॥

अङ्गुष्ठमूलविस्तारं सपादांशमुदाहृतम्।
तर्जनीमूलमेकांशं मध्यायां यवनन्दकम्॥ ३२॥

अनामिका तर्जनीवत् कनिष्ठा पञ्चयोन्मिता।
तत्तन्मूलविशालस्य षोडशांशविवर्जितम्॥ ३३॥

तत्तदग्रविशालं तु तत्तारे रसभाजिते।
पञ्चांशं नखविस्तारं शिष्टार्धं पार्श्वमांसलम्॥ ३४॥

सपादतारं सर्वेषां नखानामायतं तथा।
वृत्तायतं नखाकारं करयोः पादयोस्तथा॥ ३५॥

नखद्विगुणमानं तदग्रपर्वायतं तथा।
अङ्गुष्ठमूलपर्वस्य दीर्घं सप्तदशैर्यवैः॥ ३६॥

तथैवाष्टादशयवैर्मध्यमामूलपर्वकम्।
तर्जन्यनामिकामूलपर्वं षोडशभिर्यवैः॥ ३७॥

कनिष्ठिकामूलपर्व त्रयोदशयवं स्मृतम् ।
मूलाग्रपर्वयोर्मध्यं दीर्घं मध्यस्थपर्वसु ॥ ३८ ॥

अङ्गुष्ठं तु द्विपर्वाढ्यं शेषास्त्रिपर्वसंयुताः ।
सार्धभूताङ्गुलं तत्र तलेऽग्रविपुलं भवेत् ॥ ३९ ॥

रसांशं मध्यविस्तारं मूले सार्धषडंशकम् ।
अङ्गुष्ठमूलात् तर्जन्या मूलं सार्धत्रिभागतः ॥ ४० ॥

अङ्गुष्ठमूलाद् वेदांशं मणिबन्धान्तमेव हि ।
अध्यर्धांशं घनं पाणितले पार्ष्णौ त्रिपार्श्वकम् ॥ ४१ ॥

तलाग्रे वाङ्गुलं कुर्याद् घनं सर्वेषु सम्मतम् ।
अङ्गुलीनामधस्तात् तु मांसलं त्वर्धमात्रतः ॥ ४२ ॥

द्विभागं पार्ष्णिहस्तस्य शुक्लोदरविशालकम् ।
शेषं मध्यतलं निम्नं भूतवेदाग्निभिर्यवैः ॥ ४३ ॥

सूक्ष्मरेखा लिखेत् तस्मिन् यवाभाश्चक्रशूलवत् ।
पद्माभं वाङ्कुशाभं वा यूकागाधतलान्वितम् ॥ ४४ ॥

वृत्ताभापेक्षिताङ्गेषु व्यासे पञ्चविभाजिते ।
एकांशं परिगृह्यात्र विस्तारत्रिगुणान्वितम् ॥ ४५ ॥

तत्तदङ्गपरीणाहं सुमतिः सम्प्रकल्पयेत् ।
कर्णोर्ध्वे शिरसो नाहं साष्टत्रिंशाङ्गुलं भवेत् ॥ ४६ ॥

कर्णोर्ध्वे तु शिरस्तारं यवोनद्वादशाङ्गुलम् ।
कर्णयोः पूर्वनाहं तु द्वाविंशद्भिरथाङ्गुलैः ॥ ४७ ॥

कर्णयोः पृष्ठनाहं तु भान्वङ्गुलमुदाहृतम् ।
तयोर्मध्यस्थभागं तु कर्णस्थितिरुदाहृता ॥ ४८ ॥

शिरसो मध्यमान्मूर्ध्नि मण्डलं चतुरङ्गुलम् ।
तथैवोदग्रकेशान्तं नवाङ्गुलमुदाहृतम् ॥ ४९ ॥
ततो वै मण्डलात् कर्णं केशान्तं च नवाङ्गुलम् ।
मण्डलात् पृष्ठकेशान्तं सार्धधर्माङ्गुलं स्मृतम् ॥ ५० ॥
ललाटे कीर्तिमानं[1] तु नवाङ्गुलमुदाहृतम् ।
केशान्तस्याक्षिसूत्रस्य द्वयोर्मध्ये ह्यवस्थितम् ॥ ५१ ॥
भ्रुवोरग्रं नवाङ्गुल्यं चापाकारं यथा कुरु ।
अन्तरं तु भ्रुवोश्चैव सार्धवेदयवं भवेत् ॥ ५२ ॥
पञ्चाङ्गुलं भ्रुवोर्दीर्घं मध्ये तारं यवद्वयम् ।
प्रतिपच्चन्द्रवत् क्षीणौ भ्रुवाग्रौ तस्य मध्यमात् ॥ ५३ ॥
कनीनिकाया विस्तारं यवमानं विशेषतः ।
कृष्णमण्डलविस्तारं चोत्सेधं षड्यवं भवेत् ॥ ५४ ॥
सितांशं तत्समव्यासं कृष्णमण्डलपार्श्वयोः ।
शफराकृतिकं वापि सरोजाकृतिमेव वा ॥ ५५ ॥
अर्धचन्द्राकृतिर्वापि नेत्राकारं प्रकल्पयेत् ।
तत्तारकानुकूल्योच्चं सितमण्डलकस्य हि ॥ ५६ ॥
अर्धनेत्रयवं रक्तं मण्डलं त्वधिकांशके ।
कृष्णमण्डलमध्ये तु ज्योतिर्मण्डलकं यवम् ॥ ५७ ॥
तदष्टांशैकभागं तु तन्मध्ये दृष्टिमण्डलम् ।
सार्धभूयवमानं तदूर्ध्वपक्ष्मविशालकम् ॥ ५८ ॥
अथ पञ्चयवैस्तुल्यं दीर्घमष्टादशैर्यवैः ।
नेत्रयोरन्तरं कुर्यात् सपादद्व्यंशमानतः ॥ ५९ ॥

---

१. 'कार्यमा' क. ग. पाठः.

कर्तुर्नाशमधोदृष्टिरूर्ध्वदृष्टिस्तथा विपत् ।
बन्धुनाशं पार्श्वदृष्टिर्ग्रामहानिं करोतु वा ॥ ६० ॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन समदृष्टिर्यथा कुरु ।
नासिकापुटबाह्यं तु तारमष्टादशैर्यवैः ॥ ६१ ॥

तदर्धं मध्यविस्तारं तस्यार्धं मूलविस्तृतिः ।
ओष्ठमूलात्तु नासाग्रं तुङ्गं तु द्यङ्गुलं भवेत् ।
द्वारतिर्यग्गतं व्यासं सार्धसप्तयवं स्मृतम् ।
द्वारतुङ्गं पञ्चयवं पुटं निष्पावबीजवत् ॥ ६३ ॥

तिलपुष्पवदाकारं नासिकाया विशेषतः ।
पुष्करोत्सेधमेकांशं तद्घनं त्रियवं भवेत् ॥ ६४ ॥

पुटयोर्मध्यभित्तिस्तु पुष्करं त्विह कथ्यते ।
अध्यर्धयवमालम्ब्य नासाग्रं पुटसूत्रतः ॥ ६५ ॥

सार्धवेदयवं गोष्ठं दीर्घं तस्यार्धविस्तृतम् ।
ऊर्ध्वोष्ठस्योर्ध्वबिम्बं तु गोजीनाम्ना प्रशंसितम् ॥ ६६ ॥

यवमानं तु तां गोजीं कृत्वैवं नासिकादधः ।
सपादचतुरंशं तु तिर्यगास्यगुहायतम् ॥ ६७ ॥

उत्तरोष्ठायतं तस्य दीर्घतुल्यमुदाहृतम् ।
उत्तरोष्ठस्य मध्ये तु ततं सार्धयवत्रयम् ॥ ६८ ॥

आनुपूर्व्या कृशं तारमास्यसीमावसानकम् ।
यवमानं घनं वापि तस्यौष्ठस्य तथोपरि ॥ ६९ ॥

त्रियवावनता वापि तदोष्ठसदृशायतम् ।
अष्टादशयवं प्रोक्तमधरोष्ठायतं तथा ॥ ७० ॥

यवाधिकाङ्गुलं तस्य विस्तारं परिकल्पयेत् ।
अधरं पालिका सार्धयवमानमधोगतम् ॥ ७१ ॥
चिबुकादधरोच्चं तु सार्धषड्यवमुच्यते ।
किञ्चित्प्रहसिताकारं सुष्ठु युक्त्या समाचरेत् ॥ ७२ ॥
अधराच्चिबुकालम्बं सार्धपक्षाङ्गुलं भवेत् ।
चिबुकात् तु हनोः स्थानं सार्धं च यवमुच्यते ॥ ७३ ॥
सार्धवह्नयङ्गुलं तस्य तारमायतवृत्तवत् ।
हनोः सन्धेः कर्णसन्धिर्द्व्यन्तरं तु दशाङ्गुलम् । ७४ ॥
हनोर्बाह्ये तदारभ्य पादोनद्विगुणाग्रकम् ।
कर्णवेशमिति ख्यातं तत्र कर्णं प्रकल्पयेत् ॥ ७५ ॥
नेत्रात् तु कर्णबन्धान्तविस्तारं सप्तमात्रकम् ।
कर्णस्य तु विशालं तु अष्टादश यवाः स्मृताः ॥ ७६ ॥
अक्षिसूत्रोर्ध्वतः कर्णतुङ्गं चाष्टादशा यवाः ।
तदर्धं चोर्ध्वबन्धं तु शेषं वृत्तमुदाहृतम् ॥ ७७ ॥
नेत्रसूत्रादधः कर्णं यवाः सप्तदश स्मृताः ।
सार्धवेदाङ्गुलं तस्मात् तस्य नालं प्रकल्पयेत् ॥ ७८ ॥
पूर्वभागे नतं व्योमभागं सार्धांशकं परम् ।
नालयोर्व्यासमाख्यातं पुनरर्धाङ्गुलं तयोः ॥ ७९ ॥
नालान्तरं त्रिपादांशं वेदांशं विस्तराद् घनम् ।
कर्णतुङ्गमशेषं तु यवैकोननवाङ्गुलम् ॥ ८० ॥
विफलीनवमर्धांशं द्विगुणं हि तदायतम् ।
उत्सेधं चार्धमात्रं स्यान्मूलादग्रं क्षयानुगम् ॥ ८१ ॥

द्विभागं पिञ्चषीदीर्घमध्यधांशं हि तत्तत्तम् ।
अक्षिसूत्रादधः कर्णचारमर्धाङ्गुलं भवेत् ॥ ८२ ॥
कर्णद्वारं ततो निम्नं सममेव तु वर्तुलम् ।
कर्णपालिघनं सार्धयवं नीत्रं चतुर्यवम् ॥ ८३ ॥
पृष्ठकर्णस्य विस्तारमध्यधांशमुदाहृतम् ।
केशान्तात् पृष्ठकर्णान्तस्यान्तरं त्वर्धमात्रकम् ॥ ८४ ॥
पृष्ठकर्णावसाने तु + + न्यधांशकं घनम् ।
तस्याधः पृष्ठकण्ठोच्चं युगांशं त्रियवाधिकम् ॥ ८५ ॥
कृकाटिकाधोग्रीवाग्र+ + + तन्नवांशकम् ।
पृष्ठग्रीवस्य मूलस्य तारं सार्धदशाङ्गुलम् ॥ ८६ ॥
मूलादग्रं क्रमात् क्षीणं ग्रीवं वृत्ताभमुच्यते ।
हिक्कासूत्रोपरि स्कन्धसन्धितुङ्गं युगाङ्गुलम् ॥ ८७ ॥
कर्णबन्धादधः सार्धषण्मात्रं स्कन्धसीमकम् ।
सप्ताङ्गुलघनं स्कन्धं हिक्कावधि क्रमात्क्षयम् ॥ ८८ ॥
पृष्ठग्रीवादधस्तात् तु ककुन्मानं दशाङ्गुलम् ।
तस्मादाकटिसन्ध्यन्तं वंशमृक्षाङ्गुलायतम् ॥ ८९ ॥
तद्वंशौ[1] नतविस्तारौ सार्धषोडशकैर्यवैः ।
वंशमानादधस्तात् तु वंशमूलं गुणाङ्गुलम् ॥ ९० ॥
अपरे तुङ्गमेव स्याद् व्यासं तस्य न संशयः ।
सार्धमृक्षाङ्गुलं प्रोक्तं कक्षयोरन्तरं पुनः ॥ ९१ ॥
कक्षाधस्थांसफलकतुङ्गं सप्ताङ्गुलं भवेत ।
कक्षोर्ध्वं बाहुसीमान्तं सप्ताङ्गुलमुदाहृतम् ॥ ९२ ॥

---

१. 'र्णा' क. ग. पाठः. २. 'श' ख. पाठः.

सार्धषोडशमात्रं तु मध्यव्यासमुदाहृतम्।
नाभिसूत्रे तु विस्तारं सार्धविंशाङ्गुलं तथा॥ ९३॥
कटिबन्धे तु विस्तारं त्रिषडङ्गुलमानतः।
पादोनधर्मभागं तु स्फिग्बिम्बं प्रति विस्तृतिः॥ ९४॥
सुवृत्तौ तौ समाख्यातौ तयोर्मध्यं चतुर्यवम्।
अपरे तारमेवोक्तं पार्श्वव्यासमथोच्यते॥ ९५॥
कक्षस्याग्रविशालं तु सप्तमात्रमुदाहृतम्।
सपादषोडशांशं तु हस्तसूत्रे तु विस्तृतिः॥ ९६॥
सपादद्वादशांशं तु मध्ये पार्श्वघनं भवेत्।
श्रोणीमध्ये घनं पार्श्वे सप्तोत्तरदशाङ्गुलम्॥ ९७॥
तत्र श्रोण्युदयं पूर्वैः सप्तमात्रं विधीयते।
नाभिसूत्रादधश्चोर्ध्वे चतुर्वह्न्यङ्गुलं हि तत्॥ ९८॥
श्रोण्यधस्तात् कटेरुच्चं सार्धभूताङ्गुलं भवेत्।
तत्कटेश्च घनं विद्यात् सार्धभान्वङ्गुलं भवेत्॥ ९९॥
तत्र श्रोण्युदयं कुर्यात् +++++++++।
+तुङ्गं चोरुमूलात् तु नीव्रं सार्धयुगाङ्गुलम्॥ १००॥
कक्षाज्जठरनिम्नं तु सार्धद्वयङ्गुलमुच्यते।
सूत्रं सुवृत्तनाभेस्तु रेखे द्वे परिवेष्टिते॥ १०१॥
कर्णमूले तु तत्तारं तुङ्गं चैव चतुर्यवम्।
हिक्कादश्चाक्षिसूत्रं तज्ज्ञानुसूत्रमुदाहृतम्॥ १०२॥
हिक्कामध्यात् तु कक्षान्तं कल्पयेत् त्रिभिरंशकैः।
कर्णमूले तु तां हिक्कासूत्राधस्तात् तु कल्पयेत्॥ १०३॥

हिक्कासूत्रोपरिष्टात् तु नीलकण्ठं प्रकल्पयेत् ।
हृदयात् स्तनपीठोच्चं द्व्यङ्गुलं समुदाहृतम् ॥ १०४ ॥
सप्तादशयवं ख्यातं स्तनमण्डलविस्तृतम् ।
तन्मध्ये चूचुकोच्चं तु व्यासं चैव यवद्वयम् ॥ १०५ ॥
नाभेस्तु स्तनविस्तारं व्योमांशं द्वियवं पुनः ।
तन्नाभिर्दक्षिणावर्तं मूले तारं यवद्वयम् ॥ १०६ ॥
तन्नाभ्यवटमध्यस्थसूत्रं ++++++ ।
नाभेरधः स( दाते ? पादे)न श्रोण्युच्चं पञ्चमात्रकम् ॥ १०७ ॥
तदर्धं तत्कटिश्रोणिगाढं तु व्यङ्गुलं भवेत् ।
तस्मादामेढ्रमूलं तु मेढ्रमूलं युगाङ्गुलम् ॥ १०८ ॥
सपादपञ्चमात्रं तु लिङ्गदीर्घमुदाहृतम् ।
लिङ्गमूलविशालं तु सप्तादशयवं स्मृतम् ॥ १०९ ॥
लिङ्गायामत्रिभागैकमग्रखण्ड्यायतं स्मृतम् ।
यदग्रखण्डिमूलं तु यवमानं बृहत्तरम् ॥ ११० ॥
रक्तोत्पलस्य मुकुलसन्निभं तु तदग्रकम् ।
मुष्कायामं विशालं च सार्धवेदाङ्गुलं भवेत् ॥ १११ ॥
घनं सार्धगुणांशं तु तन्मूलोर्ध्वोरुबन्धनम् ।
मेढ्रमूलस्य पीठस्य व्यासं सप्तार्धमात्रकम् ॥ ११२ ॥
मेढ्रमूलस्य पीठान्तमूरुमूलस्य मांसलम ।
जानुमण्डलविस्तारं सपादचतुरङ्गुलम् ॥ ११३ ॥
सार्धं तु द्व्यङ्गुलं प्रोक्तं जानुमण्डलनीव्रकम् ।
सार्धं तु द्व्यङ्गुलं प्रोक्तं पृष्ठजानुनतं विदुः ॥ ११४ ॥

मध्ये तु पार्श्वयोः शेषं यथासौन्दर्यमाचरेत् ॥ ११४½ ॥

इति शिल्परत्ने उत्तरभागे उत्तमदशतालक्षणं नाम
पञ्चमोऽध्यायः ॥

## अथ षष्ठोऽध्यायः ।

### अथ मध्यमं दशतालम् ।

मध्यमं दशतालेन स्त्रीमानमिह वक्ष्यते ।
उष्णीषोदयमेकांशं केशान्तं तु गुणाङ्गुलम् ॥ १ ॥

केशान्तादक्षिसूत्रान्तं सत्रिपादयुगांशकम् ।
अक्षिसूत्रात् पुटान्तं तु सार्धवेदांशमिष्यते ॥ २ ॥

नासापुटात तु हन्वन्तं सत्रिपादगुणांशकम ।
तस्याधः कम्बुमानं तु चतुर्भागमुदाहृतम ॥ ३ ॥

हिक्कादिहृदयान्तं च हृदयान्नाभिसीमकम ।
नाभ्यादियोनिपर्यन्तं त्रयोदशांशकं पृथक् ॥ ४ ॥

ऊरुदीर्घं तु षड्विंशदंशं जानु युगांशकम् ।
ऊरुदीर्घसमं जङ्घा तलोच्चं तु युगांशकम् ॥ ५ ॥

विस्तारः शिवशैलकैर्मुखगलेऽत्यष्ट्या द्विकक्षान्तरे
वक्षोजे नवभिः पृथक् च तदधो विश्वैः शिवैर्मध्यतः ।
कृत्या श्रोणितले कटौ रवियुगनोर्वोः सजानुद्वये
जङ्घायुङ्नलकेऽर्कशैलरसवेदैश्चाङ्गुलैः सम्मितैः ॥ ६ ॥

उत्कृत्याधिभुजं प्रकोपरमनु द्वाभ्यां प्रकोष्ठे तले
धृत्या सप्तभिरातनिर्युगशराङ्गेष्वर्णवैरङ्गुलैः ।
अङ्गुष्ठादिषु तत्ततिर्नवनगाद्यद्यङ्गसङ्ख्यैर्यवैः
स्त्रीष्वश्वैर्मणिबन्धकोपरभुजामूलेऽङ्गुलैर्विस्तृतिः ॥ ७ ॥

तर्जन्यग्रिमयोर्युगैर्युगयवन्यूनैः पराङ्घ्र्यङ्गुलि-
ष्वायामोऽङ्गुलकैर्नृपाष्टसदलाद्यद्यङ्गसङ्ख्यैर्यवैः ।
व्यासः सार्धयुगाङ्गुलैः स्तनसमुत्सेधस्त्रिभिश्चूचुके
व्यासोऽक्षे श्रुतिभिर्यवैर्ऋतुमितैर्नाभौ दृशाक्षोन्नतिः ॥ ८ ॥

योनिपीठविशालं तु सप्ताङ्गुलमुदाहृतम् ।
योनितारं चतुर्भागं विस्तारसदृशोन्नतम् ॥ ९ ॥

कार्यं वटस्य पत्राभं योनिं कुर्यान्मनोहरम् ।
स्तनान्तरं यवाष्टांशमन्तरं तु स्तनाक्षयोः ॥ १० ॥

अत्यष्टयंशं बाहुबाह्यमेकत्रिंशाङ्गुलं ततम् ।
शेषमुत्तमतालोक्तमार्गेणैव समाचरेत् ॥ ११ ॥

एवमेव प्रकर्तव्यं युक्त्या पुंमानकं त्वपि ॥ ११½ ॥

इति शिल्परत्ने उत्तरभागे मध्यमदशताल-
विधिर्नाम षष्ठोऽध्यायः ॥

---

## अथ सप्तमोऽध्यायः ।

### अथाधमं दशतालम् ।

उष्णीषमङ्गुलं प्रोक्तं केशमानं गुणाङ्गुलम् ।
केशान्ताद्भ्रुवोरन्तं सार्धबाणाङ्गुलं भवेत् ॥ १ ॥

युगाङ्गुलं कण्ठमानं हिक्कासूत्रान्तमाचरेत् ।
हिक्कादिहृदयान्तं च तस्मान्नाभ्यन्तमेव च ॥ २ ॥

नाभेस्तु मेढ्रपर्यन्तं सार्धभान्वङ्गुलं पृथक् ।
मेढ्राज्जान्वग्रपर्यन्तं पञ्चविंशाङ्गुलं स्मृतम् ॥ ३ ॥

वेदाङ्गुलं तु जानुः स्याज्जङ्घा चोरुसमा स्मृता ।
वेदांशं चरणोत्सेधमेवं स्यादङ्गतुङ्गता ॥ ४ ॥

उष्णीषात् पृष्ठकेशान्तं सार्धभान्वङ्गुलं स्मृतम् ।
उष्णीषात् पार्श्वकेशान्तमष्टमात्रमुदाहृतम् ॥ ५ ॥

उष्णीषात् पूर्वकेशान्तं पञ्चमात्रमिति स्मृतम् ।
केशान्ताद्भ्रुवपर्यन्तं त्रिभिर्भागैर्विभाजिते ॥ ६ ॥

केशान्तादक्षिसूत्रान्तं तस्मान्नासापुटान्तकम् ।
तस्मात् तद्भ्रुवपर्यन्तं प्रत्येकं चैकभागतः ॥ ७ ॥

यवान्वितद्विमात्रं तु नेत्रयोरन्तरं तथा ।
तत्समं नयनायामं भूतमात्रं भ्रुवायतम् ॥ ८ ॥

भ्रूमध्यात्तूर्ध्वकेशान्तं सप्तादशयवं स्मृतम् ।
यवं भ्रुवोर्मध्यतारं कृशान्नासाक्रमात् ततः ॥ ९ ॥

षड्यवं नेत्रविस्तारमूर्ध्वचर्म यवार्धकम् ।
अधोचर्म च तत्तुल्यं कंबीरं तु पदं भवेत् ॥ १० ॥

नेत्रायामत्रिभागैकं कृष्णमण्डलविस्तृतम् ।
यवमानं तु तन्मध्ये ज्योतिर्मण्डलकं स्मृतम् ॥ ११ ॥

अधोचर्मस्थितिं नेत्रसूत्रे कुर्याद् विशेषतः ।
तस्य केशान्तयोर्मध्ये भ्रूस्थितिर्बालचन्द्रवत् ॥ १२ ॥

१. 'सीमान्तं' ग. पाठः.

कर्णस्थानं च कर्णं च उत्तमंदशतालवत् ।
घ्राणमूलस्य विस्तारं यवमात्रमुदाहृतम् ॥ १३ ॥
नासिकाग्रविशालं तु व्योममात्रमिति स्मृतम् ।
अधरोष्ठस्य चायामं पक्षमात्रमुदाहृतम् ॥ १४ ॥
तदर्धं तस्य विस्तारं चिबुकं तु यवद्वयम् ।
विस्तारं तत्समं विद्यान्निम्नमर्धयवं स्मृतम् ॥ १५ ॥
ततोऽधोभागनिष्क्रान्तं यवोनव्योममात्रकम् ।
ग्रीवामूलविशालं तु वस्वङ्गुलमुदाहृतम् ॥ १६ ॥
ग्रीवाग्रस्य तु विस्तारं सार्धसप्ताङ्गुलं तथा ।
वक्षःस्थलस्य विस्तारं सप्तत्रिंशतिमात्रकम् ॥ १७ ॥
पञ्चविंशतिमात्रं तु बाहुदीर्घमुदाहृतम् ।
आयामं तु प्रकोष्ठस्य एकोनविंशदङ्गुलम् ॥ १८ ॥
तस्मान्मध्याङ्गुलाग्रान्तं सार्धद्वादशमात्रकम् ।
तदर्धं तु तलायामं शेषं मध्याङ्गुलायतम् ॥ १९ ॥
अङ्गुष्ठस्य तु तद्दीर्घमष्टाविंशद्यवं स्मृतम् ।
सार्धवेदाङ्गुलं प्रोक्तमनामिकाङ्गुलायतिः ॥ २० ॥
तथैव तर्जनीदीर्घं कनिष्ठस्य युगाङ्गुलम् ।
धर्माष्टवसुषड्भूतयवा ज्येष्ठादिविस्तृतिः ॥ २१ ॥
तत्तदष्टमभागोनं तेषामग्रविशालकम् ।
अग्रव्यासे तु भूतांशे त्रिभागं नखविस्तृतम् ॥ २२ ॥
विस्तरेण सपादं तु नखायामं प्रकीर्तितम् ।
यवत्रयं तलघनं तदष्टांशोनमग्रतः ॥ २३ ॥

तलायामसमं ज्ञेयं तलस्यैव विशालकम् ।
मणिबन्धस्य विस्तारं यवाधिकगुणाङ्गुलम् ॥ २४ ॥
प्रकोष्ठमूलविस्तारं वस्वङ्गुलमुदाहृतम् ।
अर्धभूतांशकं बाह्वोरग्रदेशविशालकम् ॥ २५ ॥
सार्धषण्मात्रकं ज्ञेयं बाहुमध्यस्य विस्तृतम् ।
बाहुमूलविशालं तु वस्वङ्गुलमुदाहृतम् ॥ २६ ॥
बाहुपर्वान्तविस्तारमष्टत्रिंशाङ्गुलं भवेत् ।
हिक्कासूत्रात्तु कक्षान्तं वस्वङ्गुलमुदाहृतम् ॥ २७ ॥
द्वाविंशदङ्गुलं प्रोक्तं कक्षयोरन्तरं पुनः ।
हृदयावधि विस्तारं भवेदष्टादशाङ्गुलम् ॥ २८ ॥
उदरस्य तु विस्तारं सप्तादशाङ्गुलं भवेत् ।
श्रोणिप्रदेशविस्तारमष्टादशांशमुच्यते ॥ २९ ॥
षड्यवं नाभिविस्तारं निम्नमर्धयवं[1] भवेत् ।
स्तनमण्डलविस्तारमर्धमात्रमुदाहृतम् ॥ ३० ॥
चूचुकं च यवं प्रोक्तमुत्सेधं तत्समं भवेत् ।
द्वयोः स्तनाक्षयोरन्तः सार्धद्वादशमात्रकम् ॥ ३१ ॥
मुष्कायामं तु वेदांशं विस्तारं चैव तत्समम् ।
लिङ्गं पञ्चाङ्गुलायाममौत्पलं मुकुलं तथा ॥ ३२ ॥
कटिप्रदेशे विस्तारं षड्यवाष्टादशाङ्गुलम् ।
ऊरुमूलविशालं तु सार्धद्वादशमात्रकम् ॥ ३३ ॥
ऊर्वग्रस्य तु विस्तारं सार्धरन्ध्राङ्गुलं स्मृतम् ।
जानुमध्यविशालं तु सार्धवस्वङ्गुलं भवेत् ॥ ३४ ॥

१. 'र्धं' क. ग. पाठः.

जङ्घामूलविशालं तु सार्धषण्मात्रमुच्यते ।
नलकायास्तु विस्तारं सार्धवेदाङ्गुलं भवेत् ॥ ३५ ॥
अङ्घ्रेस्तलस्य विस्तारं चतुरङ्गुलमिष्यते ।
तलमध्यविशालं तु भूताङ्गुलमुदाहृतम् ॥ ३६ ॥
पादाङ्गुष्ठसमायामं चतुर्मात्रमुदाहृतम् ।
अनामिकादीर्घमानं कुर्यात् त्रिंशद्यवैस्तथा ॥ ३७ ॥
मध्याङ्गुलं च तत्तुल्यं वेदांशं तदनामिका ।
कनिष्ठिकाया दीर्घं तु सार्धवह्न्यङ्गुलं भवेत् ॥ ३८ ॥
सप्ताष्टनवधर्माख्यैर्यवैर्विश्वाभिधैः क्रमात् ।
कनिष्ठाद्यङ्गुलीनां तु विस्तारं प्रविधीयते ॥ ३९ ॥
अग्रमूलसमं प्रोक्तं तत्तारं त्रिभिरंशयेत् ।
द्विभागं नखविस्तारमायामं तत्समं तथा ॥ ४० ॥
आयामवर्तुलाकारमर्धचन्द्राकृतिर्भवेत् ।
तलाग्रेऽङ्गुष्ठमूले तु द्विमात्रं तु घनं स्मृतम् ॥ ४१ ॥
कनिष्ठायां नवयवं तलस्य घनमुच्यते ।
कक्षयोरन्तरं पृष्ठे चतुर्विंशतिमात्रकम् ॥ ४२ ॥
अत्रानुक्तं तु यत् सर्वमुत्तमं दशतालवत् ॥ ४२$\frac{1}{2}$ ॥

इति शिल्परत्ने उत्तरभागेऽधमदशतालं नाम
सप्तमोऽध्यायः ॥

---

## अष्टमोऽध्यायः ।

### अथोत्तमं नवतालम् ।

उष्णीषं त्वेकभागेन केशान्तं तद्गुणाङ्गुलम् ।
केशान्तादक्षिसूत्रान्तं वेदमात्रमिति स्मृतम् ॥ १ ॥

तस्मात् पुटान्तं वेदांशं पुटाद्धन्वन्तकं तथा ।
कण्ठमानं तु वेदांशं भान्वंशं हृदयावधि ॥ २ ॥
ततस्तु नाभिसूत्रान्तं तथा द्वादशमात्रकम् ।
नाभ्यादिमेढ्रमूलान्तं भानुमात्रं विधीयते ॥ ३ ॥
ऊरुदीर्घं चतुर्विंशदंशं जानु युगांशकम् ।
जङ्घादीर्घं तूरुतुल्यं वेदांशं चरणोदयम् ॥ ४ ॥
छत्राकारं भवेच्छीर्षं शिखादेशं समुद्गतम् ।
शिखायाः पूर्वभागे तु किञ्चिन्निम्नं भवेत् तथा ॥ ५ ॥
शिखायाः पार्श्वयोर्निम्नं कलामात्रं विहाय तत् ।
शिखायाः पश्चिमे भागे प्रोन्नतं जायते मनाक् ॥ ६ ॥
ततोऽधस्ताद् भवेद् गर्तः प्रणालसदृशाकृतिः ।
एकाङ्गुलस्तु विस्तारो दैर्घ्यं स्यादङ्गुलद्वयम् ॥ ७ ॥
कर्णाग्रसन्धौ संलग्नं कर्णपृष्ठेऽङ्गुलान्ततः ।
ततो द्व्यङ्गुलातीतस्त्र्यङ्गुलोऽथ कथोद्भवः ॥ ८ ॥
एकैकाङ्गुलविस्तारः शिरोगर्तस्य पार्श्वयोः ।
इत्येष पश्चिमे भागे कथितः केशसम्भवः ॥ ९ ॥
केशाः कृष्णाः पिशङ्गा वा जटिलाः कुटिलाः क्वचित् ।
विरच्यन्ते यथाशोभं तत्तद्रूपानुसारतः ॥ १० ॥
अष्टादशाङ्गुलं पूर्वं पश्चिमार्धं तथैव च ।
भवेतां कर्णयोरूर्ध्वभागौ पूर्वापरौ यमौ ॥ ११ ॥
सीमन्ताद् गर्तमध्यान्तं भवेदष्टादशाङ्गुलम् ।
वामदक्षिणयोर्वेष्टाद् भवेत्तालैस्त्रिभिर्मितम् ॥ १२ ॥

१. 'र्णं' क. ख. पाठ.

एवं भागद्वयेऽप्युक्तो विस्तारो मस्तकाश्रयः ।
षट्त्रिंशदङ्गुलो ज्ञेयः परिणाहो विचक्षणैः ॥ १३ ॥
भ्रूपृष्ठात् केशपर्यन्तं ललाटं त्र्यङ्गुलं भवेत् ।
भ्रूयुग्ममध्यादारभ्य ततोऽध्यर्धकलामितम् ॥ १४ ॥
भ्रुवोः प्रान्तं तदेव स्यात् कलाद्वितयसम्मितम् ।
आरोपितधनुःप्रख्या भ्रुवोर्लेखा विरच्यते ॥ १५ ॥
मात्रार्धकृतविस्तारात् क्रमशः परिहीयते ।
प्रान्ते श्लक्ष्णा च तीक्ष्णा च सा दैर्घ्ये त्र्यङ्गुला भवेत् ॥
त्रियवं रोमदैर्घ्यं तु भ्रुवोर्मध्ये विधीयते ।
द्वियवं तु भवेदादौ प्रान्ते स्याद् यवमात्रकम् ॥ १७ ॥
वितर्कसहने कोपे विस्मये मध्यकुञ्चिता ।
जुगुप्सिते सूक्ष्मदृष्टौ भ्रूमूलं कुञ्चितं भवेत् ॥ १८ ॥
केशान्तरेखाविन्यासे द्वितीयेन्दुकलाकृतिः ।
प्रान्तादुत्प्रेक्षनामानौ प्रदेशौ परिकीर्तितौ ॥ १९ ॥
उत्क्षेपाभ्यां समौ कुर्याद् भ्रुवोः प्रान्तौ विचक्षणः ।
एवं ललाटमानं तु चतुष्कलमुदाहृतम् ॥ २० ॥
उत्क्षेपः प्रान्तदेशे स्याद् ऋजुरूपाल(ता ?का)वली ।
कलामात्रे च सा ज्ञेया स्थापनीसूत्रकावधिः ॥ २१ ॥
ततस्तिर्यग् भवेद् रेखा मात्राद्वितयसम्मिता ।
निर्गच्छति ततः कूर्चं तद्रेखामात्रया मिता ॥ २२ ॥
कूर्चरेखा भ्रुवोः प्रान्तं मध्यं स्यादङ्गुलद्वयम् ।
स एव शङ्खो विख्यातः प्रदेशविधिकोविदैः ॥ २३ ॥

पिप्पल्याः कूर्चरेखाया भवेदन्तरमङ्गुलम् ।
एवं ललाटविन्यासः कथितः सोमभूभुजा ॥ २४ ॥
अर्धाङ्गुलं भ्रुवोर्मध्यान्नसो मूलं निरूपितम् ।
किञ्चिल्ललाटतो निम्नं तस्याः पार्श्वे निरूपिते ॥ २५ ॥
समन्तान्नेत्रयोर्गर्तावक्षिकूटौ प्रकल्पितौ ।
अर्धाङ्गुलप्रमाणौ तौ (तेन ? नेत्र)वर्त्मबहिःस्थितौ ॥ २६ ॥
अर्धाङ्गुलप्रमाणेन नेत्रे वर्त्मद्वयं भवेत् ।
निमीलनादूर्ध्ववर्त्म भवेदङ्गुलसम्मितम् ॥ २७ ॥
त्रियवं पक्ष्मणोर्दैर्घ्यं (सान्द्रमापतिमाशुभाः ?) ।
अर्धाङ्गुलमिते स्यातां नेत्रमूले निरूपिते ॥ २८ ॥
द्व्यङ्गुलं नेत्रयोर्दैर्घ्यं विस्तारं स्यात्तदर्धतः ।
पञ्चपञ्चयवौ कार्यौ शुक्लभागौ विचक्षणैः ॥ २९ ॥
तन्मध्ये मेचकं कुर्यान्मण्डलं वर्तुलाकृति ।
तच्च पञ्चयवं प्रोक्तं तन्मध्ये दृष्टिरिष्यते ॥ ३० ॥
वर्तुला यवमात्रा च पुत्रिकाप्रतिबन्धिनी ।
रक्तता प्रान्तयोः शस्ता तीक्ष्णतापाङ्ग्योः शुभा ॥ ३१ ॥
मध्योन्नतं नेत्रगोलं (कर्त्रा कार्यं प्रयत्नतः ।
आकारो नेत्रयोः कार्यो नीलोत्पलदलोपमः ॥ ३२ ॥
अपाङ्गयोरधः कार्यौ) कपोलौ द्व्यङ्गुलोन्नतौ ।
कर्णपिप्पलिदेशान्तौ तिर्यक्सूत्रेण मापितौ ॥ ३३ ॥
अपाङ्गपिप्पलीमध्यं पञ्चाङ्गुलमुदाहृतम् ।
तदेव च समं तिर्यङ्मापितं चतुरङ्गुलम् ॥ ३४ ॥

ऊर्ध्वाधोबन्धयोर्मध्यं कर्णाधस्त्र्यङ्गुलं भवेत् ।
उपर्येकाङ्गुलं यस्मात् कर्णावर्तस्य मण्डलम् ॥ ३५ ॥
कर्णावर्तबहिर्लेखा वृत्तायतस्वरूपिणी ।
षडङ्गुलायता रम्या सा रेखा परिकीर्तिता ॥ ३६ ॥
अन्तःस्था तु भवेद् रेखा तदाकाराभिरुच्यते ।
रेखाद्वितीयमध्यस्य विस्तारः परिकथ्यते ॥ ३७ ॥
आदौ चतुर्यवः प्रोक्तो मध्ये च द्वियवो भवेत् ।
प्रान्ते तु यवमात्रं स्यात् क्रमेणैव निरूपितम् ॥ ३८ ॥
ऊर्ध्वाधोबन्धयोर्मध्यमङ्गुलत्रयमीरितम् ।
तन्मध्ये पिप्पलीमात्रं पिप्पलीफलसन्निभा ॥ ३९ ॥
तस्य मूले भवेद् रन्ध्रं शब्दश्रवणकारणम् ।
चतुर्यवप्रमाणं तत् पिप्पल्या विनिगूहितम् ॥ ४० ॥
अधस्तात् पिप्पलीभागाल्लकाराख्या भवेद् बहिः ।
सा स्यादर्धाङ्गुलायामा यवत्रितयविस्तृता ॥ ४१ ॥
ऊर्ध्वाङ्गत्वात्[1] स्पृशेद् रेखां कर्णाभ्यन्तरवर्तिनीम ।
रेखायाश्च बिलं मध्यं पिञ्छषीति निगद्यते ॥ ४२ ॥
बिले बाह्यप्रदेशः स्यादुत्पात इति संज्ञया ।
अधोभागेन पिञ्छष्या लकारो यत्र सङ्गतः ॥ ४३ ॥
बहिस्तत्रोन्नता दृश्या सा चूलीति निगद्यते ।
चतुर्यवायता ज्ञेया यवद्वितयविस्तृता ॥ ४४ ॥
लकारमध्ये यद् दृश्यं श्रोत्रमध्यस्य पार्श्वगम् ।
यत्कर्णकुहरं प्रोक्तमर्धाङ्गुलमितं शुभम् ॥ ४५ ॥

---

१. 'र्ध्वांशत्वा' ख. पाठः.

ऊर्ध्वकर्णस्य विस्तारः स यवद्वयगोलकः ।
मध्ये च द्यङ्गुलो ज्ञेयस्तले मात्रा च षड्यवा ॥ ४६ ॥

ततोऽधः पालिका कार्या चतुरङ्गुलमायता ।
स्यादर्धाङ्गुलविस्तारा मूले मात्रामिता शुभा ॥ ४७ ॥

मुनिबालादिकर्णानामविद्वानां विशेषतः ।
प्रमाणमङ्गुलं प्रोक्तं कर्णपाल्या विचक्षणैः ॥ ४८ ॥

कनीनिमध्यमुद्दिष्टं नासामूलं तदङ्गुलम् ।
अध्यर्धमङ्गुलं मध्यं नासाग्रं द्यङ्गुलं भवेत् ॥ ४९ ॥

घोणाग्रमङ्गुलं तच्च तदर्धेन पुटो भवेत् ।
अङ्गुलद्वयविस्तारं नासायामिति कीर्तितम् ॥ ५० ॥

घोणाबिलं समुद्दिष्टं कनिष्ठाङ्गुलिमात्रकम् ।
श्रमे श्वासे स हासे च कोपे कामे ततोऽधिकम् ॥ ५१ ॥

तिलपुष्पसमाकारा किञ्चिदग्रे समुन्नता ।
ततोऽर्धमात्रं विस्तारं श्मश्रुदेशो निगद्यते ॥ ५२ ॥

तस्य द्विगोलकायामो नासायाः पुरतः स्थितः ।
तस्य मध्ये भवेद् गोजिः प्रणालाकारधारिणी ॥ ५३ ॥

अर्धाङ्गुलं भवेद् दैर्घ्यं विस्तारं त्रियवं भवेत् ।
उत्तरोष्ठो भवेत्तस्य अधस्थाद् भागदैर्घ्यकः ॥ ५४ ॥

यवपञ्चकविस्तारः क्रमशः परिहीयते ।
श्मश्रूत्तरोष्ठयोर्मध्ये रेखा किञ्चित् समुज्ज्वला ॥ ५५ ॥

उन्नता यवमात्रा स्याद् दैर्घ्यादोष्ठप्रमाणिनी ।
अधरोष्ठो भवेत्तस्या अधस्ताद् भागदैर्घ्यकः ॥ ५६ ॥

ओष्ठयोरुभयोः प्रान्तसंयोगौ सृक्किणी मतौ ।
नेत्रज्योतिःसमे कार्ये विकाररहिताकृतौ ॥ ५७ ॥
विकारे वर्धते सृक्कं तथा सङ्कोचमेति च ।
हसनोदनविष्कासे भीते तर्के च रोदने ॥ ५८ ॥
वर्धते सृक्कणोर्द्वन्द्वमेकाङ्गुलमथायतौ ।
चुम्बने तौ + + तद्वदाम्रादिफलचूषणे ॥ ५९ ॥
संकुचेत् सृक्कणोऽत्यर्थमेकैकाङ्गुलहानितः ।
गोजिकाधौरयोर्मध्यं त्वाधाने चतुरङ्गुलम् ॥ ६० ॥
पार्श्वद्वयं क्रमाद्धीनं त्रिद्व्येकाङ्गुलमानतः ।
दन्ता द्वादश दृश्याः स्युः पङ्क्तिद्वयसमाश्रिताः ॥ ६१ ॥
ऊर्ध्वाः पञ्चयवा दृश्यास्तलस्थास्त्रियवास्तथा ।
राजदन्तौ तु मध्यस्थावूर्ध्वपङ्क्तिसमाश्रितौ ॥ ६२ ॥
तयोः पार्श्वगतौ मध्यौ तत्पार्श्वे परिपक्षके ।
अधः पङ्क्तिगतौ मध्यौ दन्तिसन्दर्शनामकौ ॥ ६३ ॥
तत्पार्श्वगौ कर्तनाख्यौ ततः स्यातां तु खण्डनौ ।
सुश्लक्ष्णाः कान्तिसम्पन्नाः स्वच्छाः शुभ्रा निरन्तराः
[॥ ६४ ॥
दशनाः शिल्पिभिः कार्या अच्छायालेखनेऽपि च ।
चिबुकाखण्डने हासे त्रासादङ्गुलिचर्मणा ॥ ६५ ॥
दर्पणालोकने दृश्या दशनच्छदगूहिताः ।
सृक्कणः पार्श्वगौ देशौ गलान्तात्तु निरस्थिकौ ॥ ६६ ॥

१. 'ध' क. ग. पाठः.

तस्माद् बहिश्चलास्थि स्यात् कर्णमूलेन सङ्गतम् ।
क्रमशो हीयते तत् तु यावत् स्याद्धनुमण्डलम् ॥ ६७ ॥
सार्धाङ्गुलं भवेदूर्ध्वं तिर्यक् स्याच्चतुरङ्गुलम् ।
अधरोष्ठतलोद्देशे चिबुकं समुदाहृतम् ॥ ६८ ॥
कुञ्जकूर्चं भवेत्तस्मिन्निम्नं मात्राप्रमाणकम् ।
हनुपृष्ठे भवेत् कूर्चं प्रबलास्थिक्रमेण तु ॥ ६९ ॥
यवमात्रं प्रकुर्वीत कूर्चं प्रथमसम्भवम् ।
द्व्यष्टवत्सरदेहस्य पुरुषस्य विचक्षणः ॥ ७० ॥
प्रकुर्वीत ततश्चोर्ध्वमधिकं यवमानतः ।
अष्टाङ्गुलं भवेद् ग्रीवा विस्तारेण निरूपिता ॥ ७१
द्विगोलार्धं च दैर्घ्येण परिणाहे द्वितालिका ।
ग्रीवामध्यप्रदेशे तु तदधस्तु ततोऽधिका ॥ ७२ ॥
हिक्काया हृदयं तालस्तालश्च स्तनचूचुके ।
कक्षमूले तथा तालस्तालः कक्षधरो भवेत् ॥ ७३ ॥
कन्धरात् स्कन्धसन्धिः स्याद्धिक्कायाश्चतुरङ्गुलः ।
कक्षमूलात् कक्षधरो भवेदष्टाङ्गुलायतः ॥ ७४ ॥
हिक्कायाः पार्श्वयोर्लग्ने जत्रुणी भुजमूर्धगे ।
एकादशाङ्गुले प्रोक्ते किञ्चिदुन्नतविग्रहे ॥ ७५ ॥
हिक्कायाः कक्षमूलाच्च स्तनचूचुकलाधृतः ।
मध्ये वक्षःस्थलं प्रोक्तं तालमात्रं समन्ततः ॥ ७६ ॥
द्वयोश्चूचुकयोर्मध्यं तालमात्रमुदाहृतम् ।
कुचचूचुकयोर्वृत्तं मेचकं द्व्यङ्गुलं भवेत् ॥ ७७ ॥

चूचुको(न्म ? म)ण्डलस्यान्तर्यवमात्रो निगद्यते ।
उत्सेधं विस्तृतं तद्वत् प्रमाणेन निगद्यते ॥ ७८ ॥
स्त्रीणां तु द्वियवः कार्यश्चिबुकश्चित्रकारकैः ।
प्रोक्तः स्तनपरीणाहस्तासामष्टादशाङ्गुलः ॥ ७९ ॥
बृहती नाम तत् ख्यातं कक्षमूलस्तनान्तरम् ।
षडङ्गुलं च मानेन सूत्रितं सूत्रकोविदैः ॥ ८० ॥
स्तनद्वितयमध्यस्थः किञ्चिन्निम्नः कलामितः ।
प्रदेशो वार्ध इत्युक्तः शिल्पशास्त्रविशारदैः ॥ ८१ ॥
कन्धरात् स्कन्धसन्धेस्तु बाहुमूर्ध्नाद् द्विभागतः ।
पूर्वापरे कक्षमूले तालेनैकेन सम्मिते ॥ ८२ ॥
अभ्यन्तरे तथैव स्यात् ताल एको निरूपितः ।
कक्षमूलपरीणाहस्तदैव स्याद् द्वितालकः । ८३ ॥
बाहुशीर्षोश्च बाह्वोश्च सन्धिस्थानं निरूपितम् ।
कक्षमूला + + द्वन्द्वतिर्यक्सूत्रप्रमाणतः ॥ ८४ ॥
वार्धदेशाद् भवेन्नाभिस्तालेनैकेन मापिता ।
नाभिरङ्गुलविस्तारा वर्तुलार्धाङ्गुलोपगा ॥ ८५ ॥
वार्धस्य पार्श्वयोस्तिर्यग् विस्तारस्तु द्विभागिकः ।
चतुर्यवसमोपेतस्त्वेवं सप्तदशाङ्गुलः ॥ ८६ ॥
वार्धदेशे परीणाह एकपञ्चाशदङ्गुलः ।
ततोऽ(धान्म ? धोम)ध्यभागस्तु प्रोक्तो मनुमिताङ्गुलः
[॥ ८७ ॥
मध्यदेशपरीणाहो द्विचत्वारिंशदङ्गुलः ।
नाभिदेशस्य विस्तारो भवेच्चन्द्रकलाङ्गुलः ॥ ८८ ॥

नाभिस्थाने परीणाहो भवेत् तालचतुष्टयम् ।
श्रोणिदेशः स विख्यातः कायस्थानपरीक्षकैः ॥ ८९ ॥
पक्वाशयाख्यके गात्रे विस्तारोऽष्टादशाङ्गुलः ।
पक्वाशयपरीणाहश्चतुष्पञ्चाशदङ्गुलः ॥ ९० ॥
स प्रदेशः कटिर्नाम काञ्चीनामपि धारकः ।
स्त्रीणां चेदधिकः कार्यो भागेनैकेन कर्तृभिः ॥ ९१ ॥
वस्तिमस्तकसूत्रस्य सप्तपञ्चाशदङ्गुलः ।
परिणाहो विधातव्यस्तत्त्रिभागे विनास्तिभिः ॥ ९२ ॥
वस्तिसूत्रस्य विस्तारो विंशत्यङ्गुलसम्मितः ।
तस्य प्रोक्तः परीणाहः षष्टयङ्गुलमितो बुधैः ॥ ९३ ॥
जठ(रे ? रो) वक्षसा युक्तः कार्यो गोमुखसन्निभः ।
स्त्रीणां मध्यं कृशं कार्यं भागेन त्रिंशदङ्गुलैः ॥ ९४ ॥
भागेनैकेन तस्याधो लिङ्गसूत्रं प्रकल्पयेत् ।
पञ्चाङ्गुलं लिङ्गदैर्घ्यं मुष्कयोश्चतुरङ्गुलम् ॥ ९५ ॥
लिङ्गसूत्रस्य विस्तारः कलामात्रो निगद्यते ।
पार्श्वयोरुभयोस्तस्य मुष्कमूलाद् द्विमात्रकम् ॥ ९६ ॥
एवं चली स्यान्मुष्कस्य मूलं स्याच्चतुरङ्गुलम् ।
मूले प्रान्ते प्रकर्तव्ये रेखे वङ्क्षणमाश्रिते ॥ ९७ ॥
विनिर्गते कलामात्रं तयोर्मध्यं द्विभागिकम् ।
रेखयोः प्रान्तयोर्यस्तैर्विस्तारः स्यात् षडङ्गुलः ॥ ९८ ॥
भाग एको लिङ्गदैर्घ्यं मणिरेखाङ्गुलं ततः ।
षडङ्गुलः परीणाहो मणिभूमि + को मनाक् ॥ ९९ ॥

मुष्कयोर्भागिकं दैर्घ्यं तदर्धं बीजसंयुतम् ।
भागे वा मूलभागे स्यात् कपिनासा प्रकल्प्यते ॥ १०० ॥

मुष्कौ सबीजकौ वृत्तौ भागद्वयविभाजितौ ।
तावन्मात्रपरीणाहौ कर्तव्यौ शिल्पकोविदैः ॥ १०१ ॥

अधस्तान्नीतसूत्रस्य लग्ने स्यातां कुकुन्दरे ।
स्फिजोरधःपरीणाहस्त्रयस्त्रिंशन्मिताङ्गुलः ॥ १०२ ॥

ऊरुमध्यपरीणाहः कार्यः षट्त्रिंशदङ्गुलः ।
आणिदेशपरीणाहो भवेत् तालद्वयान्वितः ॥ १०३ ॥

क्रमशो हीयमानौ तावूरू कार्यौ विचक्षणैः ।
अरोमकौ वलीशून्यौ रम्भास्तम्भकृतोपमौ ॥ १०४ ॥

श्लक्ष्णौ मनोहरौ वृत्तौ पुंसां वा युवतीषु वा ।
ततस्तु जानुनी कार्ये चतुरङ्गुलमायते ॥ १०५ ॥

अङ्गुलत्रयविस्तारे तत्पार्श्वौ द्विकलौ मतौ ।
परिणाहोऽपि तस्य स्यादङ्गुलान्येकविंशतिः ॥ १०६ ॥

पश्चाद्भागे मनाङ् निम्ने मध्ये किञ्चित्समुन्नते ।
जङ्घामूलपरीणाहो भवेत् षोडशमात्रकः ॥ १०७ ॥

इन्द्रवस्तिपरीणाहो भवेदष्टादशाङ्गुलः ।
तिर्यक्सूत्रं समं पार्ष्णेरङ्गुलं समुदाहृतम् ॥ १०८ ॥

पार्ष्णिदेशस्य विस्तारो भवेत् पञ्चभिरङ्गुलैः ।
भागमात्रात् तलादूर्ध्वं पार्ष्णितो भागतः पुरः ॥ १०९ ॥

गुल्फौ द्व्यङ्गुलकौ कार्यौ विस्तारेण समन्ततः ।
पादपृष्ठं तु कर्तव्यं प्रोन्नतं गजपृष्ठवत् ॥ ११० ॥
तस्याधस्तलदेशस्तु निम्ने ह्यन्तरतो भवेत् ।
बहिर्भागे समं कार्यं पार्ष्णेर्यावत् कनिष्ठिका ॥ १११ ॥
अङ्गुष्ठमूलदेशे तु तलं कार्यं समुन्नतम् ।
पादाग्रतलविस्तारं षडङ्गुलमुदाहृतम् ॥ ११२ ॥
पार्ष्णेश्च तलविस्तारः कथितश्चतुरङ्गुलः ।
पादपृष्ठस्य चोत्सेधो भागस्त्वर्धाङ्गुलाधिकः ॥ ११३ ॥
अग्रपादस्य चोत्सेधस्त्र्यङ्गुलः समुदाहृतः ।
अङ्गुष्ठमूलदेशे तु द्व्यङ्गुलः स्यात् समुच्छ्रयः ॥ ११४ ॥
अङ्गुष्ठस्य समुत्सेधा मात्रा स्याद् द्वियवाधिका ।
अङ्गुष्ठदैर्घ्यमुद्दिष्टमङ्गुलत्रयमीरितम् ॥ ११५ ॥
अङ्गुष्ठस्य परीणाहो भवेत् पञ्चभिरङ्गुलैः ।
द्विपर्वाङ्गुष्ठमुद्दिष्टं प्रान्तपर्वार्धतो नखः ॥ ११६ ॥
तर्जनीदीर्घमुद्दिष्टं त्र्यङ्गुलं द्वियवाधिकम् ।
त्र्यङ्गुलस्तु परीणाहस्तस्याः पर्वत्रयं भवेत् ॥ ११७ ॥
मध्यमादीर्घमुद्दिष्टं यवद्वाविंशतिर्बुधैः ।
परीणाहस्तु तस्यास्तु यवानामेकविंशतिः ॥ ११८ ॥
आयामोऽनामिकायास्तु यवविंशतिरिष्यते ।
अनामिकापरीणाहः कार्योऽष्टादशभिर्यवैः ॥ ११९ ॥
कनिष्ठादैर्घ्यमाख्यातं सप्तभिर्दशभिर्यवैः ।
कनिष्ठायाः परीणाहो यवाः पञ्चदश स्मृताः ॥ १२० ॥

पर्वत्रयं तु सर्वासामङ्गुलीनां प्रकीर्तितम् ।
अर्धाङ्गुलं समुत्सेधः सर्वासामग्रतो भवेत् ॥ १२१ ॥
सर्वासां पादशाखानामग्रपर्वार्धतो नखाः ।
आताम्रास्ते तु कर्तव्याश्चित्रकर्मविशारदैः ॥ १२२ ॥
करास्तु स्कन्धसन्धेस्तु पश्चाद्भागे कृकाटिका ।
देशतस्तु ततः कक्षमूलमेकादशाङ्गुलम् ॥ १२३ ॥
स्कन्धाभ्यां निर्गतावंसौ फलकौ षट्षडङ्गुलौ ।
तयोर्मध्ये भवेद् वंशः कलामात्रप्रमाणतः ॥ १२४ ॥
उत्तानकदलीपुष्पसन्निभः पृथुवंशकः ।
तदेव पृष्ठभागस्य स्वरूपं परिकीर्तितम् ॥ १२५ ॥
कक्षात्तत् कोर्परं यावद् बाहुपर्वेति कथ्यते ।
अष्टादशाङ्गुलं दैर्घ्यं नाहेऽप्यष्टादशाङ्गुलम् ॥ १२६ ॥
कोर्परात् तलपर्यन्तं पर्व सप्तदशाङ्गुलम् ।
परीणाहः प्रबाहोस्तु षोडशाङ्गुलसम्मितः ॥ १२७ ॥
प्रकोष्ठस्य परीणाहश्चतुर्दशभिरङ्गुलैः ।
मणिबन्धपरीणाहः कर्तव्यो द्वादशाङ्गुलः ॥ १२८ ॥
विस्तारस्त्रिकलो बाह्वोः कोर्परेऽङ्गुलपञ्चकम् ।
परिणाहत्रिभागैकं प्रबाहोर्विस्तृतिर्मता ॥ १२९ ॥
प्रकोष्ठे मणिबन्धे च परीणाहत्रिभागतः ।
सप्ताङ्गुलानि पार्ष्णेः स्युर्मध्यमाङ्गुलिमूलतः ॥ १३० ॥
षडङ्गुलं तु तर्जन्या नाहो ह्यर्धांशपञ्चकम् ।
कनिष्ठामूलरेखाया भवेदङ्गुलिपञ्चकम् ॥ १३१ ॥

इत्यायामैस्तलः प्रोक्तः पञ्चमात्रा तु विस्तृतिः ।
अङ्गुष्ठमूलरेखायास्तर्जन्याश्च तथैव च ॥ १३२ ॥
मध्यभागप्रमाणं स्यादङ्गुलत्रयसम्मितम् ।
कनिष्ठामूलरेखाया अधस्तादङ्गुलान्तरे ॥ १३३ ॥
अनामेः कलया मूलान्मध्यायाः सार्धमात्रया ।
आयुर्लेखा भवेत् सा तु किञ्चिद् वक्रा प्रदृश्यते ॥
मध्यमातर्जनीमध्यं प्रविष्टा सा प्रकल्प्यते ।
अङ्गुष्ठमूलतर्जन्योस्त्र्यङ्गुलान्तरमध्यगा ॥ १३५ ॥
शक्तिरेखा प्रकल्प्या स्यात् सापि वक्रा भवेन्मनाक् ।
मध्यमाया अधोभागे गोलकद्वितयान्तरे ॥ १३६ ॥
अनामिकाकनिष्ठाया सा स्यात् त्र्यङ्गुलदूरगा ।
तलमध्ये भवेदन्या रेखा कार्मुकसन्निभा ॥ १३७ ॥
पुंरेखा लेखनीया तु सङ्गता शक्तिरेखया ।
कनिष्ठानामि(क?)मध्यानां सन्धिः सङ्कोचकारकः ॥
आलेख्या तु भवेत्तत्र पुरा प्रोक्ता च या मया ।
तर्जनीसन्धिदेशे तु शक्तिरेखासमुद्भवः ॥ १३९ ॥
अङ्गुष्ठतलसन्धौ तु पुंरेखा संव्यवस्थिता ।
अङ्गुलत्रितयं सार्धमायामेन कनिष्ठिका ॥ १४० ॥
अनामिर्द्विकलायामा यवद्वयसमन्विता ।
पञ्चाङ्गुलायता मध्या तर्जनी चतुरङ्गुला ॥ १४१ ॥
अङ्गुष्ठस्य तदा दैर्घ्यं चतुरङ्गुलमीरितम् ।
अङ्गुष्ठस्य परीणाहः (स्फुटं प्रोक्तप्रमाणतः) ॥ १४२ ॥

अङ्गुष्ठप्रथमं पर्व द्व्यङ्गुलं द्वियवाधिकम् ।
अग्रपर्व तथा प्रोक्तं द्व्यङ्गुलं द्वियवोनितम् ॥ १४३ ॥

अङ्गुष्ठस्य बहिः पर्व तृतीयं द्व्यङ्गुलं भवेत् ।
पृष्ठोर्ध्वपर्वणश्चार्धे भवेन्नखसमुद्भवः ॥ १४४ ॥

तर्जन्याः प्रथमं पर्व सार्धाङ्गुलमितं भवेत् ।
अङ्गुलं मध्यमं पर्व कीर्तितं द्वियवाधिकम् ॥ १४५ ॥

अग्रिमं च तथैवोक्तं तदर्धे नखसम्भवः ।
मध्यमाप्रथमं पर्व सार्धमङ्गुलमिष्यते ॥ १४६ ॥

द्वितीयं च तथैव स्यात् तृतीयं द्व्यङ्गुलं पुनः ।
अनामेरेवमेव स्यादग्रिमं द्विग्यवं स्मृतम् ॥ १४७ ॥

कनिष्ठा प्रथमं पर्व यवा दश तथाग्रिमम् ।
अङ्गुलं मध्यपर्व स्यात् कार्यः स्यात् पूर्ववन्नखः ॥ १४८ ॥

निर्लोम प्रोज्ज्वलं कार्यं पाण्यङ्गुलितलं बुधैः ।
अङ्गुल्यग्रे यवादर्वाक् सजीवः क्रियते नखः ॥ १४९ ॥

तत्राग्रे जीवहीनं तु नखाग्रं परिकल्प्यते ।
सजीवो लोहितः किञ्चिन्निर्जीवो मधुकच्छविः ॥ १५० ॥

यवत्रितयमानेन नखाग्रं परिकल्पयेत् ।
अत्रानुक्तं तु यत् सर्वमुत्तमं दशतालवत् ॥ १५१ ॥

इति शिल्परत्ने उत्तरभागे उत्तमनवतालक्षणं
नामाष्टमोऽध्यायः ॥

## अथ नवमोऽध्यायः ।

## अथ मध्यमं नवतालम् ।

शीर्षाग्राद्यलिकान्तिमं त्रिभिरतो भास्वन्मितैरङ्गुलै-
रुन्मेयं चिबुकान्तिमं त्रिभिरतः कण्ठो हृदन्तं ततः ।
नाभ्यन्तं च शिवान्तिमं च दिनकृत्सङ्ख्यैस्त्रिभिर्जानुनी
गुल्फाद्यङ्घ्रियुगं च सङ्कृतिमितैर्जङ्घाद्वयोरुद्वये ॥ १ ॥

सीमास्वासु सनालपद्ममकुटान्तासूरुजङ्घाद्वयी-
मध्याढ्यासु करोतु षोडश तिरश्चीनानि सूत्राण्यथ ।
मध्ये कर्णकरास्त्रसीमसु तथा सप्तोर्ध्वगान्यप्यतो
वक्त्रं द्वादशवर्गकोष्ठसुविधिघ्रं कल्पयेत् सूत्रकैः ॥ २ ॥

अष्टाङ्गुलाततमतोऽर्धततं ललाट-
मर्धेन्दुसुन्दरमतोऽब्धिपदायता स्यात् ।
नासा पदद्वयतताङ्गुलिनिम्नमूला
व्यासोच्छ्रिताग्ररुचिरा तिलपुष्पकल्पा ॥ ३ ॥

तन्मूलपार्श्वयुजि पञ्चमपङ्क्तिसंस्थे
कोष्ठद्वयान्तरगते पदविस्तृते च ।
मध्यत्रिभागकृततारकृतत्रिभाग-
कल्पाक्षिचेष्टिविरचोपलयताम्बुजे द्वे ॥ ४ ॥

फालेक्षणान्तरगते द्विकलायते च
चिल्ल्यौ कलाब्धयहिते द्वियवप्रमाणे ।
नेत्रैकवीथिविसरत्तुटुकान्तरन्ध्रौ
कर्णौ करार्णवपदप्रततातितौ च ॥ ५ ॥

द्व्येकाङ्गुलाततत्तदर्धतताधरोत्त-
रोष्ठान्ततोऽङ्गुलविनिस्सृतसृक्कयुग्मम् ।
कम्बीरकादिरुचिरं प्रकरोतु गोजिं
घोणाग्रसामिपिहिताष्टयवावतीर्णाम् ॥ ६ ॥

शब्दग्रहादिचिबुकावधि मानमिष्ट-
मष्टाङ्गुलैश्चिबुकमानमथाङ्गुलाभ्याम् ।
ग्रीवा गजाङ्गुलततार्ककलोपपन्नं
कक्षान्तरं स्तनयुगान्तरमेकतालम् ॥ ७ ॥

नाभिस्थली प्रविततता नृपतिप्रमाणैः
स्यादङ्गुलैः कटितटी धृतिसम्मितैश्च ।
कक्षस्तनान्तरमृतुप्रमिताङ्गुलाढ्यं
कक्षांसमध्यमपि मांसलमंसयुग्मम् ॥ ८ ॥

कक्षादिसन्ध्यवधिकायतिरङ्कसङ्ख्यैः
स्याद् गोलकैः शिवमितैर्मणिबन्धनिष्ठा ।
दिक्सङ्ख्यकैरुपभुजेऽथ ततिश्चतुर्भि-
र्मूले प्रकोर्परयुगे भुजयोस्त्रिभिश्च ॥ ९ ॥

अष्टाङ्गुलैः करतलाततिरश्विहीनै-
स्तद्विस्तृतिर्भवति मध्यमिकायतिश्च ।
मध्याद् दशांशरहिते निजपार्श्वजे तत्-
पङ्क्त्यंशमात्ररहिते प्रथमान्त्यशाखे ॥ १० ॥

अङ्गुष्ठके विततिरर्कयवैः परासु
त्र्यंशोनितैः प्रतिपरुं लघिमा यवेन ।

मध्योद्भवाप्रथमपर्वयुगं समान-
दैर्घ्यं तदर्धपरिमाणमथाग्र्यपर्व ॥ ११ ॥

देशिन्युपावरजयोरमुतो द्विपांश-
हीनानि पादरहितानि कनिष्ठिकायाः ।
पर्वाणि पर्वयुगलं क्रमशोऽथ तर्जा-
मध्याद्यपर्वसुसमं प्रथमोद्भवायाः ॥ १२ ॥

स्वस्वाग्र्यपर्वदलतो रचिता नखाः स्यु-
र्नाहोऽङ्गुलैः श्रुतिमितैः प्रथमप्रसूतेः ।
मध्याद्विपार्श्वजनितावरजास्वतोऽतो
नाहोऽष्टमांशराहितो विहितः क्रमेण ॥ १३ ॥

अङ्गुष्ठतर्जनिकयोर्नयनाङ्गुलाढ्य-
मभ्यन्तरं प्रथमजामणिबन्धमध्यम् ।
अभ्यङ्गुलैः परिमितं मणिबन्धकेऽपि
तैर्विस्तृतिः करभदैर्घ्यमथार्धतालम् ॥ १४ ॥

लिङ्गं युगाङ्गुलमितं वृषणद्वयं स्यात्
द्व्यङ्गुलं द्विरदकुम्भनिभे स्फिजौ द्वे ।
वृत्ते षडङ्गुलतते द्वयमध्यसंस्था
कौपीनराज्यपि कलावितता कृशाग्रा ॥ १५ ॥

मूलान्तराग्रविततिः क्रमशोऽङ्गुलैः स्या-
दूरुद्वये सुषिरभानुशरप्रमाणैः ।
जङ्घाद्वयेऽङ्गगिरिसत्रियवत्रिसंख्यैः
कार्या ककुप्परिमितैरधिजानुयुग्मम् ॥ १६ ॥

मूलादिवेदशरसाङ्घ्रिरसाङ्गसंख्यै-
व्यासोऽङ्गुलैः पदतलेऽर्कमितैश्च दैर्घ्यम् ।
अङ्गुष्ठसीम्नि कलयोन्नतिरर्धतोऽन्य-
पार्श्वेऽङ्गुलैः प्रपददैर्घ्यमृतुप्रमाणैः ॥ १७ ॥

अङ्गुष्ठतत्सहभुवोर्जगदङ्गुलाढ्यं
दैर्घ्यं नखान्नखमितिह्रसितास्ततोऽन्याः ।
पर्वत्रयाहितरुचोऽङ्गुलयो द्विपर्वा-
ङ्गुष्ठोऽर्धपर्वशशिखण्डनिभा नखाः स्युः ॥ १८ ॥

अङ्गुष्ठके रसमितैः परिधिः परस्यां
स्यादङ्गुलैस्त्रिभिरथाष्टमभागहीनैः ।
कार्यः क्रमात् तदित(रेष्व ? रास्व)खिलेषु तत्त-
द्व्यासेन लोकगुणितेन करोतु नाहम् ॥ १९ ॥

तालैस्त्रिभिः शिरसि साष्टियवैषुसंख्यैः
कक्षान्तरे रहितविश्वयवैश्चतुर्भिः ।
कुक्षौ त्रिभिर्भवति नाभितलेऽर्धयुक्तै-
र्नाहस्तथा कटितटेऽर्धयुताब्धिसंख्यैः ॥ २० ॥

जङ्घोरुबाहुयुगमध्यकराङ्गुलीषु
कार्या करीन्द्रकरवत् परिवृत्तता च ।
कूर्माभता प्रपदयोर्जलजाभता च
कण्ठे कपोलतलयोर्मुकुराभता च ॥ २१ ॥

यद्यदत्र तु न कथ्यते मया तत्तदङ्गमखिलं तु युक्तितः ।
उत्तमाख्यनवतालल्क्षणप्रोक्तमार्गमनुसृत्य कारयेत् ॥२२॥

इति शिल्परत्ने उत्तरभागे मध्यमनवतालल्क्षणं नाम
नवमोऽध्यायः ॥

## अथ दशमोऽध्यायः ।

### अथाधमं नवतालम् ।

उष्णीषोच्चं शिवांशं स्यात् केशं सार्धद्विभागया ।
केशान्ताच्चेत्रसूत्रान्तं पादोनचतुरंशकम् ॥ १ ॥
तथैव तन्नासान्तं तथा तद्धनुसीमकम् ।
सार्धलोकाङ्गुलं ग्रीवातुङ्गमानं ततः पुनः ॥ २ ॥
हृदयान्तं ततो नाभिसीमान्तं च ततः पुनः ।
मेढ्रान्तं च पृथक् पादयुक्तरुद्रांशमानकम् ॥ ३ ॥
ऊरुदीर्घं तथार्धोनत्रयोविंशांशकं स्मृतम् ।
गलतुङ्गसमं जानु जङ्घामूरुवदाचरेत् ॥ ४ ॥
गुल्फमानं तु सार्धाग्निभागमेव विधीयते ।
बाह्वोश्चोरुसमं दीर्घं प्रकोष्ठं षोडशाङ्गुलम् ॥ ५ ॥
तलदीर्घं तु भूतांशं तत्समं मध्यमाङ्गुलम् ।
शेषं युक्त्या सुकर्तव्यमुत्तमाद्युक्तवर्त्मना ॥ ६ ॥

इति शिल्परत्ने उत्तरभागे अधमनवतालविधिर्नाम
दशमोऽध्यायः ॥

---

## अथैकादशोऽध्यायः ।

### अथाष्टतालोत्तमम् ।

उष्णीषोच्चं शिवांशं स्यात् केशं सार्धद्विभागतः ।
पादोनरुद्रभागं स्यात् केशान्ताद्धनुसीमकम् ॥ १ ॥
केशान्तादक्षिसूत्रान्तं तत्त्रिभागैकमानतः ।
तथैव च पुटान्तं तु शेषं तद्धनुसीमकम् ॥ २ ॥

सार्धाग्न्यंशं गलोत्सेधं हिक्कादिहृदयान्तकम् ।
पादोनरुद्रभागं स्यात् तस्मान्नाभ्यन्तकं ततः ॥ ३ ॥

तथा तस्मान्मेढ्रमूलमूरुदीर्घं पुनस्ततः ।
सार्धत्रिसप्तभागं तु जानुतुङ्गं गलोक्तवत् ॥ ४ ॥

जङ्घादीर्घं चोरुतुल्यं जानुतुल्यं तलोदयम् ।
बाह्वोश्चोरुसमं दीर्घं प्रकोष्ठं तु कलांशकम् ॥ ५ ॥

बाह्वोस्तलं भूतभागं तत्समं मध्यमायतम् ।
अनुक्तं सकलं पूर्वं नवतालोक्तमाचरेत् ॥ ६ ॥

इति शिल्परत्ने उत्तरभागे अष्टतालविधानं नाम
एकादशोऽध्यायः ॥

---

## अथ द्वादशोऽध्यायः ।

### अथोत्तमं सप्ततालम् ।

उष्णीषं त्वर्धभागेन केशान्तं शशिभागतः ।
सार्धद्व्यंशं तु नेत्रान्तं सार्धाग्न्यंशं पुटान्तकम् ॥ १ ॥

चिबुकान्तं च तत्तुल्यं वेदांशं तु गलोदयम् ।
स्तनान्तं सप्तभागं तु रुद्रांशं नाभिसीमकम् ॥ २ ॥

तथैव योनिमूलान्तं विंशांशं चोरुदीर्घकम् ।
जानुमानं द्विभागं तु जङ्घा चोरुसमा भवेत् ॥ ३ ॥

चरणोच्चं द्विभागेन मन्वंशं तु तलायतम् ।
ऊरुदीर्घसमं बाहुं प्रकोष्ठं तु कलाङ्गुलम् ॥ ४ ॥

तलायामं तु भूतांशं वेदांशं तस्य विस्तृतम्।
तत्तलायामसदृशं मध्यमाङ्गुलिदीर्घकम्॥ ५॥
शेषं प्रागुक्तमार्गेण कार्यमङ्गमशेषतः॥ ५½॥

इति शिल्परत्ने उत्तरभागे सप्ततालल्क्षणं नाम
द्वादशोऽध्यायः॥

## अथ त्रयोदशोऽध्यायः।

### अथ षट्तालम्।

उष्णीषमर्धभागं स्यादेकांशं केशमानकम्।
सार्धवस्वङ्गुलं प्राग्वद् केशान्ताद्धनुसीमकम्॥ १॥
गलोदयं त्रिभागार्धं मुखतुल्यमतः पृथक्।
हिक्कादिहृदयान्तं च नाभ्यन्तं च ततः क्रमात्॥ २॥
तस्मान्मेढ्रस्य मूलान्तमूरू चात्यष्टिभागतः।
सार्धभागं जानुदीर्घं जङ्घा चोरुसमोन्नता॥ ३॥
आगुल्फतलतुङ्गं तु सार्धभागमुदाहृतम्।
ऊरुदीर्घसमं बाहुं कुर्याद् विश्वाङ्गुलं पुनः॥ ४॥
प्रकोष्ठं भूतभागं तत्तलं मध्याङ्गुलं तथा।
भास्कराङ्गुलमानेन कुर्यात् पादतलायतम्॥ ५॥
पूर्वस्मादूहयेत् सर्वमत्रानुक्तं विशारदः॥ ५½॥

इति शिल्परत्ने उत्तरभागे षट्तालल्क्षणं नाम
त्रयोदशोऽध्यायः॥

---

१. 'ल' ग. पाठः. २. 'तुङ्गं ज' ख. पाठः.

## अथ चतुर्दशोऽध्यायः ।

### अथ पञ्चतालोत्तमेन विघ्नेश्वरलक्षणम् ।

मूर्ध्नो मस्तकसीमान्तमङ्गुलद्वयमुच्यते ।
तस्माद् वै नेत्रसूत्रान्तं चतुर्मात्रमुदाहृतम् ॥ १ ॥
ततोऽष्टमात्रमानं तु हनुसीमान्तमाततम् ।
गलं तु चतुरंशं स्यादाशांशं हृदयं ततः ॥ २ ॥
ततो नाभिस्ततो मेढ्रं नवांशामिति कथ्यते ।
ऊरू सार्धषडंशोच्चौ जानुनी गुणभागतः ॥ ३ ॥
जङ्घा चोरुसमायामा तलोत्सेधं गुणांशकम् ।
सप्ताङ्गुलं तलाययाममङ्गुष्ठाग्रावसानकम् ॥ ४ ॥
पादाङ्गुष्ठायतं द्व्यंशं सार्धांशं तु कनिष्ठिका ।
तर्जन्यादिकनिष्ठान्तं प्रत्येकं यवहीनतः ॥ ५ ॥
त्रयोदशाङ्गुलं बाहुं कोष्ठायामं नवाङ्गुलम् ।
चतुर्मात्रं तलायाममग्न्यंशं मध्यमायतम् ॥ ६ ॥
तर्जन्यनामिके द्वे च एकविंशद्यवायते ।
सप्तोत्तरदशयवं दीर्घं ज्येष्ठकनिष्ठयोः ॥ ७ ॥
द्वादशाष्टनवाष्टांशयवा ज्येष्ठादिविस्तृतिः ।
तत्तद्व्यासत्रिपादं स्यान्नखव्यासमुदाहृतम् ॥ ८ ॥
तत्तद्व्यासस्य पादोनं नखायामं प्रकीर्तितम् ।
व्यासं प्रकोष्ठे वेदांशं कोर्परोर्ध्वे षडंशकम् ॥ ९ ॥
बाहुमूले तु वस्वंशं मस्तकेऽष्टाङ्गुलं ततः ।
सप्ताङ्गुलं निम्नदेशे मुखमध्ये दशाङ्गुलम् ॥ १० ॥

मुखहस्तस्य मानं तु नाभिदेशसमायतम् ।
मूले षडङ्गुलं तारमग्रे साधांशमत्र हि ॥ ११ ॥
सुषिरद्वयसंयुक्तं कार्यं तद्धस्तमीरितम् ।
कण्ठादूर्ध्वं गजेन्द्राभं मुखं कुर्याद् विचक्षणः ॥ १२ ॥
वामदन्तायतं वेदमात्रं दृश्यं हि बाह्यतः ।
दक्षदन्तं पादमात्रं भिन्नाकारं प्रकल्पयेत् ॥ १३ ॥
अधरस्य तु निष्कान्तं लम्बनं च द्विमात्रकम् ।
(तैला ? ताल्वा)यामविशालं च षड्यवं परिकीर्तितम्
[॥ १४ ॥
कर्णव्यासं भूतमात्रमुत्सेधं चैव तत्समम् ।
अर्धाङ्गुलं नतं तस्य कर्णमूलं द्विभागतः ॥ १५ ॥
बाहुपर्यन्तविस्तारो द्वात्रिंशदङ्गुलं भवेत् ।
एकोनविंशदंशं तु कक्षान्तरमुदाहृतम् ॥ १६ ॥
स्तनान्तरं दशांशं तु हिक्कायास्तद्वदेव हि ।
स्तनान्ताद् द्वियवं व्यासं द्व्यङ्गुलं स्तनमण्डलम् ॥ १७ ॥
स्तनाधस्ताद् विशालं तु भागैः पञ्चदशान्वितैः ।
द्वाविंशदङ्गुलं ख्यातं जठरार्धं विशालकम् ॥ १८ ॥
नाभेर्निम्नविशालं तु साधाङ्गुलमुदाहृतम् ।
लिङ्गायामं गुणांशं तु तदर्धं तस्य विस्तृतम ॥ १९ ॥
मुष्कायामं विशालं च गुणाङ्गुलमुदाहृतम् ।
ऊरोर्व्यासं तु भान्वंशं जानुव्यासं त्र्यङ्गुलम ॥ २० ॥
जङ्घामूलविशालं तु सप्तमात्रमुदाहृतम् ।
नलकाविस्तृतं चापि साधमङ्गुलमुच्यते ॥ २१ ॥

तलाग्रस्य ततिः सार्धषडङ्गुलमिति स्मृतम् ।
पार्ष्ण्यायामं विशालं च गुणाङ्गुलमुदाहृतम् ॥ २२ ॥

द्वादशाष्टषडंशार्धषट्पञ्चकयवैः क्रमात् ।
अङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्तपादाङ्गुलिविशालकम् ॥ २३ ॥

तत्त्रिपादं नखव्यासं व्यासार्धं तत्तदायतम् ।
यद्यन्नोक्तं ततस्तांस्तान् कारयेत् पूर्वमुक्तवत् ॥ २४ ॥

अथान्यथा —

अश्व्यङ्गुलं तु केशोच्चं सप्तांशं मुखमानकम् ।
ग्रीवोच्चं तु युगांशं स्यात् तस्माच्चूचुकमंशतः ॥ २५ ॥
तस्मान्नाभिस्ततो मेढ्रं सप्तभागेन कल्पयेत् ।
भान्वंशमूरुदीर्घं च जानुदीर्घं द्विभागतः ॥ २६ ॥
जङ्घादीर्घं द्वादशांशं ह्यंशं पादतलोन्नतम् ।
दशांशं तु तलायामं मन्वशं बाहुमानकम् ॥ २७ ॥
प्रकोष्ठायतमाशांशं तलायामं युगांशकम् ।
तत्समं मध्यमायाममन्यत् सर्वं पुरोक्तवत् ॥ २८ ॥

अथ मध्यमपञ्चतालेन विघ्नेशः ।

विघ्नेशं शरतालकैर्विरचयेत् त्र्यक्षं महेभाननं
गूढाभुग्नगलं स्थितं समुपविष्टं बातिपीनाङ्गकम् ।
उष्णीषान्मुखमेककेन सदलाभ्यां तालकाभ्यां ततः
कट्यन्तं चरणौ कराश्च करणीयाः सार्धतस्तालतः ॥ २९ ॥

इति शिल्परत्ने उत्तरभागे पञ्चतालल[क्षणं] नाम
चतुर्दशोऽध्यायः ॥

---

१. [ल]क्ष ग. पाठः. २. [क]र्ण क. ख. ग. पाठः.

## अथ पञ्चदशोऽध्यायः ।

### अथ चतुस्तालम् ।

एकाङ्गुलं शिरोन्मानं केशान्तं चैव तत्समम् ।
द्विभागं नेत्रसूत्रान्तं पुटान्तं चैव तत्समम् ॥ १ ॥
गुणांशं हनुसीमान्तं ग्रीवोच्चं तु गुणाङ्गुलम् ।
हिक्कासूत्रात् स्तनान्तं तु नवभागमुदाहृतम् ॥ २ ॥
स्तनौ(स्तु ? त्तु) मेढ्रमूलान्तं सप्तमात्रमिति स्मृतम् ।
भान्वंशमूरुदीर्घं स्याज्जानु द्व्यङ्गुलमेव हि ॥ ३ ॥
जङ्घादीर्घं दशांशं तु द्व्यंशं पादतलोन्नतम् ।
दशांशोऽङ्घ्रितलायामो बाहुर्मन्वंशकं स्मृतम् ॥ ४ ॥
प्रकोष्ठं तु दशांशं स्यात् तलं वेदाङ्गुलायतम् ।
युगांशं मध्यमायाम सार्धाग्न्यंशमनामिका ॥ ५ ॥
तत्समं तर्जनीदीर्घं कनिष्ठायां गुणाङ्गुलम् ।
अङ्गुष्ठाया(म)ममग्न्यंशं + + + तलविस्तृतम् ॥ ६ ॥
प्रकोष्ठाग्रं गुणांशं तु तन्मूलं चतुरङ्गुलम् ।
भूतांशं बाहुमूलस्य विस्तारं समुदाहृतम् ॥ ७ ॥
सार्धाष्टांशं मुखव्यासं सप्तांशं कण्ठविस्तृतम् ।
कक्षयोरन्तरव्यासं त्रयोदशाङ्गुलं भवेत ॥ ८ ॥
भान्वंशं हृदि विस्तारं रुद्रांशं मध्यविस्तृतम् ।
श्रोणिस्थाने तु भान्वंशं कटौ विश्वाङ्गुलं स्मृतम् ॥ ९ ॥
ऊरुमूलविशालं तु वस्वङ्गुलमुदाहृतम् ।
षडंशं जानुविस्तारं जङ्घामूलं युगाङ्गुलम् ॥ १० ॥

---

१. 'नादेस्तु', २. 'पञ्चमा' ख. पाठः.

गुणांशं नलकातारं षडंशं तलविस्तृतम् ।
पार्ष्णिव्यासं युगांशं स्याच्छेषं युक्त्या प्रकल्पयेत् ॥ ११॥

अथ मध्यमं चतुस्तालम् ।

उष्णीषं चैकभागेन केशान्तं च तथा भवेत् ।
वस्वंशं तु मुखायामं गलमश्व्यंशमेव[1] च ॥ १२ ॥
हिक्कादिहृदयान्तं तु षडङ्गुलमुदाहृतम् ।
हृदयान्मेढ्रपर्यन्तं षडङ्गुलमुदाहृतम्[2] ॥ १३ ॥
दशांशमूरुदीर्घं स्याद् द्व्यङ्गुलं जानुतुङ्गता ।
जङ्घादीर्घं तूरुतुल्यं द्विभागं चरणोदयम् ॥ १४ ॥
मन्वंशं तु करायामं मध्यमाङ्गुलिसीमकम् ।
शेषं युक्त्या तु कर्तव्यमुक्तमार्गानुसारतः ॥ १५ ॥
त्रिद्व्येकतालमेयानां प्रतिमानां विचक्षणः ।
अङ्गोपाङ्गादिमानानि प्रोन्नयेत् पूर्वशास्त्रतः ॥ १६ ॥

इति शिल्परत्ने उत्तरभागे चतुस्तालविधिर्नाम
पञ्चदशोऽध्यायः ॥

अथ षोडशोऽध्यायः ।

अथ किरीटादिलक्षणम् ।

अत्रैकाङ्गुलसम्मितेन परिवेष्ट्योष्णीषपट्टेन के
कोटीरं मकुटोज्ज्वलं विरचयेदष्टाङ्गुलैः सर्वतः ।
द्व्यष्टाभिर्धृतिसम्मितैर्दिनकरद्वन्द्वप्रमैरङ्गुलै-
रुष्णीषोपरि भासमानमकुटोपेतं किरीटं हरौ ॥ १ ॥

१. 'ध्यं' ख. पाठः. २. 'रसाङ्गु' ख. ग. पाठः.

कुर्यात् किरीटं शिखरैरुपेतं त्रिपञ्चसप्तप्रमितैर्यथार्हम्।
अण्डोपमं वा कमलोपमं वा छत्रोपमं वा कमठोपमं वा॥ २॥

युग्मसङ्ख्या जटा कार्या उभयोः पार्श्वयोः पृथक्।
द्वात्रिंशन्मात्रमारभ्य अथैकाङ्गुलवृद्धितः॥ ३॥

एकषष्ट्यङ्गुलान्तं तु जटादीर्घमुदाहृतम्।
अधोजटा दीर्घतमास्तस्मादूर्ध्वोर्ध्वगास्तथा॥ ४॥

क्रमान्न्यूना तु कर्तव्या तदर्धेषु समान्तरा।
कनिष्ठाङ्गुलपरीणाहं जटानाहमुदाहृतम्॥ ५॥

जटामकुटतुङ्गं तु चतुर्विंशाङ्गुलं तु वा।
एकविंशाङ्गुलं वाथ कुर्यादष्टादशाङ्गुलम्॥ ६॥

सप्तादशाङ्गुलं वाथ षोडशाङ्गुलमेव वा।
केशान्तान्मकुटान्तं तु ललाटे पट्टसंयुतम्॥ ७॥

मुखान्तव्याससदृशं मकुटस्य विशालकम्।
तुङ्गार्धं वा त्रिपादं वा यथाशोभं प्रकल्पयेत्॥ ८॥

तत्सप्ताष्टनवांशैकहीनमग्रविशालकम्।
चतुष्पूरिमसंयुक्तं भान्वंशं पूरिमोदयम्॥ ९॥

शम्भौ जटायां कर्तव्या मूर्ध्नि गङ्गा प्रमाणतः।
भान्वङ्गुलायता वाथ षोडशांशसमुच्छ्रया॥ १०॥

हृदयेऽञ्जलिसंयुक्ता प्रोक्तस्त्रीलक्षणान्विता।
किरीटमकुटं चैव केशं वा तत्र कल्पयेत्॥ ११॥

मूलादग्रं क्रमात् क्षीणं करण्डमकुटस्य तु।
अग्रस्य मुकुलाकारं मकुटस्य प्रकल्पयेत्॥ १२॥

त्रिपञ्चसप्तसङ्ख्यैस्तु करण्डैश्च विराजितम् ।
करण्डमकुटं कार्यमन्यत् सर्वं यथापुरम् ॥ १३ ॥

त्रिचतुष्पञ्चमात्र स्यात् पत्रकुण्डलविस्तृतम् ।
यवं वृत्तघनं प्रोक्तं श्वेताभं वात्र चार्तवम् ॥ १४ ॥

मकरं कुण्डलं वाथ सिंहकुण्डलमेव वा ।
गजादिकुण्डलं वाथ द्विचतुष्पञ्चमात्रकम् ॥ १५ ॥

कुर्याद् व्यासं च तुङ्गं च तत्तदाकारभेदतः ।
वृत्तकुण्डलविस्तारमष्टादशयवं भवेत् ॥ १६ ॥

वेदाङ्गुलं तु तत्तुङ्गं रम्भाब्जमुकुलोपमम् ।
हिक्कासूत्रोपरिष्टात्तु उपग्रीवं तु बन्धयेत् ॥ १७ ॥

रुद्राक्षं वाथ रत्नं वा हेमकल्पसमणिं तु वा ।
नानाचित्रविचित्रं तु ग्रैवेयं वा यथोचितम् ॥ १८ ॥

कटकं वलयोपेतं प्रकोष्ठे तु प्रकल्पयेत् ।
कनिष्ठाङ्गुलिपरीणाहं वलयं वर्तुलं तु वा ॥ १९ ॥

अथवा वलयस्यैव घनं द्वित्रियवं तु वा ।
घनद्विगुणविस्तारं नानारत्नविचित्रितम् ॥ २० ॥

युगलं युगलं तत्तु प्रकोष्ठेषु प्रकल्पयेत् ।
केयूरं कोर्परादूर्ध्वे वलयोक्तघनान्वितम् ॥ २१ ॥

एकाकारं तु केयूरं साष्टपादाब्जसंयुतम् ।
नानारत्नसमायुक्तं शैवलाभमथापि वा ॥ २२ ॥

पत्रपूरितसंयुक्तं बाहुमध्ये प्रकल्पयेत् ।
पत्रपूरितनालं तु केयूरसदृशं घनम् ॥ २३ ॥

तत्पूरितादधोनालं बाहुमित्यावृतं तु वा ।
त्रिचतुष्पञ्चमात्रं वा पत्रपूरितविस्तृतम् ॥ २४ ॥
तद्व्यासार्धं तु तत्तुङ्गं पादोनद्विगुणं तु वा ।
द्विगुणं वापि कर्तव्यं तद् बाहुवलयं भवेत् ॥ २५ ॥
मध्याङ्गुलं विना शेषा अङ्गुला मुद्रिकान्विताः ।
मुद्रिकामूलपर्वस्था वृत्ता यवघनान्विताः ॥ २६ ॥
रत्नचित्रविचित्रा वा तत्तद्योग्यं समाचरेत् ।
मध्याङ्गुलाग्रमभये चूचुकोर्ध्वसमं भवेत् ॥ २७ ॥
तर्जन्यादिकनिष्ठान्तास्तुल्यमूलास्तु वक्रिताः ।
ईषद् वक्रितमङ्गुष्ठमूर्ध्वाग्रं तु बहिर्मुखम् ॥ २८ ॥
तथैव वरदं कृत्वा मणिबन्धकटौ पुनः ।
मध्याङ्गुलाग्रमालम्ब्य मेढ्राग्रान्तं बहिर्मुखम् ॥ २९ ॥
तदेव सिंहकर्णाख्यं तलमध्यगतं यदि ।
मध्याङ्गुलाग्रं वक्राभं तदुपान्तगतं तथा ॥ ३० ॥
अनामिकाग्रं[1] शेषाः स्युः पूर्ववत् परिकल्पिताः[2] ।
अभयाकारमालम्ब्य हस्तमूरौ समर्पितम् ॥ ३१ ॥
यदि तत् कटकं प्रोक्तं मणिबन्धं तूरुबाह्यतः ।
एकद्वित्र्यङ्गुलाद् बाह्ये कर्तव्यं बुद्धिमत्तमैः ॥ ३२ ॥
हिङ्कासूत्रसमं मध्यमाग्रमूर्ध्वाननं करम् ।
बहिर्मुखं कर्तरी सा शङ्खचक्रादिसंयुता ॥ ३३ ॥
वक्रौ त्वनामिकाङ्गुष्ठौ तलमध्यगतौ पुनः ।
किञ्चिद् वक्रा कनिष्ठा सा ह्यावन्यावप्यृजुक्रियौ ॥ ३४ ॥

१. 'ग्राः', २. 'ल्पयेत्' क. ग. पाठः.

तथा सूचीति विख्याता कर्णसूत्रसमोन्नता ।
तर्जन्याग्रं तदा तत्र योजयेदङ्कुशादिकम् ॥ ३५ ॥
अङ्गुष्ठानामिकामध्यमाङ्गुल्यस्तलमध्यगाः ।
किञ्चिद् वक्रा कनिष्ठा सा तर्जन्यृजुतरा भवेत् ॥ ३६ ॥
यज्ञोपवीतं सर्वेषां यवाष्टांशघनान्वितम् ।
उपवीतं त्रिसूत्राढ्यमुरस्सूत्रसमन्वितम् ॥ ३७ ॥
एकमेव ह्युरस्सूत्रमुपवीतघनान्वितम् ।
वामस्कन्धोपरिष्टात्तु नाभ्य(धो) र्द्वयङ्गुलान्ततः ॥ ३८ ॥
यज्ञोपवीतदीर्घं तु नाभेर्दक्षिणपार्श्वगम् ।
अपरे वंशमाश्रित्य यज्ञसूत्रं निधापयेत् ॥ ३९ ॥
ऊरु? उरस्सूत्रं समालम्ब्य स्तनादष्टाङ्गुलान्तरे ।
यज्ञोपवीतवत् कार्यं स्कन्धयोरुभयोरपि ॥ ४० ॥
पार्श्वयोश्चैव योन्यूर्ध्वे चन्नवीरमिदं विदुः ।
हिक्कात् षडङ्गुलाधस्तात् स्तनयोर्मध्यदेशतः ॥ ४१ ॥
ग्रैवेयहारमाख्यातं वेदमात्रवितानकम् ।
यवत्रयं घनं तस्य नानामणिहिरण्मयम् ॥ ४२ ॥
कण्ठादुदरबन्धान्तमक्षमालां प्रकल्पयते ।
हन्मालेति प्रसिद्धा सा स्कन्धमालां च कारयेत् ॥ ४३ ॥
नानापुष्पमयी स्कन्धदेशे सा सम्प्रकीर्तिता ।
कटिसूत्र त्रिभिः सूत्रैः सूत्रं प्रति यवं घनम् ॥ ४४ ॥
कटिसन्ध्योपरिष्टात्तु रत्नचित्रितमाचरेत् ।
मेढ्रादधः कृत्तिमाख्यं पञ्चषट्सप्तमात्रकम् ॥ ४५ ॥

तारं तारसमं तुङ्गं घनमर्धाङ्गुलं स्मृतम् ।
ततोरुमानन्त्र्यंशान्तं मुक्तादामादि लम्बयेत् ॥ ४६ ॥
पादौ जालकसंयुक्तौ गुल्फाधस्तात्तथैव च ।
जालकाबद्धसूत्रं तु यवद्वयघनान्वितम् ॥ ४७ ॥
तत्सूत्राज्जालकालम्बं त्रिपञ्चयवमानकम् ।
त्रियवं जालनालं तु व्यासतुल्यं तदुन्नतम् ॥ ४८ ॥
यवमानं घनं शेषं गाढमत्र प्रकल्पयेत् ।
गाढयुक्तं तु वृत्ताभमन्तःपाषाणसंयुतम् ॥ ४९ ॥
गाढहीनं घनं वान्तर्दूषदत्र न कारयेत् ।
भुजङ्गवलयं यत्र प्रकोष्ठादिषु रोचते ॥ ५० ॥
तत्प्रदेशपरीणाहात् सपादं स्यात्तदायतम् ।
तद्दीर्घादुपरि ख्यातं फणं भान्वङ्गुलायतम् ॥ ५१ ॥
सप्ताङ्गुलं तु विस्तारं घनं चैकाङ्गुलं फणे ।
अतितीक्ष्णतरे जिह्वे मुखे कुर्यात्तु लोचने ॥ ५२ ॥
वस्त्रं कौशेयकार्पासचीरचर्मादिकं पुनः ।
तत्तद्योग्यं प्रकर्तव्यं युक्त्या सर्वत्र बुद्धिमान् ॥ ५३ ॥
यद्द्रव्येण कृतं बिम्बं तेनैवायुधमाचरेत् ।
शताङ्गुलायतं चापं नवसप्ताशुगानलैः ॥ ५४ ॥
मात्रैर्युतं विहीनं वा नवधा धनुषोदयम् ।
पूर्णमुष्टिस्तु नाहः स्यान्मध्यादग्रौ क्रमात् कृशौ ॥ ५५ ॥
अग्रावर्धाङ्गुलौ व्यासौ वृत्तौ कार्यौ गुणाङ्गुलौ ।
चितौ[1] आयात्रिभागैके बाणनाभिस्तु मूलतः(?) ॥

---

१. 'चीतौ आयामस्य त्रि' क. ख. पाठः.

चापायामाष्टभागोनं रज्जुदीर्घमुदाहृतम् ।
त्रिचक्रसहितं वाथ बालेन्द्वाकारमेव वा ॥ ५७ ॥
एकविंशाङ्गुलं बाणदीर्घं तद्द्विगुणं तु वा ।
कनिष्ठाङ्गुलिमानेन परिणाहं शरस्य तु ॥ ५८ ॥
आस्यायामं पञ्चमात्रं तत्तारं चैव तत्समम् ।
आस्यदीर्घसमं पुच्छं पत्रबन्धविचित्रितम् ॥ ५९ ॥
पैत्राणामङ्गुलं व्यासं पृष्ठे ज्यानाभिमाचरेत् ।
पुच्छतारत्रिभागैकं ना(भ्या ? भ्य)गाधं च विस्तृतम् ॥६०॥
टङ्कं भान्वङ्गुलायामं कुर्याद् युक्त्या बहिर्मुखम् ।
मृगं बहिर्मुखं वाथ कुर्यादन्तर्मुखं तथा ॥ ६१ ॥
द्वादशाङ्गुलमायामं तस्योच्चं युक्तितश्चरेत् ।
द्वादशाङ्गुलविस्तारं चक्रं शङ्खं तथैव च ॥ ६२ ॥
डमरोर्दीर्घविस्तारे वसुपञ्चाङ्गुलान्विते ।
मध्यं गुणाङ्गुलं व्यासमायामं चैव तत्समम् ॥ ६३ ॥
वलयद्वयसंयुक्तं चर्मसूत्रादिसंयुतम् ।
नवाङ्गुलं तु विस्तारं तारादर्धं त्रिपादकम् ॥ ६४ ॥
उच्चं कमण्डलोः कुर्याद् यथाकारं तथैव च ।
पद्मं तालसमुच्छ्रायं द्विगुणविस्तारं च षोढा कृते
मूले पट्टमिलांशतो द्वितयतो वाधस्तनाष्टच्छदम् ।
अङ्घ्र्यूनप्रथमब्जमध्यमुपरिष्टाद्दृष्टपत्रं त्रिभि-
र्भागैः पट्टयुतं करोतु कमलेनामात्र पीठोच्छ्रयः ॥६५॥
विंशत्या प्रतिमाङ्गुलैः प्रविततं वृन्ते तया सैकया
नालं सद्वितयापि वाथ त्रिततेरष्टाचलाङ्गांशकैः ।

---

१. 'पा' ग. पाठः.

अन्ते हीनवितानमारचयतु ब्रह्मोपलान्तायतं
तुर्याश्रं सकलेषु वैधसमिदं वृत्तं क्वचिच्चैश्वरम् ॥ ६६½ ॥

इति शिल्परत्ने उत्तरभागे किरीटकटकादिलक्षणं नाम
षोडशोऽध्यायः ॥

---

## अथ सप्तदशोऽध्यायः।

### अथ लेप्यबिम्बे शूललक्षणम्।

लेप्यबिम्बे प्रकर्तव्ये कारयेच्छूलमादितः।
तत्तदङ्गान्तरङ्गस्थमस्थिवच्छूलमेव तत् ॥ १ ॥
खदिराद्यैः सारवृक्षैर्युक्तितः शूलमाचरेत्।
शिलासंग्रहवद् दारुस्वीकारं कारयेदिह ॥ २ ॥
पुंवृक्षैरेव देवानां देवीनां स्त्रीमहीरुहैः।
हिक्काधःकायतुल्यं स्याद् वंशदण्डायतं स्मृतम् ॥ ३ ॥
मध्योदरविशालस्य चतुर्भागैकविस्तृतम्।
तदष्टांशविहीनं स्याद् वंशदण्डाग्रविस्तृतम् ॥ ४ ॥
नाभ्यन्तं चतुरश्रं तु हिक्कान्तं वसुकोणकम्।
तदूर्ध्वं वृत्तमाख्यातमशेषं वृत्तमेव वा ॥ ५ ॥
द्वात्रिंशदङ्गुलं दीर्घं पक्षदण्डायतं स्मृतम्।
विस्तारं सार्धषण्मात्रमथ सप्ताङ्गुलं तु वा ॥ ६ ॥
विस्तारार्धं घनं प्रोक्तं पक्षदण्डस्य तस्य तु।
मध्यादंशक्रमादग्रौ कृशौ स्यातां युगाङ्गुलौ ॥ ७ ॥
पक्षदण्डस्य मध्ये तुच्छिद्रं सार्धगुणाङ्गुलम्।
हिक्कादण्डादधस्तात्तु पक्षदण्डोर्ध्वपार्श्वकम् ॥ ८ ॥

द्व्यङ्गुलं स्याद् यथा तद्वद् वंशदण्डे तु योजयेत् ।
षोडशाङ्गुलमायामं कटिदण्डाभिधस्य तु ॥ ९ ॥
वस्वङ्गुलं तु तत्तारं घनं वेदाङ्गुलं स्मृतम् ।
मध्ये युगाङ्गुलं छिद्रं नाभेः पञ्चाङ्गुलादधः ॥ १० ॥
कटिदण्डोर्ध्वपार्श्वे स्याद् यथा वंशे सुयोजयेत् ।
पक्षदण्डाग्रयोश्चैव कटिदण्डाग्रयोस्तथा ॥ ११ ॥
हस्तपद्दण्डयोगार्थं कुर्याद् वक्रशिखाः क्रमात् ।
द्व्यङ्गुलं तु शिखायामं हस्तसंख्योचितं ततम् ॥ १२ ॥
पक्षदण्डविशालस्य मानेनैवं विचक्षणः ।
एकद्वित्रिचतुष्पञ्चषट्सप्ताष्टादिभिः पुनः ॥ १३ ॥
तत्तद्बिम्बोचितकरसंख्यैः सम्यग् विभाजयेत् ।
शिखाव्यासं तदेकांशं मूलेऽग्रे मूलतः कृशम् ॥ १४ ॥
कटिदण्डाग्रयोर्वक्रशिखा कार्या गुणाङ्गुला ।
सार्धाङ्गुलं तु तत्तारं सुवृत्तं तत्समं घनम् ॥ १५ ॥
स्थानकं सकलं चेत्तु ऊरुदीर्घोर्ध्वदेशतः ।
अष्टाङ्गुलं समारोप्य ऊरुशूलायतं भवेत् ॥ १६ ॥
आसीने सकले चोरुदीर्घादूर्ध्वेऽष्टमात्रकम् ।
ऊरुमूले तु सुषिरं कृत्वा तु कटिदण्डके ॥ १७ ॥
शिखायान्तु समायोज्य बध्नीयात्तु यथाबलम् ।
जानुमानं तथा कृत्वा ऊरु जङ्घां द्वयोरपि ॥ १८ ॥
शिखां कृत्वा तयोर्मध्ये सम्यगारोपयेद् बुधः ।
गुणाङ्गुलं शिखा जानौ जङ्घा चोरुसमायता ॥ १९ ॥

ऊरुमध्ये त्रिभागैकमूरुशूलस्य विस्तृतम्।
तस्याग्रं तत्त्रिभागं स्याज्जाङ्घमूलस्य तत्समम् ॥ २० ॥
जङ्घामूलत्रिभागैकहीनं जङ्घाग्रविस्तृतम्।
जान्वग्रे योजयेज्जङ्घामथवा स्थानके पुनः ॥ २१ ॥
सन्धिं विनाङ्घ्रिशूलं तु एक एव विधीयते।
जङ्घादीर्घोपरिष्टात्तु तलशूलं तु रो(च?प)येत् ॥ २२ ॥
त्रिधा पादतलायामं कृत्वा भागद्वयायतम्।
तलाग्रविस्तृतस्यापि त्रिद्व्यंशं विस्तृतं तथा ॥ २३ ॥
व्यासार्धं वाथ विस्तारं तन्मूलाद् द्व्यङ्गुले पुनः।
कर्तव्यं सुषिरं तस्मिञ्जङ्घाग्रगशिखां न्यसेत् ॥ २४ ॥
बाहुशूलविशालं तु गुणाङ्गुलमुदाहृतम्।
अग्रं तद्द्व्यङ्गुलं व्यासं प्रकोष्ठं चैव तत्समम् ॥ २५ ॥
मूलतारार्धमग्रस्य व्यासं कुर्यात् प्रकोष्ठयोः।
बाहुप्रकोष्ठयोर्मध्ये कोर्परं जानुवद् भवेत् ॥ २६ ॥
द्व्यङ्गुलं तु शिखामानं योजयेत्तु दृढं यथा।
पार्श्वयोर्वंशदण्डस्य पार्श्वदण्डं तु योजयेत् ॥ २७ ॥
कटिपक्षान्तरं दीर्घं तद्व्यासं तु गुणाङ्गुलम्।
वंशदण्डसमं तीव्रमूर्ध्वाधस्ताच्छिखान्वितम् ॥ २८ ॥
गुणाङ्गुलान्तरे वंशपुच्छयोर्योजयेद् दृढम्।
हस्तपादतलं श्रोत्रं ताम्रपट्टेन योजयेत् ॥ २९ ॥
आर्जवे त्वार्जवं शूलं वक्रबिम्बे तु कुञ्चितम्।
देवानां शूलमेवं स्याद् देवीनां तु भिदा त्वियम् ॥ ३० ॥

---

१. 'क' ख. पाठः.

मध्योदरं त्रिधा भज्य एकांशं वंशविस्तृतम् ।
अष्टांशहीनमग्रस्य विशालं तत्सुवृत्तकम् ॥ ३१ ॥
बाहुपर्यन्तविस्ताराद् बाहुतत्यर्धवर्जितम् ।
पक्षदण्डायतं शेषं तस्यार्धं विस्तृतं भवेत् ॥ ३२ ॥
तदर्धं बहलं ख्यातं कटिदण्डं पुनस्तथा ।
कटितारे तु भूतांशे युगांशं तस्य दीर्घकम् ॥ ३३ ॥
शेषं प्रागिव कर्तव्यमासने तु विशेषतः ।
आसने वंशदण्डात्तु वस्वङ्गुलं तु योजयेत् ॥ ३४ ॥
युगांशं पृष्ठमानं तु शेषं गर्ते तु वेशनम् ।
जङ्घादण्डात्तु षण्मात्रं योजयेत् स्थानके बुधः ॥ ३५ ॥
गर्भगर्तप्रवेशार्थमुपशूलमथोच्यते ।
भित्तौ मध्यं समारभ्य पक्षदण्डपुरान्तकम् ॥ ३६ ॥
उपशूलायतं प्रोक्तमष्टाङ्गुलततं भवेत् ।
वेदाङ्गुलं तु तन्नीप्रं शूलयोग्यद्रुमे बुध! ॥ ३७ ॥
शूलव्याससमं मध्यच्छिद्रं तद्द्विशिखान्वितम् ।
भित्तिमध्यात्तु शूलस्य मूलं बद्ध्वा दृढं बुध! ॥ ३८ ॥
कटिदण्डं पक्षदण्डं धृत्वा वंशाख्यशूलकम् ।
छिद्रे दृढतरं मन्दं तत्पुरं कीलबन्धितम् ॥ ३९ ॥
उपशूलशिखान्तं च पक्षदण्डपुरं समम् ।
उपशूलशिखायां तु वंशाग्रे सुषिरं कुरु ॥ ४० ॥
लोहजं दारुजं वार्थे[1] यथाभुक्ति यथा दृढम् ।
बिम्बास्थि शूलमाख्यातं तस्मादुक्तं समाचरेत् ॥ ४१ ॥

---

१. 'थ तत् कीलं यथा' ख. ग. पाठः.

शूलस्य बिम्बवत् कृत्वा संस्कारान् गुरुरञ्जसा।
जलाधिवासप्रभृतीन् प्रतिष्ठां कारयेद् बुधः॥ ४२॥

इति शिल्परत्ने उत्तरभागे शूलस्थापनलक्षणं नाम
सप्तदशोऽध्यायः॥

---

## अथाष्टादशोऽध्यायः।

### अथ रज्जुबन्धम्।

एवं कृत्वा गृहीत्वाथ शूलं विधिपुरःसरम्।
शुद्धिं कृत्वाधिवास्यात्र प्रतिष्ठां तु समाचरेत्॥ १॥
गर्भे तु पीठिकां कृत्वा शिलयेष्टकयापि वा।
तत्प्रतिष्ठावटे कृत्वा शिलामाधारसंज्ञिताम्॥ २॥
षण्मात्रं स्थानके बेरे प्रतिष्ठावटयोर्द्वयोः।
अगाधं व्यासमग्न्यंशं स्थानके सकले तथा॥ ३॥
पीठमध्ये चतुर्मात्रागाधमेकावटं स्मृतम्।
कृत्वाधारशिलायां तु रत्नन्यासं यथाविधि॥ ४॥
आनीय देशिकः शूलं विधिवद् गर्भवेश्मनि।
जङ्घाशूलक्रमूलौ व वंशशूलस्य मूलकम्(?)॥ ५॥
तत्तदर्हावटे न्यस्य सुधया वाष्टबन्धतः।
आचरेन्निश्चलं शूलं दृढीकृत्य यथाबलम्॥ ६॥
अथवा पूर्ववद् गर्भन्यासं कृत्वा यथाविधि।
गर्भस्योपरि शूलस्य प्रतिष्ठामेवमाचरेत्॥ ७॥
अथ सन्धिषु सर्वेषु ताम्रपट्टैस्तु वेष्टयेत्।
शूलेऽष्टबन्धमालिप्य कारयेद् रज्जुबन्धनम्॥ ८॥

श्रीवेष्टकं चतुर्भागं कुन्दुरिक्षं गुणांशकम् ।
गुग्गुलुं पञ्चभागं तु गुलमेकांशमानकम् ॥ ९ ॥
सर्जारसं तु वस्त्रंशं गैरिकं तु गुणांशकम् ।
संयोज्य चूर्णयेत् सम्यङ् मृत्पात्रे निक्षिपेत् पुनः ॥ १० ॥
आसिच्य घृततैलाभ्यां मन्दाग्नौ पच्यतामिदम् ।
यदा क्षौद्रमिवायाति तदा शूले विलिम्पयेत् ॥ ११ ॥
अष्टबन्धमिदं ख्यातमिदं शिल्पविशारदैः ।
नालिकेरफले पक्के तच्चर्मे तु जलोषिते ॥ १२ ॥
यत्नाद् गृहीत्वा तत्सारं सारादन्यं व्यपोह्य च ।
तत्सारैर्नाडयः सम्यक्कार्यास्तत्तत्प्रमाणतः ॥ १३ ॥
रज्जुवर्त्म तु नाभौ स्यान्मूलाधारात्त्रयोर्ध्वगाः ।
सुषुम्ना मध्यगा ख्याता पिङ्गला दक्षपार्श्वगा ॥ १४ ॥
इडा वै तस्य वामस्था प्रधाना नाडयस्त्विमे ।
द्विद्व्यङ्गुलपरीणाहयुतास्ता वै त्रिवर्तिकाः ॥ १५ ॥
तेषां नाडित्रयाणां तु योगं भ्रूमध्यमे भवेत् ।
तदधोविग्रहास्त्विष्टवंशदण्डपुराश्रिताः ॥ १६ ॥
भ्रूमध्यान्मूर्ध्निपर्यन्तं त्रिनाडी चैकवद् भवेत् ।
सा मूर्धानोपरिगता सप्तशाखाविभेदिता ॥ १७ ॥
गान्धारी हस्तिजिह्वा च पूषा चैव यशस्विनी ।
अलम्बुषा कुहूश्चैव शङ्खिनीत्यभिधानकाः ॥ १८ ॥
गान्धारी सर्वगात्रान्ता हस्तिजिह्वान्तरान्तका ।
पूषा दक्षिणकर्णान्ता वामकर्णा यशस्विनी ॥ १९ ॥

अलम्बुषा मेढ्रमूलान्ता गुदान्ता कुहू भवेत् ।
नाभिमध्यावसानं तु शङ्खिनीलम्बनं भवेत् ॥ २० ॥
तेष्वादौ तु चतुर्नाडी यवत्रयघनान्विता ।
शेषनाडीत्रयाणां तु (यवं ?) चतुर्यव(घनं) भवेत् ॥ २१ ॥
दक्षिणावर्तिताः सर्वे द्विवर्तंते प्रकीर्तिताः (?) ।
प्रधाननाडीत्रितयमूलं मेढ्रस्य मूलके ॥ २२ ॥
तन्नाडिमूलाद् भिन्नास्तु नाडयोऽष्टादश स्मृताः ।
विमला घोषणी पृथ्वी वाहिनी तेजसी तथा ॥ २३ ॥
वायसी गगनी चैव मदनी रोदनी तथा ।
रसवादी मृदङ्गी च स्रंसिनी च तथैव च ॥ २४ ॥
शब्दस्पृशाङ्गी पूर्णा च संहारी च सवारिणी ।
वाहिनी तामसी ख्याता मेढ्रमूलसमुद्भवाः ॥ २५ ॥
तासामाद्यास्तु नाड्यः षड् दक्षिणं पादमाश्रिताः ।
अन्तस्थाः षट् तथा वामपादमेव समाश्रिताः ॥ २६ ॥
अधोमुखगता विष्वक्कूलस्यास्य भवन्ति ताः ।
नलकाग्रे समावृत्य षण्णामग्रं तथैकवत् ॥ २७ ॥
सुषुम्नामूलमाश्रित्य शेषा वंशस्य पार्श्वतः ।
आरुह्य पक्षदण्डोर्ध्वं ततस्ते बाहुमूलगाः ॥ २८ ॥
गगनी मदिनी चैव रोदनी दक्षिणे करे ।
रसवादी मृदङ्गी च स्रंसिनी वामबाहुगा ॥ २९ ॥
बाहुमूलं समावृत्य तदग्रं त्वेकवद् भवेत् ।
तदग्रादष्टशाखाः स्युर्दक्षिणेऽदक्षिणे तथा ॥ ३० ॥

बाहुमूलात्तलान्तं तु नाडयोऽष्टौ प्रसारिताः ।
एकीकृत्य तदग्राणि मणिबन्धावृतं यथा ॥ ३१ ॥
तथा करोतु हस्तेषु सर्वेष्वेवं समाचरेत् ।
प्रधाननाडयस्त्वेवं कल्पयेत् प्रतिमादिषु ॥ ३२ ॥
ताभ्यस्त्वनेकधा नाडी सर्वाङ्गं तु समावृताः ।
सप्ततिर्द्विसहस्राणि नाडयः परिकीर्तिताः ॥ ३३ ॥
नाडीभिस्त्वावृतं शूलं जीर्णाश्वत्थस्य पत्रवत् ।
नाडयस्त्विति सङ्कल्प्य तस्मादावृतनाडिकाः ॥ ३४ ॥
यवषट्कपरीणाहं रज्जुमापातयेद् दृढम् ।
पार्श्वं निरन्ध्रं रज्जुभ्यां बन्धयेद् दक्षिणावृतम् ॥ ३५ ॥
हृत्पद्मं साष्टपत्रं तु रज्जुना कारयेद् बुधः ।
तस्य नालं तु नाभ्यन्तं कृत्वा योज्यं सुषुम्नया ॥ ३६ ॥
जीवस्थानं तु हृत्पद्ममित्युक्तं हि महर्षिभिः ।
मूलमन्त्रमनुस्मृत्य रज्जुबन्धं समाचरेत् ॥ ३७ ॥

इति शिल्परत्ने उत्तरभागे रज्जुबन्धलक्षणं नाम
अष्टादशोऽध्यायः ॥

---

## अथैकोनविंशोऽध्यायः ।

### अथ मृल्लेपनम् ।

(ला?जा)ङ्गलं च तथानूपं सम्मिश्रं च त्रिधा हि भूः ।
अशक्यं खननेऽत्यर्थं दृढं जाङ्गलकं स्मृतम् ॥ १ ॥

---

१. 'पाणिरन्ध्रं तु र' क. ख. पाठः.

कृष्णवालुकसंयुक्तमक्लेशात् खननक्षमम् ।
(हस्तेमरोरमाहस्तं दृढक्रियतदनूपकम्?)॥ २ ॥

तयोर्मिश्रमिवाकारं मिश्रभूस्तदुदाहृतम् ।
तेष्वशोष्यजलोपेते शुद्धे देशे मनोरमे ॥ ३ ॥

नदीदीर्घतटाकादौ जातं पङ्कं समाहरेत् ।
श्वेतवर्णं तु वा रक्तवर्णं हारिद्रमेव वा ॥ ४ ॥

विप्रादिवर्णभेदेन कृष्णवर्णमथापि वा ।
संगृह्यालोडय पात्रेषु स्रावयेन्नववाससा ॥ ५ ॥

तत् स्रावं तोयनिर्मुक्तं पात्रस्थं घर्मशोषितम् ।
लाक्षाक्षीरत्वचोद्भूतकाथतोयेषु मर्दयेत् ॥ ६ ॥

शोषयित्वा पुनः काथैः खदिरार्जुनसम्भवैः ।
सम्मर्द्य शोषयेद् यावत् तत् पङ्कं पिण्डतां ययौ ॥ ७ ॥

पुनः फलत्रयक्काथमर्दितं शोषयेद् बुधः ।
ईषद् द्रवसमायुक्तं पिण्डं कृत्वा तु तन्मृदम् ॥ ८ ॥

पिण्डे हस्ततले रेखा दृश्येत् पिण्डं* तदा कुरु ।
मृदं वेदकृतैकांशं योजयेत्तु मृदा सह ॥ ९ ॥

त्रिफलाम्भसा तु संमर्द्य सप्ताष्टदशरात्रकम् ।
यवगोधूममाषांश्चाप्यतसीपत्रकं तथा ॥ १० ॥

यथा समांशं संयोज्य चूर्णितं सुतरां पुनः ।
मृदष्टांशं समायोज्य नालिकेरफलोदकैः ॥ ११ ॥

* इत उपरि ग-चिह्निते तालपत्रकोशे एकादशपत्राणि लुप्तानि ।

पात्रेषु मर्दयेत् सम्यग् दशाहादिक्रमेण तु ।
श्रीवेष्टं गुल्गुलुं चैव कुन्दुरिक्कं तथैव च ॥ १२ ॥
सर्जारसं च तुल्यांशानेतान् संचूर्ण्य योजयेत् ।
मृत्कलांशं मृदौ तस्मिन् दधिना मर्दयेत् पुनः (?) ॥ १३ ॥
शुण्ठी च पिप्पली चैव मरिची रजनी तथा ।
समांशं चूर्णयेद् विद्वान् तच्चूर्णं तु मृदा सह ॥ १४ ॥
मृत्तिकाचतुर्विंशांशं योजयित्वा तु मर्दयेत् ।
मधुक्षीरघृतैरेवं मर्दयेच्च पुनस्तथा ॥ १५ ॥
कपित्थबिल्वनिर्यासचूर्णौ द्वौ समतां कुरु ।
मृदः पञ्चदशांशेन तच्चूर्णेन विमर्दयेत् ॥ १६ ॥
तैलेनासिच्य संमर्द्य पुनः कुङ्कुमचन्दनौ ।
हरितालकुष्ठकर्पूरागरुगोरोचनानि च ॥ १७ ॥
समं संचूर्ण्य मृत्स्नायां त्रिंशांशं योजयेत् पुनः ।
अतसीकाष्ठजस्नेहसंयुक्तं तु विमर्दयेत् ॥ १८ ॥
स्वर्णराजतचूर्णं च नदीसागरसम्भवम् ।
कुलीरावासवल्मीकहलस्थलसमुद्भवम् ॥ १९ ॥
सस्यमूलोक्षशृङ्गेभदन्तजामृत्तिकारजः ।
यथालाभं तु संगृह्य नानागन्धसमन्वितम् ॥ २० ॥
संयोज्याथ मधूकत्वक्कषायजलसंयुतैः ।
कपित्थबिल्वनिर्यासैः सम्मर्द्य दिनपञ्चकम् ॥ २१ ॥
नीत्वा पश्चान्नालिकेरफलपक्वत्वचां पुनः ।
सारमेकाङ्गुलायामं सार्धं वा द्व्यङ्गुलं तु वा ॥ २२ ॥

छित्वा तु मृच्चतुर्थांशं युक्त्वा सम्मर्दयेन्मुहुः ।
रज्ज्वावृतास्थिबाह्ये तु तन्मृदालेपयेत् पुनः ॥ २३ ॥
तस्मिञ्छुष्के रज्जुबन्धं ततो मृल्लेपनं पुनः ।
मृद्घनं चन्द्रनेत्राग्निमात्रं योग्यवशाद् भवेत् ॥ २४ ॥
एवं निरीक्ष्य कर्तव्यं मृल्लेपनमतः शनैः ।
तत्तदङ्गप्रदेशेषु शूलबाह्यगतं घनम् ॥ २५ ॥
चतुरंशैर्विभज्यात्र प्रथमांशावसानकम् ।
मृल्लेपं त(द)नूपं तत्तद्बाह्येंऽशं तु मिश्रकम् ॥ २६ ॥
तद्बा(हु?ह्य)गतमेकांशं जाङ्गलाख्यमुदाहृतम् ।
तत्तद्देशमृदेनैव तत्तद्भागं समालिपेत् ॥ २७ ॥
कल्केन पूरयेच्छेषं कल्कनिर्माणमाचरेत् ।
अतिकृष्णतारनदीशर्करया समम्(?) ॥ २८ ॥
नदीवालुकमायोज्य सुसूक्ष्मं चूर्णयेद् बुधः ।
कपित्थनिर्यासजलैर्मर्दयित्वा विशोषयेत् ॥ २९ ॥
पुनः कार्पासतूलेन संयुक्तं परिवेष्टयेत् ।
शिलापृष्ठे पुनः शोषं कृत्वा पश्चात्तु पेषयेत् ॥ ३० ॥
त्रिवारं पेषयित्वैवं तेन शेषं प्रपूरयेत् ।
अङ्गोपाङ्गानि संपूर्य भूषावस्त्रादिकान्यपि ॥ ३१ ॥
कल्केनैव विधायात्र सम्यक् संशोषणे सति ।
त्रिफलोत्थक्काथजलैः सम्यगालिप्य सर्वतः ॥ ३२ ॥
शुष्के तु स्वर्णपिष्टेन लेपं कृत्वा पुनः क्रमात् ।
चित्रोक्तमार्गमाश्रित्य वर्णलेपं च कारयेत् ॥ ३३ ॥

मुक्ताफलस्य चूर्णस्य पिष्टः स्यात् सितवर्णके ॥ ३३½ ॥

इति शिल्परत्ने उत्तरभागे मूलेपनविधिर्नाम
एकोनविंशोऽध्यायः ॥

---

## अथ विंशोऽध्यायः ।

### अथ देवीकुमारलक्षणम् ।

स्थानकानां तु देवानां देव्यः स्युः स्थानकास्तथा ।
आसीनास्त्वासिते देवे विपरीतं विपत्करम् ॥ १ ॥

देवस्य वामपार्श्वे तु देवी तत्पीठगा भवेत् ।
पीठान्तरगता वापि देवमालिङ्ग्य वा भवेत् ॥ २ ॥

देवस्य नासिकान्तं वा ललाटान्तमथापि वा ।
हन्वन्तं वा प्रकर्तव्यं देव्यायाममिहोदितम् ॥ ३ ॥

क्रीडापद्मं वामहस्ते कटिबन्धं तु वान्यतः ।
सर्वाभरणसंयुक्ता तत्तद्युक्तविभूषणैः ॥ ४ ॥

किञ्चिदेवाश्रितं वक्त्रं प्रसन्नमधुरं भवेत् ।
देवीदेवेशयोर्मध्ये कुमारं स्थापयेत्तु वा ॥ ५ ॥

हिक्कान्तं वा स्तनान्तं वा तयोर्मध्येऽष्टभाजिते ।
एकैकांशकहीनेन नवधा तुङ्गमाचरेत् ॥ ६ ॥

देवीबिम्बोच्चमानेन कुमारप्रतिमोन्नतम् ॥ ६½ ॥

इति शिल्परत्ने उत्तरभागे देवीकुमारलक्षणं नाम
विंशोऽध्यायः ॥

---

## अथैकविंशोऽध्यायः ।

### अथ वाहलक्षणम्—तत्र पूर्वं वृषलक्षणम् ।

तुङ्गे पञ्चदशांशे तु एकांशं त्वङ्गुलं भवेत् ।
चत्वारिंशाङ्गुलायामं मुखात् पृष्ठावसानकम् ॥ १ ॥
मूर्तेस्त्वध उपर्यन्तं धर्ममात्रमुदाहृतम् ।
तस्माद् ग्रीवोच्चमष्टांशमुरोन्तं षोडशाङ्गुलम् ॥ २ ॥
ऊरुदीर्घं तु षण्मात्रं जानुमानं द्विमात्रकम् ।
जङ्घामानं षडंशं स्यात् खुरमानं द्विमात्रकम् ॥ ३ ॥
शृङ्गान्तरं तु वस्वंशं शृङ्गोच्चं चतुरङ्गुलम् ।
शृङ्गमूलविशालं तु चतुरङ्गुलमेव च ॥ ४ ॥
तदग्रव्यासमर्धांशं मूलादग्रं क्रमात् कृशम् ।
किञ्चिद् वक्रसमायुक्तौ शृङ्गावभ्यन्तरे क्रमात् ॥ ५ ॥
ललाटतारं नन्दांशं मुखव्यासं शरांशकम् ।
घनं तु तत्समं ख्यातं नेत्रायं द्व्यङ्गुलं भवेत् ॥ ६ ॥
अध्यर्धाङ्गुलमुत्सेधं शफराकृति कारयेत् ।
नेत्रमध्यान्मुखाय़ाममष्टाङ्गुलमुदाहृतम् ॥ ७ ॥
तस्माद् वै पृष्ठग्रीवान्तं षण्मात्रं परिकीर्तितम् ।
नेत्रमध्याल्ललाटोच्चं वेदमात्रमुदाहृतम् ॥ ८ ॥
नेत्रात् कर्णान्तरं तद्वत् कर्णायामं शरांशकम् ।
कर्णमूलविशालं तु द्विमात्रमिति कथ्यते ॥ ९ ॥
मध्यव्यासं चतुर्मात्रमग्रमङ्गुलविस्तृतम् ।
घनमर्धाङ्गुलं ख्यातं गण्डं तत्सममुच्यते ॥ १० ॥

अङ्गुलं नासिकादीर्घं* + + + + + + + + ॥ १०½ ॥

अथाश्वलक्षणम् ।

मुखं तालत्रयं प्रोक्तमायामेन तुरङ्गमे ।
तन्मध्यवर्तिनो वक्ष्ये प्रदेशान्मात्रया मितान् ॥ १ ॥
वर्तुलं मस्तकं कार्यं षडङ्गुलमितं पुनः ।
त्र्यङ्गुलं कर्णमूलान्तमुत्सेधेन व्यवस्थितम् ॥ २ ॥
कर्णमूलात्तथा कर्णौ कार्यावष्टाङ्गुलायतौ ।
ना(ग)वल्लीदलप्रख्यौ चतुरङ्गुलविस्तृतौ ॥ ३ ॥
कर्णमूलस्य नेत्रस्य मध्यं कार्यं नवाङ्गुलम् ।
नेत्रे गोलद्वयायामे सार्धद्व्यङ्गुलविस्तृते ॥ ४ ॥
भ्रुवौ द्व्यङ्गुलविस्तारे षडङ्गुलसमायते ।
भ्रुवोर्मध्यप्रदेशस्तु द्वादशाङ्गुलसम्मितः ॥ ५ ॥
षडङ्गुलं भवेत् फालं केशान्ते मध्यदेशतः ।
अष्टाङ्गुलं ततश्चाधो द्वादशाङ्गुलविस्तृतम् ॥ ६ ॥
एकतालो भवेद् दैर्घ्यं ललाटस्य प्रमाणतः ।
नयनाद् गण्डविस्तारः षोडशाङ्गुल इष्यते ॥ ७ ॥
नासावंशस्य दैर्घ्यं स्यात् षोडशाङ्गुलमिष्यते ।
विस्तारस्त्र्यङ्गुलः प्रोक्तो नासिका चतुरङ्गुला ॥ ८ ॥
नासापुटस्य विस्तारो द्व्यङ्गुलः परिकीर्तितः ।
पुटयोरन्तरं प्रोक्तमूर्ध्वभागे षडङ्गुलम् ॥ ९ ॥

* इत ऊर्ध्वं क-ख-मातृकयोः सप्ताष्टश्लोकलेखनपर्यासं तालपत्रमलेखं दृश्यते ।

चतुर्मात्रमधोभागे तत्र लेखात्रयं भवेत् ।
तस्याधः (प्रौढ ? प्रोथ)देशः स्याच्चतुरङ्गुलसम्मितः ॥ २० ॥
चतुरङ्गुलविस्तारः पीनत्वं चतुरङ्गुलम् ।
मुखराजे(:) पुटस्यापि मध्यं स्याच्चतुरङ्गुलम् ॥ २१ ॥
मुखरेखाबहिर्भागे हनुः स्याच्चतुरङ्गुलः ।
चिबुकं तत्र कर्तव्यं पञ्चाङ्गुलमितं बुधैः ॥ २२ ॥
(प्रौढा ? प्रोथा)च्च सृक्कपर्यन्तमास्यरेखा स्वराङ्गुला ।
मस्तकात् काकसां यावच्चतुस्तालमितं भवेत् ॥ २३ ॥
स्यात् केसरस्य विस्तारः शीर्षदेशेऽङ्गुलत्रयम् ।
चतुरङ्गुलं भवेन्मध्ये प्रान्ते मात्रमितो भवेत् ॥ २४ ॥
कृत्तकेसरकः स्कन्धः कर्तव्यः काकसावधि ।
काकसायां तथा कार्याः केसरा दैर्घ्यशालिनः ॥ २५ ॥
मस्तके च तथा केशा द्वादशाङ्गुलदैर्घ्यकाः ।
तरङ्गिता घनाः स्निग्धाः श्लक्ष्णाः कार्या मनोहराः ॥
नि(गपा ? गाला)दंसपर्यन्तं ग्रीवा तालद्वयायता ।
अङ्गुलत्रयविस्तारा कार्या निखिलघोटके ॥ २७ ॥
स्कन्धदेशपरीणाहः षट्तालः साङ्गुलत्रयः ।
स्कन्धमध्यपरीणाहश्चतुष्पञ्चदशाङ्गुलः ॥ २८ ॥
ग्रीवासन्धिपरीणाहस्त्रितालश्च नवाङ्गुलः ।
वक्षोदेशस्य विस्तारो द्वादशाङ्गुलसम्मितः ॥ २९ ॥
अष्टादशाङ्गुलं दैर्घ्यं वक्षोदेशस्य कल्पितम् ।
वक्षःकाकसयोर्मध्यं द्विचत्वारिंशदङ्गुलम् ॥ ३० ॥

तथा चरणयोर्दैर्घ्यं द्विचत्वारिंशदङ्गुलम् ।
बाहु(दीर्घ ? दैर्घ्यं) भवेत् त्रयं प्रोक्तं पञ्चदशाङ्गुलम ॥ ३१॥
बाहुमूलपरीणाहस्त्रिंशदङ्गुलसम्मितः ।
बाहुमध्यपरीणाहो वितस्तिद्वयवेष्टनात ॥ ३२ ॥
बाहुप्रान्तपरीणाहो भवेदष्टादशाङ्गुलम् ।
(अष्टादशाङ्गुलो) जानुनाह एकोनविंशतिः॥ ३३ ॥
जङ्घानलकदैर्घ्यं स्यान्नाहो द्वादशमात्रकः ।
पलिहस्तस्य दैर्घ्यं तु षडङ्गुलमुदीरितम् ॥ ३४ ॥
पलिहस्तपरीणाहो भवेदष्टादशाङ्गुलः ।
कुष्ठिकाया भवेद् दैर्घ्यं षडङ्गुलमुदीरितम् ॥ ३५ ॥
कुष्ठिकायाः परीणाहो द्वादशाङ्गुलसम्मितः ।
खुरदैर्घ्यं समुद्दिष्टं षडङ्गुलमितं बुधैः ॥ ३६ ॥
भवेत् खुरपरीणाहो विंशत्यङ्गुलसम्मितः ।
पृष्ठप्रदेशदैर्घ्यं च चतुस्तालमुदाहृतम ॥ ३७ ॥
कक्षदेशपरीणाहः शताङ्गुलमितो भवेत ।
रन्ध्रस्थानपरीणाहः सप्ततालं स्वराङ्गुलम ॥ ३८ ॥
रन्ध्रोपरन्ध्रयोर्मध्यं विंशत्यङ्गुलमायतम ।
त्रिकस्थानस्य विस्तारस्त्रिगुणैः षोडशाङ्गुलैः ॥ ३९ ॥
(ज्वल ? जघ)नस्य तु विस्तारः षट्चत्वारिंशदङ्गुलः ।
सक्थिप्रान्तपरीणाहस्तालद्वितयसम्मितः ॥ ४० ॥
नवाङ्गुलायता श्रो(त्रा ? ग) णा(भे ? हे)न त्रिंशदङ्गुला ।
उपरन्ध्रात् समारभ्य कोशस्थानं तु तालतः ॥ ४१ ॥

चतुरङ्गुलायतः कोशो मुष्कावष्टाङ्गुलायतौ।
(स्व?स्थू)रायां बुध्नभागस्थे जङ्घे च परिहस्तकौ॥ ४२॥
रुष्टिके च खुरद्वन्द्वं कार्यं पौ(ल?र)स्त्यपादवत्।
स्कन्धोऽङ्गुष्ठं च मध्यं च कृशं कार्यं प्रमाणतः॥ ४३॥
ब(न्धा?डवा)यां महद् वक्षो जघनं च सुविस्तृतम्।
खुरपृष्ठान्तमालम्ब्य लाङ्गूलं चामराकृति॥ ४४॥
यान्यनुक्तानि तान्यत्र कुर्यादङ्गानि युक्तितः।

अथ गजलक्षणम्।

गजस्य लक्षणं वक्ष्ये ज्ञानार्थं चित्रवेदिनाम्॥ ४५॥
केशान्ततः समारभ्य यावत् स्यात् प्रतिमान(त?क)म।
(सु?मु)खं तत् कथितं तज्ज्ञैर्गजानां चित्रवेदिभिः॥
ऊर्ध्वं केशान्ततः शीर्षं यावत् कुम्भसमुद्भवः।
शीर्षस्योपरि कुम्भौ द्वौ कर्तव्यौ कुचसन्निभौ॥ ४७॥
वायुकुम्भस्य शीर्षस्य सन्धेरा प्रतिमानतः।
पिप्पलीदन्तवेष्टाभ्यां वेष्टितं मुखमीरितम्॥ ४८॥
त्रिधा विभज्य तत्तालांस्त्रीन् भागान् परिकल्पयेत्।
त्रिधा विभज्य तद्वक्रं त्रितालं परिकल्पयेत्॥ ४९॥
यावत्प्रमाणकं नागं कर्तुमिच्छति शिल्पिराट्।
चतुर्धा भाजिते तस्मिन् माने तालस्ततोऽङ्गुलम्॥ ५०॥
ऋजूनि लम्बसूत्राणि विधेयानि त्रयोदश।
एकैकतालभिन्नानि चित्रकर्मविशारदैः॥ ५१॥
तत्तत्प्रमाणकान्येव तिर्यक्सूत्राणि कारयेत्।
एकादशैव तानि स्युः करिणां चित्रकर्मणि॥ ५२॥

सविंशच्छतमुद्दिष्टाः (सूत्रा ? कोष्ठा)स्तत्सूत्रमध्यगाः ।
तत्र सूत्रेषु वक्ष्यामि प्रदेशान् नागसम्भवान् ॥ ५३ ॥

लम्बसूत्रं बहिष्ठं यत्तच्छिष्टं प्रतिमानके ।
निदा(ने ? नं) वायुकुम्भाग्रे दन्तमूले द्वितीयकम् ॥ ५४ ।

बिन्दुमध्ये मदच्छिद्रे सृक्कदेशे तृतीयकम् ।
कण्ठे च पिप्पलीदेशे कुम्भप्रान्ते तुरीयकम् ॥ ५५ ॥

आसने कर्णमध्ये च पुरोनखरपश्चिमे ।
द्वितीये नखरे लग्नं कार्यं सूत्रं तु पञ्चमम् ॥ ५६ ॥

अंसे कर्णतलस्याग्रे पश्चान्नखरपश्चिमे ।
सूत्रं षष्ठं प्रकुर्वीत सूत्रन्यासविशारदः ॥ ५७ ॥

मध्यदेशे प्रयुञ्जीत लम्बसूत्रचतुष्टयम ।
सूत्राणां दशकं चैवं कथितं सूत्रवेदिभिः ॥ ५८ ॥

पेचकं पाचरांजितं (?) पाश्चात्यनखमध्यगम् ।
एकादशं भवेत् सूत्रं द्वादशं जघनस्पृशम् ॥ ५९ ॥

त्रयोदशं बहिष्ठं तु पुच्छमूले सुघट्टितम् ।
मस्तके वंशपृष्ठे च तिर्यक्सूत्रमथादिमम् ॥ ६० ॥

वायुकुम्भस्य शीर्षस्य सन्धौ पिप्पलिदेशतः ।
पेचके च विधातव्यं सूत्रमत्र द्वितीयकम् ॥ ६१ ॥

वायुकुम्भस्य मध्ये च नेत्रकर्णदलाग्रतः ।
पेचकस्याप्यधोभागे सूत्रं कार्यं तृतीयकम् ॥ ६२ ॥

मुखमध्ये सृक्कदेशे पुच्छमध्यसुसङ्गतम् ।
चतुर्थं कल्पयेत् सूत्रं चित्रकल्पनकोविदः ॥ ६३ ॥

तदधः पञ्चमं सूत्रं षष्ठं तु जठरान्ततः।
सप्तमं बाहुमध्ये स्यादष्टमं जानुमध्यगम् ॥ ६४ ॥
जङ्घामध्ये च नवमं दशमं गुल्फ(तो ? को)र्ध्वतः।
एकादशं तु पादानां तलस्पृष्टं विधीयते ॥ ६५ ॥
मुखस्य त्रिगुणं दैर्घ्यं कण्ठात् पुच्छावसानकम्।
जठरेण समं गात्रं कलाहीनं तु वा भवेत् ॥ ६६ ॥
गात्रतुङ्गसमं पादं पुच्छमागुल्फलम्बितम्।
पुच्छमूलपरीणाहं तालमात्रं निरूपितम् ॥ ६७ ॥
तदर्धमग्रं कर्तव्यं कृशाग्रं वर्तुलाकृति।
तदग्रस्योभये पार्श्वे स्थूलरोमाणि कारयेत् ॥ ६८ ॥
श्रोत्रकुम्भाक्षदन्तोष्ठहस्तादीनि विशेषतः।
विघ्नेशप्रोक्तमालोच्य कारयेत् सुमनोहरम् ॥ ६९ ॥
एवमन्यानि वाहानि तत्तद्देवोचितान्यपि।
युक्त्या सम्यक् प्रकुर्वीत तत्तच्छास्त्रानुसारतः ॥ ७०½ ॥

इति शिल्परत्ने उत्तरभागे वाहनलक्षणं नाम
एकविंशोऽध्यायः ॥

---

## अथ द्वाविंशोऽध्यायः।

**अथ ध्यानं — तत्र पूर्वं शैवे सुखासनमूर्तिः।**

आर्जवं राजराजाभं भद्रपीठोपरि स्थितम।
वामाङ्घ्रिं शाययेत् पीठे दक्षिणाङ्घ्रिं तु लम्बयेत् ॥ १ ॥
जागतं(?) तु सुखासीनं प्रवालसदृशप्रभम्।
त्रिनेत्रं तु प्रसन्नास्यं सम्पन्नं राजसैर्गुणैः ॥ २ ॥

व्याघ्राजिनवरोपेतं दुकूलवसनान्वितम् ।
दक्षिणे परशुं वामे कृष्णां हस्ते समुद्वहम् ॥ ३ ॥
अभयं दक्षिणे वामे कटकं सिंहकर्णवत् ।
दक्षिणे मकराख्यं वा कुण्डलं सिंहमेव वा ॥ ४ ॥
पत्रकुण्डलमन्यत्र वामकर्णे विशेषतः ।
अथवा कर्णयुगले वृत्तकुण्डलकं न्यसेत् ॥ ५ ॥
जटामकुटसंयुक्तं नानाभरणभूषितम् ।
यज्ञोपवीतसंयुक्तं सर्पराट्कङ्कणान्वितम् ॥ ६ ॥
एवं सुखासनं प्रोक्तं राजराष्ट्रसुखावहम् ।

## अथ सोमास्कन्देश्वरः ।

अथ वक्ष्ये विशेषेण सोमास्कन्देश्वरं वरम् ॥ ७ ॥
सुखासनं यथा प्रोक्तं तथा देवो विधीयते ।
देवस्य वामपार्श्वे तु पार्वती च सहासने ॥ ८ ॥
शाययेद् दक्षिणं पादं वामपादं प्रलम्बयेत् ।
वरदं वामहस्ते तु दक्षिणे चोत्पलं करे ॥ ९ ॥
दूर्वाश्यामनिभा देवी सर्वाभरणभूषिता ।
रक्ताम्बरधरा हारकिरीटमकुटान्विता ॥ १० ॥
वामोरुवाह्ये पीठे तु वामहस्ततलं न्यसेत् ।
प्रह्वदुत्पलसंयुक्तमन्यमेवं करोतु वा ॥ ११ ॥
देवीदेवेशयोर्मध्ये स्थापयेत् स्कन्दमूर्तिनम् ।
केशान्ते वा(पि ? चि)कोपेतंकरण्डमकुटान्वितम् ॥ १२ ॥

---

१. 'रि', २. 'व', ३. 'तम' घ पाठः.

उभयोर्हस्तयोः पुष्पं वामे वरदमेव वा।
कटकं वाथ तद्धस्ते सिंहकर्णमथापि वा ॥ १३ ॥
अथवा पुस्तकं दक्षहस्ते वामे पुरोक्तवत्।
कटिसूत्रयुतं नग्नं बाहुभूषणभूषितम् ॥ १४ ॥
आसीनं वा स्थितं वाथ नृत्तं वा स्कन्दमाचरेत्।
नृत्तं चेत् फलवद्वामहस्तमन्यत्र सूचिकम् ॥ १५ ॥
अथवा वामहस्तं तु फलं त्यक्त्वा प्रसारयेत्।
वक्ष्यमाणविधानेन स्कन्दं नृत्तं समाचरेत् ॥ १६ ॥

अथ चन्द्रशेखरः।

केवलं गौरिसहितमालिङ्गं च त्रिधा भवेत्।
केवलं समपादं तु स्थानकं परिकल्पयेत् ॥ १७ ॥
अभयं दक्षिणं हस्तं वरदं वाममुच्यते।
हरिणीं वामहस्ते तु टङ्कं वै दक्षिणे करे ॥ १८ ॥
जटामकुटसंयुक्तं दक्षिणेऽर्धेन्दुशेखरम्।
वामेन्दुशेखरं वाथ प्रवालसदृशप्रभम् ॥ १९ ॥
त्रिनेत्रं सौम्यवदनं सर्वाभरणभूषितम्।
पीताम्बरधरं देवं वस्त्राग्रा नलकान्तगौ ॥ २० ॥
उभयोः पार्श्वयोरेव मध्यतश्चोरुमध्यगम्।
केवलं त्वेवमाख्यातं वामे गौरीसमन्वितम्। २१ ॥
भिन्नपीठेऽविशेषेण तद् गौरीसहितं विदुः।
देवो वरदहस्तेन देवीं तत्पार्श्वमाश्रिताम् ॥ २२ ॥
स्त(न)नाभ्यन्तरे वामपार्श्वमालिङ्गनं कुरु।
पार्श्वसूत्रात् परं वामबाहुमालिङ्गनं तु वा ॥ २३ ॥

देवीदक्षिणहस्तेन शम्भोर्दक्षिणपार्श्वतः ।
कटिसूत्रोपरि तथा वामे पुष्पधृता करे ॥ २४ ॥

अथवा प्राग्वदेवेशो देवी रक्तोत्पलान्विता ।
करे तु दक्षिणे वामहस्तमत्र प्रलम्बयेत् ॥ २५ ॥

एवमालिङ्गमूर्तिं तु त्रिधा मार्गेण कल्पयेत् ।
एवं पञ्चविधं प्रोक्तं चन्द्रशेखरमूर्तिनम् ॥ २६ ॥

अथ वृषारूढमूर्तिः ।

दक्षिणं सुस्थितं वामपादं तु कुञ्चितम् ।
वृषस्य मस्तकोर्ध्वे तु न्यसेद् वै वामकोर्परम् ॥ २७ ॥

तस्य दक्षिणहस्ते तु वक्रदण्डमुदाहृतम् ।
कनिष्ठाङ्गुलिपरीणाहमग्रे वक्रत्रयान्वितम् ॥ २८ ॥

लोहजं दारुजं वापि वक्रदण्डं प्रकीर्तितम् ।
परहस्तद्वयोश्चैव टङ्कं कृष्णमृगं न्यसेत् ॥ २९ ॥

जटामकुटयुक्तं वा जटाभारं तु लम्बितम् ।
जटाबन्धशिरो वापि कर्तुरिच्छानुसारतः ॥ ३० ॥

सर्वाभरणसंयुक्तं रक्ताभं रक्तवाससम् ।
वामपार्श्वे तु वा देवी दक्षिणे वा विशेषतः ॥ ३१ ॥

सुस्थितं दक्षिणं पादं वामपादं तु कुञ्चितम् ।
उत्पलं दक्षिणे हस्ते वामहस्तं प्रलम्बितम् ॥ ३२ ॥

अथ नृत्तम् ।

नृत्तमप्रशतविधं तत्रादौ नव कथ्यते ।
भानुरुद्रदशांशं वा तुङ्गं नृत्तनतं भवेत् ॥ ३३ ॥

हिक्कासमं समुन्नम्य दक्षहस्ताङ्गुलाग्रकम् ।
तद्धस्ततलमध्ये वा मध्यमाङ्गुलिकाग्रके ॥ ३४ ॥
तन्मध्यपर्वगं वाथ वह्निपात्रगतं तु वा ।
पात्रं विनाथवा कुर्यादपरे डमरुं तथा ॥ ३५ ॥
दक्षिणे त्वन्यहस्ते स्यादभयं पूर्वमुक्तवत् ।
अभये कोष्ठमध्ये तु भुजङ्गवलयं न्यसेत् ॥ ३६ ॥
डोलायमानं तद् वामहस्तं कुर्याद् यथोचितम् ।
स्थिताङ्घ्रिजानोर्वामाङ्घ्रिजानुनीप्रं कलाङ्गुलम् ॥ ३७ ॥
सुविकीर्य जटाभारं नानानागविचित्रितम् ।
करोटिकाभिर्धुत्तूरकुसुमैश्च भुजङ्गमैः ॥ ३८ ॥
भूषितं मकुटं कुर्याद् दक्षिणेऽर्धेन्दुशेखरम् ।
सिन्दूरालंकृतोत्तंसमक्षमालावलम्बितम् ॥ ३९ ॥
भस्मोद्धूलितदिव्याङ्गं किञ्चित् प्रहसिताननम् ।
यज्ञोपवीतादियुतं व्याघ्रचर्माम्बरान्वितम् ॥ ४० ॥
दक्षिणं कुञ्चितं पादमपस्मारोपरि स्थितम् ।
चतुस्तालेन कर्तव्यमपस्मारं प्रमाणतः ॥ ४१ ॥
शम्भोः सव्यगतं तस्य शिरः कुर्यादधोमुखम् ।
पादौ विकीर्णहस्ताभ्यां व्यालीलीलामुदान्वितम् ॥ ४२ ॥
व्यालं वै वामहस्ते वा दक्षिणं मुद्रयान्वितम् ।
सस्यश्यामनिभं कुर्यादपस्मारं विशेषतः ॥ ४३ ॥
पद्मपीठमधः कुर्यात् कलाङ्गुलसमुच्छ्रयम् ।
तच्चतुर्गुणविस्तारं प्रभामण्डलसंयुतम् ॥ ४४ ॥

रविमण्डलवृत्तं तु प्रभामण्डलमत्र तु ।
तत्र वामेऽप्युमादेवीं प्रागुक्तविधिना कुरु ॥ ४५ ॥
एतत् स्यात् प्रथमं नृत्तं सर्वलोकहितावहम् ।
तदेव दक्षिणे पार्श्वे जटाग्रे जाह्नवी भवेत् ॥ ४६ ॥
शम्भोरर्चाङ्गुलेनैव षोडशाङ्गुलमुन्नता ।
स्त्रीमानोत्तुङ्गसम्पूर्णा हृदयेऽञ्जलिसंयुता ॥ ४७ ॥
एवं जाह्नविसंयुक्तं नृत्तं यत्तद् द्वितीयकम् ।
तदेव वामपादं तदपस्मारोपरि स्थितम् ॥ ४८ ॥
उद्धृतं दक्षिणं पादं तृतीयेऽन्य(द् य)थापुरम् ।
अनुकीर्णजटाभारं जटामकुटमण्डितम् ॥ ४९ ॥
जटामण्डलयुक्तं वा चतुर्थेऽन्यद् यथादिमम् ।
उष्णीषोर्ध्वैकमात्रान्तं सव्यपादं समुद्धरेत् ॥ ५० ॥
सवक्रं वामपादं तदपस्मारोपरि स्थितम् ।
उपभुजाष्टकसंयुक्तमेतत् पञ्चममुच्यते ॥ ५१ ॥
अभयं शूलपाशौ च डमरुं दक्षिणे करे ।
कपालं चाग्निपात्रं च तालि + ण्डकरोपमम् ॥ ५२ ॥
दोर्भिः षडङ्गसंयुक्तं वामे गौरीसमायुतम् ।
स्कन्दो भयात् कराभ्यां तु मातुः स्तनहृदोदरात् ॥ ५३ ॥
निपीड्य वा कराभ्यां तु वामभागोद्धृताञ्जलिम् ।
एवं गौरी निरीक्ष्येशं भीत्यातिस्नेहविस्मयात् ॥ ५४ ॥
अभयं डमरुं चैव वज्रं शूलं तथैव च ।
पाशं [1]टङ्कं तथा दण्डं नागं वै दक्षिणे करे ॥ ५५ ॥

१. 'घटं त' क. पाठः.

सजानुगकरं डोलं वामं गजकरोपमम् ।
अनलं मिथुनं चैव वलयं केतुमेव च ॥ ५६ ॥
घण्टां चैव कपालं च वामपार्श्वेऽष्टहस्तके ।
पादौ पञ्चमनृत्तस्य विधिवत् तद् विधीयते ॥ ५७ ॥
त्रिनेत्रं चाष्टहस्तं च सुविकीर्णजटान्वितम् ।
कुञ्चितं वामपादं तदपस्मारोपरि स्थितम् ॥ ५८ ॥
उद्धृतं दक्षिणं पादमङ्गुष्ठाब्जाग्रसीमकम् ।
अभयं शूलपाशौ च डमरुं दक्षिणे करे ॥ ५९ ॥
कपालं चाग्निपात्रं च तथा विस्मयहस्तकम् ।
गजहस्तोपमं हस्तं सव्यासव्यानुगं तु वा ॥ ६० ॥
वामे गौरीसमायुक्तं सप्तमं नृत्तमेव हि ।
तदेव षड्भुजोपेतमभयं डमरुं तथा ॥ ६१ ॥
शूलं दक्षिणपार्श्वे तु कपालं विस्मयं तथा ।
गजहस्तोपमं वामे पार्श्वे स्याद् यत तदष्टमम् ॥ ६२ ॥
पञ्चमस्य च षष्ठस्य नृत्तस्याक्षिद्वयं विदुः ।
तच्छेषाणां तु नृत्तानां नेत्रत्रयमुदाहृतम् ॥ ६३ ॥
चतुर्भुजं त्रिनेत्रं च जडामण्डलसंयुतम् ।
अभयं डमरुं सव्ये दक्षेऽग्निं गजहस्तवत् ॥ ६४ ॥
अपस्मारं विना पीठे वामाङ्घ्रिं कुञ्चितं स्थितम् ।
ततः पुरस्थिता पीठे सव्यपादकनिष्ठिका ॥ ६५ ॥
तत्पादं कुञ्चितं युक्त्या नवमं नृत्तमाचरेत् ।
गङ्गाधरमहं वक्ष्ये सर्वलोकसुखावहम् ॥ ६६ ॥

सुस्थितं दक्षिणं पादं वामपादं तु कुञ्चितम् ।
विश्लिष्यं स्याज्जटाबन्धं वामे त्वीषन्नताननम् ॥ ६७ ॥
दक्षिणे पूर्वहस्ते तु वरदं दक्षिणेन तु ।
देवीमुखाश्रितेनैव देवीमालिङ्ग्य कारयेत् ॥ ६८ ॥
दक्षिणापरहस्तेन उद्धृत्योष्णीषसीमकम् ।
स्पृशेज्जटागतां गङ्गां वामेन मृगमुद्धरेत् ॥ ६९ ॥
देवस्य वामपार्श्वे तु देवी विरहिताननाः ।
सुस्थितं वामपादं तु कुञ्चितं दक्षिणं भवेत् ॥ ७० ॥
प्रसार्य दक्षिणं हस्तं वामहस्तं तु पुष्पधृक् ।
सर्वाभरणसंयुक्तौ सर्वालङ्कारसंयुतौ ॥ ७१ ॥
भगीरथं दक्षिणे तु पार्श्वे मुनिवरान्वितम् ।
अथाष्टधा प्रवक्ष्यामि त्रिपुरान्तकमूर्तिनम् ॥ ७२ ॥
दक्षिणं सुस्थितं पादं वामपादं तु कुञ्चितम् ।
दक्षिणे पूर्वहस्तं तु नाभिसूत्रावसानके ॥ ७३ ॥
सिंहकर्णं तु तद्धस्तं बाणमध्यनिपीडितम् ।
वामहस्ते धनुर्धृत्वा कक्षान्तोर्ध्वं समुद्धृते ॥ ७४ ॥
कर्तरी परहस्तौ द्वौ टङ्ककृष्णमृगान्वितौ ।
टङ्कं तु दक्षिणे वामे कृष्णसारङ्गमेव हि[1] ॥ ७५ ॥
जटामकुटसंयुक्तं सर्वाभरणभूषितम् ।
प्रवालसदृशप्रख्यं वामे गौरीसमायुतम् ॥ ७६ ॥
इदं प्रथममाख्यातं द्वितीयं तु ततः परम् ।
तदेव वामपादं तदपस्मारोपरि स्थितम् ॥ ७७ ॥

---

१. 'मुच्यते ॥' क. ख. पाठः.

शेषं प्रथमतुल्यं हि तृतीयमथ वक्ष्यते ।
सुस्थितं वामपादं तु दक्षिणं कुञ्चितं भवेत् ॥ ७८ ॥
शेषं प्रागिव कर्तव्यं चतुर्थं तु ततः परम् ।
तदेव वामपादं तदपस्मारोपरि स्थितम् ॥ ७९ ॥
तदेव पूर्वहस्तौ द्वौ कटकौ हृदि सीमगौ ।
वामं दक्षिणकं हस्तं क्रमादूर्ध्वमधोमुखम् ॥ ८० ॥
बाणमूलधृतं सव्यमन्यं बाणाननोद्धृतम् ।
परे दक्षिणके टङ्कं धनुषं वामहस्तके ॥ ८१ ॥
तद्धस्ते तु मृगं वाथ वामे गौरीसमायुतम् ।
अपस्मारं विना कार्यं पञ्चमं समुदाहृतम् ॥ ८२ ॥
षष्ठमिष्टं चैव बाणं च पाशं खड्गं च दक्षिणे ।
धनुषं विस्मयं खेटं कुक्कुटं वामहस्तके ॥ ८३ ॥
यथाशोभं तथा कुर्याद् वामे गौरीसमायुतम् ।
सप्तमे दक्षिणे बाणं चक्रं शूलं ततः परम् ॥ ८४ ॥
टङ्कं वज्रं तथा वामे धनुषं सूचिविस्मये ।
+ + + + + खेटानि सर्वं पूर्ववदाचरेत् ॥ ८५ ॥
एवमेवाष्टमं कुर्याद् वसुधोपरि विन्यसेत् ।
दक्षिणाङ्घ्रेरतथा जानु वामपादतलं पुनः ॥ ८६ ॥
पुरःस्थितरथस्योर्ध्वे विन्यसेत्तु यथोचितम् ।
रथं तु मुकुलोपेतं मुकुलं कञ्जनावृतम्(?) ॥ ८७ ॥
मुकुलाभ्यन्तरे ब्रह्मा चतुर्वक्त्रश्चतुर्भुजः ।
तस्य दक्षिणहस्तौ द्वौ वेणुदण्डं कमण्डलुम् ॥ ८८ ॥

कुण्डिकां पद्मपाशं च वामहस्तद्वयोद्धृतम् ।
रथस्य मुकुलाधस्ताद् वृषभं श्वेतवर्णकम् ॥ ८९ ॥
अथ कल्याणमूर्तेस्तु लक्षणं सर्वमङ्गलम् ।
सुस्थितं वामपादं तु दक्षिणं कुञ्चितं भवेत् ॥ ९० ॥
दक्षिणः पूर्वहस्तस्तु गौरीदक्षिणहस्तधृक् ।
वरदं वामहस्तं तु परहस्तद्वये तथा ॥ ९१ ॥
दक्षिणे परशुं वामे तथा कृष्णमृगं परम् ।
जटामकुटसंयुक्तं सर्वाभरणसंयुतम् ॥ ९२ ॥
देहं प्रवालवर्णाभं देवेशस्य विशेषतः ।
तत्र श्यामनिभा देवी प्राग्वन्मानादिसंयुता ॥ ९३ ॥
उत्पलं वामहस्ते तु धृत्वा दक्षिणहस्तकम् ।
शम्भोर्हस्तेन संग्राह्य लज्जाभरसमन्वितम् ॥ ९४ ॥
पार्वतीमनुगा श्रीर्भूः सर्वाभरणभूषिता ।
हस्ताभ्यां संस्पृशेदेवं गौरीमपि करद्वये ॥ ९५ ॥
देवाग्रे कारयेत कुण्डे तत्र होमं प्रजापतिः ।
शम्भोर्वै स्तनसीमान्तं प्रजेशस्योदयं तथा ॥ ९६ ॥
चतुर्भुजं चतुर्वक्त्रं सर्वाभरणभूषितम् ।
प्रागग्रौ देविदेवेशौ देवी देवस्य दक्षिणे ॥ ९७ ॥
दक्षिणाभिमुखो विष्णुर्होमस्योत्तरदिक्स्थितः ।
शम्भोर्वै नाभिसीमान्तं श्रेष्ठं स्तनतलोन्नतम् ॥ ९८ ॥
कन्यसं तु तयोर्मध्ये पूर्ववन्नवधा स्मृतम् ।
श्यामवर्णसमायुक्तं शङ्खचक्रौ परे करे ॥ ९९ ॥

---

१. [illegible] घ. पाठः.

हिरण्यकरकेणापः पूर्वहस्तद्वयेन तु ।
संगृह्य वरदे हस्ते दद्यादुदकपूर्वकम् ॥ १०० ॥
अष्टलोकेशविद्येशाः सिद्धयक्षगणादयः ।
ऋषयश्चैव गन्धर्वा मातरश्चान्यदेवताः ॥ १०१ ॥
तत्तच्छक्तिसमोपेता हृदयाञ्जलिसंयुताः ।
संभ्रान्तमनसोपेताः संवीक्ष्य परितः स्थिताः ॥ १०२ ॥
अर्धनारीश्वरं वक्ष्ये सुस्थितं दक्षिणाङ्घ्रिकम् ।
कुञ्चितं वामपादं तु सर्वाभरणभूषितम् ॥ १०३ ॥
वामार्धं पार्वतीरूपं दक्षिणार्धं महेश्वरम् ।
अभयं परशुं दक्षहस्ते वामगतं भुजम् ॥ १०४ ॥
वृषस्य मूर्ध्नि विन्यस्तकोपरं चारु सुन्दरम् ।
पुष्पधृक्कटकं त्वन्यं चतुर्भुजमिदं स्मृतम् ॥ १०५ ॥
गजहामूर्तिनं वक्ष्ये सर्वाभरणभूषितम् ।
पाशं च गजचर्म च दक्षपार्श्वकरद्वये ॥ १०६ ॥
गजस्य शृङ्गं चर्म च वामपार्श्वे करद्वये ।
शूलं डमरुकं पाशं गजचर्म च दक्षिणे ॥ १०७ ॥
गजशृङ्गं कपालं च पाशं चर्म च वामतः ।
शम्भोर्वामाङ्घ्र्यधस्तात्तु गजमस्तकमेव हि ॥ १०८ ॥
मकुटस्योपरिष्टात्तु गजपुच्छं प्रकल्पयेत् ।
पार्श्वयोर्गळपादं तु यथायुक्त्या तु कारयेत् ॥ १०९ ॥
प्रभामण्डलवच्छेषं गजचर्म प्रकल्पयेत् ।
व्याघ्रचर्माम्बरोपेतं दुकूलवसनान्वितम् ॥ ११० ॥

सर्वाभरणसंयुक्तमतिरक्तप्रभान्वितम् ।
सुस्थितं वामपादं तु गजवीररय मस्तके ॥ १११ ॥
उद्धृतं दक्षिणं पादं कक्षसूत्रान्तमाचरेत् ।
गौरी स्कन्दं समुद्धृत्य शम्भोर्वामे भयान्विता ॥ ११२ ॥
अथवा शूलखड्गौ च गजदन्तं च चर्म च ।
दक्षिणे वामतः कुर्यात् कपालं खेटकं पुनः ॥ ११३ ॥
घण्टा च गजचर्म च करैरिति + वामतः ।
अथ पाशुपतं वक्ष्ये चन्द्रशेखरवत् स्थितम् ॥ ११४ ॥
चतुर्भुजं त्रिनेत्रं चाप्यूर्ध्वकेशं महातनुम् ।
दक्षिणेऽभयकं शूलं कपालं वरदं परे ॥ ११५ ॥
प्रवालसदृशप्रख्यं सर्वाभरणभूषितम् ।
कङ्कालमूर्तिनं वक्ष्ये पादयोः पादुकान्वितम् ॥ ११६ ॥
सुस्थितं वामपादं तु गमनापेक्षयापरम् ।
पादमीषत् समुद्धृत्य करोत्यधिकसुन्दरम् ॥ ११७ ॥
शुद्धश्वेतनिभं चारु सर्वाभरणभूषितम् ।
रत्नकञ्चुकबद्धाङ्गं जटामकुटमण्डितम् ॥ ११८ ॥
धुर्धूरपुष्पं नागं च वामे दक्षेन्दुशेखरम् ।
किञ्चित्प्रकाशितान्तःस्थदशनांशुविराजितम् ॥ ११९ ॥
दक्षिणं हरिणीवक्त्रे व्यापितं सिंहकर्णवत् ।
वामहस्ते च दण्डं तु कङ्कालास्थि च धारयेत् ॥ १२० ॥
तदस्थ्याकृति निर्मांसं द्विपादं द्विकरान्वितम् ।
कृष्णश्यामनिभाकारमपाने दण्डवेशनम् ॥ १२१ ॥

दण्डे कङ्कालपादौ द्वौ रज्जुना बन्धयेद् बुधः ।
केतुदण्डेन नेत्राभ्यां निष्क्रान्तं रुधिरं तु वा ॥ १२२ ॥
एवं कङ्कालदण्डं तु वामस्कन्धोपरि न्यसेत् ।
बलिपात्रधृतं भूतं वामेऽग्रे गमनान्वितम् ॥ १२३ ॥
दक्षिणेऽन्नं तु तत्पार्श्वे निधाय कृतजायया ।
किञ्चित् प्रकाशितं योनिसंयुतानतवाससा ॥ १२४ ॥
सम्भ्रान्तमनसोपेतं जायाः सर्वास्त्वनेकशः ।
व्याघ्रचर्माम्बरोपेतं दुकूलवसनान्वितम् ॥ १२५ ॥
दक्षिणे कटिपार्श्वे तु क्षुरिकां[1] चैव बन्धयेत् ।
क्षुरिका हैमसङ्काशा रूपबन्धसमन्विता[2] ॥ २२६ ॥
यक्षकिन्नरसिद्धाद्यैः सेवितं पूजितं नुतम् ।
चामरैरर्कचन्द्राभ्यां वीजितं रत्नभूषितैः ॥ १२७ ॥
अण्डानां सुस्थितार्थं तु सर्वलोकोपकारकम् ।
कङ्कालमोचनार्थं तु (स) स्यात् कङ्कालकाभिधः ॥१२८॥
अथ वक्ष्ये हरिहरं सुस्थितं समपादकम् ।
दक्षिणे त्वभयं वामे कटकं तूरुसंयुतम् ॥ १२९ ॥
परशुं दक्षिणे वामे शङ्खं तु परहस्तके ।
वाममर्द्धं हरिं कुर्याद्धरमन्यार्धमाचरेत् ॥ १३० ॥
क्रमात् श्यामं प्रवालाभमुभयोचितभूषणम् ।
दक्षिणेऽह्युग्रदृष्टिः स्याद् वामे शीतलनेत्रकम् ॥
किञ्चित् प्रकाशितोर्ध्वाक्षं दक्षिणार्धे ललाटके ।
शिरश्चक्रसमायुक्तं तस्य लक्षणमुच्यते ॥ १३२ ॥

---

१. 'काश्चैव', २. 'कू' क. पाठः.

रुद्राङ्गुलविशालं तु तद्वान्वंशैगतनम्(?)।
सुवृत्तं चक्रवृत्तं तु पद्माकृतिरथापि वा ॥ १३३ ॥

शिरश्चक्रविशालस्य सप्तभागैकभागिकम् ।
शिरश्चक्रस्य नालस्य विस्तारं परिकीर्तितम् ॥ १३४ ॥

चक्रतारत्रिभागैकं चक्रादा शिरसोऽन्तरम् ।
अग्राङ्गुलाटपट्टस्य शिरश्चक्रस्य नालकम् ॥ १३५ ॥

गुणाङ्गुले तु कै(ट्यो?ट्यू)र्ध्वे चक्रनालस्थितिर्भवेत् ।
चक्राद् गुणांशमालम्ब्य पुष्पमाला तु मध्यमात् ॥१३६॥

सर्वेषामपि देवानां देवीनामेवमाचरेत् ।
अथ भिक्षाटनं वक्ष्ये पादौ पादुकसंयुतौ ॥ १३७ ॥

सुस्थितं वामपादं तु गन्तुं दक्षिणमुद्धृतम् ।
सुविकीर्णजटाभारं जटामण्डलमेव वा ॥ १३८ ॥

विवृतबन्धजटं वाथ उपानद्रहितं तु वा ।
ललाटपट्टसंयुक्तं करोत्वर्धेन्दुशेखरम् ॥ १३९ ॥

सर्वाभरणसंयुक्तं कटिसूत्रविवर्जितम् ।
शुद्धश्वेतनिभं प्रोक्तं नानानागविभूषितम् ॥ १४० ॥

दक्षिणं पूर्वहस्तं तु मृगस्यास्यान्तिकं भवेत् ।
वामे तु पूर्वहस्तं तु सितवस्त्रोत्तरीयकम् ॥ १४१ ॥

श्वेतयज्ञोपवीतं तु कटौ नागेन वेष्टितम् ।
नीलकण्ठं त्रिपुण्ड्राढ्यं पद्मपीठोपरि स्थितम् ॥ १४२ ॥

---

१. 'शे', २. 'सं', ३. 'को' घ. पाठः.

कङ्कालमूर्तिवच्छेषं सर्वमत्र विशेषतः ।
चण्डेशानुग्रहं देवमुमास्कन्दवदाचरेत् ॥ १४३ ॥
वामे किञ्चिन्नतं त्वास्यं दक्षिणे त्वभयं विना ।
तद्धस्ते वरदं कार्यं वामे तु कटकं विना ॥ १४४ ॥
चण्डेशमूर्ध्नि विन्यस्य तद्धस्तं करुणान्वितम् ।
हृदयेऽञ्जलिसंयुक्तश्चण्डेशो भक्तिसंयुतः ॥ १४५ ॥
आसनाधः सुखासीनो भक्तिमान् स्वर्णसन्निभः ।
दक्षिणामूर्तिमीशानं कुर्याद् वटतरोरधः ॥ १४६ ॥
लम्बयेद् दक्षिणं पादं वामाङ्घ्रेर्नलकाग्रकम् ।
सममेवं विधातव्यं वामपादं तु शाययेत् ॥ १४७ ॥
दक्षिणे पूर्वहस्ते तु ज्ञानमुद्रां तु धारयेत् ।
दक्षिणे परहस्ते तु कारयेदक्षमालिकाम् ॥ १४८ ॥
वरदं वामहस्ते तु दण्डं वा परिकीर्तितम् ।
वामजानूपरिष्टात्तु दण्डश्चेत् कोर्परं न्यसेत् ॥ १४९ ॥
वामे परकरे तत्र वह्निं वा मृगमेव वा ।
विकीर्णमूर्धजं वापि जटामण्डलसंयुतम् ॥ १५० ॥
जटाभिर्बद्धमूर्तिं वा जटामकुटसंयुतम् ।
शुद्धस्फटिकसंकाशम् + + + + + + + + + ।
वामे धुर्धूरपुष्पं च नागश्च शिरसि स्मृतम् ॥ १५१ ॥
दक्षिणेन्दुकलायुक्तं सर्वाभरणभूषितम् ।
सितवस्त्रोत्तरीयं च सितयज्ञोपवीतिनम् ॥ १५२ ॥
व्याघ्रचर्माम्बरोपेतं त्रिनेत्रं क्लेशवर्जितम् ।
रुद्राक्षं कण्ठमालां च हन्मालां च विधापयेत् ॥ १५३ ॥

नारदो जमदग्निश्च वसिष्ठो दक्षपार्श्वके ।
भारद्वाजश्च शुनकस्त्वगस्त्यो वामपार्श्वके ॥ १५४ ॥
वन्दितैः किन्नराद्यैस्तु सेवितं भक्तिसंयुतैः ।
अपस्मारोपरिष्टात्तु लम्बपादतलं न्यसेत् ॥ १५५ ॥
धर्मव्याख्यानमूर्तिः स्यादेवं सर्वशुभावहम् ।
तदेव वामपादेनोत्कुटिकासनसंयुतम् ॥ १५६ ॥
पूर्वहस्तद्वये वीणां चेत् तद्वीणाधरं स्मृतम् ।
अथवा पूर्वहस्ताभ्यां ज्ञानमुद्राभयौ धृतौ ॥ १५७ ॥
वामं प्रसारितं वाथ वामजानूर्ध्वकोपरे ।
अपरे दक्षिणे त्वक्षमालामुत्पलमन्यतः ॥ १५८ ॥
ज्ञानमूर्तिरिति ख्यातं सर्वकारणकारणम् ।
अन्योन्याङ्घ्रितलं सम्यक् स्फिक्पिण्डाधः प्रकल्पयेत् ॥
ज्ञानमुद्रां हृदि स्थाने त्वभ्यन्तरमुखं करम् ।
वरदं वामहस्तं तु मेढ्रपीठोपरि न्यसेत् ॥ १६० ॥
अपरे चोत्पलं चाक्षमालां पूर्ववदाचरेत् ।
नासाग्रं स्वं समीक्ष्य स्वमार्जवं देहमाचरेत् ॥ १६१ ॥
सुविकीर्णजटायुक्तं योगमूर्तिरिति स्मृतम् ।
लम्बयेद् दक्षिणं पादं वाममुत्कुटिकासनम् ॥ १६२ ॥
सम्बध्य योगपट्टेन + देहोत्कुटिकाङ्घ्रिकौ ।
प्रसार्य वामहस्तं तु वामजानूपरि स्थितम् ॥ १६३ ॥
एतच्च योगमूर्तिः स्याच्छेषं पूर्ववदाचरेत् ।
ऊरुमूलं समाश्रित्य अन्योन्याबद्धपार्ष्णिकम् ॥ १६४ ॥

योगपट्टिकयोपेतं जङ्घामध्ये विशेषतः ।
प्रसार्य पूर्वहस्तौ द्वौ जानूपरि निधापितौ ॥ १६५ ॥
अपरे दक्षिणे चाक्षमालां वामे कमण्डलुम् ।
जटामण्डलसंयुक्तं करोट्यर्धेन्दुशेखरम् ॥ १६६ ॥
नीलग्रीवासमायुक्तं शङ्खकुन्देन्दुसन्निभम् ।
योगमूर्तिविशेषाख्यं शेषं प्रागिव कारयेत् ॥ १६७ ॥
कालारिं कारयेदीशं नताङ्गं वामतो मनाक् ।
सुस्थितं दक्षिणं पादं पद्मपीठेऽन्यमङ्घ्रिकम् ॥ १६८ ॥
कुञ्चितं किञ्चिदुद्धृत्य न्यसेत् कालस्य वक्षसि ।
सदंष्ट्रास्यं त्रिनेत्रं च जटामकुटमण्डितम् ॥ १६९ ॥
चतुर्हस्तयुतं वाथ वसुहस्तसमायुतम् ।
दक्षिणे पूर्वहस्ते तु शूलं कर्णान्तमुद्धृतम् ॥ १७० ॥
दक्षिणे परहस्ते तु परशुं वरदं तु वा ।
वामे पूर्वकरं नाभिसूत्रान्ते सूचिमाचरेत् ॥ १७१ ॥
वामे तु परहस्ते तु विस्मयं परिकल्पयेत् ।
उष्णीषान्तं समुद्धृत्य विस्मयेऽनामिकाग्रकम् ॥ १७२ ॥
शूलं परशुवज्रौ च खड्गं दक्षिणहस्तके ।
विस्मयं खेटकं पाशं सूचिहस्तं च वामके ॥ १७३ ॥
शुद्धविद्रुमसङ्काशं सर्वाभरणसंयुतम् ।
अधस्तात् कारयेत् कालं द्विभुजं पाशहस्तकम् ॥ १७४ ॥
करण्डमकुटोपेतं सदंष्ट्रं विकृताननम् ।
असृग्धारासमायुक्तं महाभयसमन्वितम् ॥ १७५ ॥

---

१. 'ण्ठा' क. ग. पाठः. २. 'यसस' घ. पाठः.

हृदयाञ्जलिसंयुक्तं विकीर्णाङ्घ्रिद्वयं पुनः ।
अथ लिङ्गोद्भवं वक्ष्ये लिङ्गाकारस्य मध्यतः ॥ १७६ ॥
नलकात् पादस्य तलं लिङ्गे शूलसमायुतम् ।
चन्द्रशेखरवत् सर्वं कारयेत् सुन्दराकृतिम् ॥ १७७ ॥
ब्रह्मा तु हंसरूपेण ऊर्ध्वगो वामपार्श्वतः ।
विष्णुर्वराहरूपेण दक्षिणांशे त्वधोगतः ॥ १७८ ॥
हृदयेऽञ्जलिसंयुक्तौ रक्तश्यामनिभौ परम् ।
वीक्षमाणौ परं लिङ्गमिदं लिङ्गोद्भवं स्मृतम् ॥ १७९ ॥

अथ श्रीपञ्चाक्षरी —

बिभ्रद् दोर्भिः कुठारं मृगमभयवरौ सुप्रसन्नो महेशः
सर्वालङ्कारदीप्तः सरसिजनिलयो व्याघ्रचर्मोत्तरीयः ।
ध्येयो मुक्तापरागामृतरसकलिताद्रिप्रभः पञ्चवक्त्र-
स्त्र्यक्षः कोटीरकोटीघटिततुहिनरोचिष्कलातुङ्गमौलिः
॥ १८० ॥

[1]ईशानाह्वयमूर्ध्वदिग्वरमुखं वन्दामहे निर्मलं
पूर्वं तत्पुरुषं च कुङ्कुमनिभं याम्यं त्वघोरं हरम् ।
वामं मेरुजपाप्रसूनसदृशं यद्वामदेवं विदुः
सद्योजातमहाप्र(यं ? भं) च परमं गोक्षीरफेनप्रभम् ॥ १८१ ॥

अथ रुद्रः —

वन्दे बन्धुरहावभावललितं रक्तांशुकालेपनं
स्मेरास्यं चिबुकाग्रनासमरुणं माल्योल्लसत्कुन्तलम् ।

१. पद्यमेतद् घ-मातृकायां न दृश्यते ।

नानाविभ्रममीप्सितप्रणयिनं भावेन पाशाङ्कुशौ
खट्वाङ्गं च कपालमित्यनुगुणैर्दोर्भिर्दधानं हरम् ॥ १८२ ॥

अथ प्रासादः —

देवं नमामि शिरसा परशुत्रिशूल-
विद्याकपालपरिमण्डितबाहुदण्डम् ।
व्याघ्राजिनाम्बरधरं भसितावदात-
वेषोज्ज्वलं धृतजटाघटितेन्दुबिम्बम् ॥ १८३ ॥

तद्भेदः —

वन्दे त्रिशूलस्फटिकाक्षमाला-
विद्याप्रसादोद्यतबाहुमीशम् ।
सितोपवीतं भसितावदातं
कोटीरचूडोज्ज्वलचन्द्ररेखम् ॥ १८४ ॥

मृत्युञ्जयः —

शुभ्राम्भोजपुटेन्दुमण्डलगतं त्र्यक्षं त्रिशूलत्रयी-
टङ्काक्षाहितसूत्रसंयुतचतुर्बाहुं हिमाद्रिप्रभम् ।
मुद्रापञ्चकभूषितं त्रिनयनं ना(नो ? गो)त्तरीयं शिवं
वन्दे व्याघ्रवराजिनाम्बरधरं कोटीरचन्द्रोज्ज्वलम् ॥ १८५ ॥

शूलाहीटङ्कघण्टासिसृणिकुलिशपाशाग्न्यभातीर्दधानं
दोर्भिः शीतांशुरेखाप्रतिघटितजटाभारमौलिं त्रिनेत्रम् ।
नानाकल्पाभिरामापघनमभिमतार्थप्रदं सुप्रसन्नं
पद्मस्थं पञ्चवक्त्रं स्फटिकमणिनिभं पार्वतीशं नमामि
[॥ १८६ ॥

शैवमष्टाक्षरम् —

वामाङ्कन्यस्तवामेतरकरकमलायास्तथा वामबाहु-
न्यस्तारक्तोत्पलायाः स्तनविधृतलसद्वामबाहुः प्रियायाः ।

सर्वाकल्पाभिरामो धृतपरशुमृगेषुः करैः काञ्चनाभो
ध्येयः पद्मासनस्थः स्मरललिततनुः सम्पदे पार्वतीशः
[॥ १८७ ॥

दक्षिणामूर्तिः[1]—

मुद्रां भद्रार्थदात्रीं सपरशुहरिणां बाहुभिर्बाहुमेकं
जान्वासक्तं दधानो भुजगवरसमाबद्धकक्ष्यो वटाधः ।
आसीनश्चन्द्रखण्डप्रतिघटितजटः क्षीरगौरस्त्रिनेत्रो
दद्यादाद्यैः शुकाद्यैर्मुनिभिरभिवृतो भावशुद्धिं भवो वः
[॥ १८८ ॥

अघोरः —

कालाभ्राभः कराग्रैः परशुडमरुकौ खड्गखेटौ च बाणे-
ष्वासौ शूलं कपालं दधदतिभयदो भीषणास्यस्त्रिनेत्रः ।
रक्ताकाराम्बराहिप्रवरघटितगात्रोऽरिनागग्रहादीन्
खादन्निष्टार्थदायी भवदनभिमतच्छित्तये स्यादघोरः
[॥ १८९ ॥

मृत्युञ्जयभेदः —

अथवामलकमलपुटान्तरितं शिशुवेषभूषणं रुद्रम् ।
ध्यात्वा जपाद् यथावत् कृतकल्प्या मृत्युनाशनं दृष्टम्
[॥ १९० ॥

चिन्तामणिः —

अहिशशधरगङ्गाबद्धतुङ्गाप्तमौलि-
स्त्रिदशगणनताङ्घ्रि + + + स्त्रीविलासः ।
भुजगपरशुशूलान् खड्गवह्नी कपालं
शरमपि धनुषं[2] + विभ्रदव्याच्चिरं वः ॥ १९१ ॥

---

१. 'र्ति त्र्यनुष्टुप् । मु' क. ग. पाठः. २. 'धरिशो पि' क. पाठः.

अथवा —

हावभावललितार्धनारिकं भीषणार्धमथ वा महेश्वरम् ।
पाशसोत्पलकपालशूलिनं चिन्तयेज्जपविधौ विभूतये
[॥ १९२ ॥

अनुष्टुप् —

अच्छस्वच्छारविन्दस्थितिरुभयकरान्तैःस्थितं पूर्णकुम्भं
दोर्भ्यां वेदाक्षमाले निजकरकमलाभ्यां घटौ नित्यपूर्णौ ।
द्वाभ्यां तौ च स्रवन्तौ शिरसि शशिकलाबन्धुरे प्लावयन्तौ
देहं देवो दधानः प्रदिशतु विशदाकल्पजालः श्रियं वः
[॥ १९३ ॥

संवादम् —

धवलनलिनराजच्चन्द्रमध्ये निषण्णं
करविलसितपाशं साङ्कुशं साभयं च ।
सवरदममलेन्दुक्षीरगौरं त्रिनेत्रं
प्रणमत सुरवक्त्रं मङ्क्षु संवादयन्तम् ॥ १९४ ॥

शक्तिपञ्चाक्षरी —

मूले कल्पद्रुमस्य द्रुतकनकनिभं चारुपद्मासनस्थं
वामाङ्कारूढगौरीनिबिडकुचभराभोगगाढोपगूढम् ।
सर्वालङ्कारकान्तं वरपरशुमृगाभीष्टबाहुं त्रिनेत्रं
वन्दे बालेन्दुमौलिं गुहगजवदनाभ्यामुपाश्लिष्टपार्श्वम्
[॥ १९५ ॥

अथवा —

वन्दे हरं वरदशूलकपालहस्तं
साभीतिमद्रिसुतयोज्ज्वलदेहकान्तिम् ।

---

१., ५. 'अथवेत्यवतारितं पद्यं घ-मातृकायां न दृश्यते. २. 'क', ३. 'चूडं गु', ४. 'गजवदनगुहाभ्या' घ. पाठः.

वामोरुपीठगतया निजवामहस्त-
न्यस्तारुणोत्पलयुजा परिरब्धदेहम् ॥ १९६ ॥

कालारिः —

वामेनोद्यत्तरुणहरिणं पाणिना वामभासा
बिभ्रद् बभ्रुद्युतिरपि परेणाकठोरं कुठारम् ।
वक्षोदेशे त्रिशिखशिखरेणात्र कृत्वान्तकान्तं
तिष्ठन्नीशो जयति शशिनाबद्धकोटीरभारः ॥ १९७ ॥

किन्नरशिवः —

श्मशानस्थो मौनी बहुविधपिशाचैः परिवृतः
कपर्दी कौपीनी सुसितभसितोद्धूलिततनुः ।
त्रिशूलाग्रे कृत्वा निखिलनृपयक्ष्माह्वयहरिं
कपालाग्नौ जुह्वद् दहतु दुरितं किन्नरशिवः ॥ १९८ ॥

रक्षोघ्नः —

त्रिशूलं परशुं चैव कपालं डमरुं तथा ।
बिभ्राणमुग्रवपुषं त्रिनेत्रं चन्द्रशेखरम् ॥ १९९ ॥
दंष्ट्राकरालनिनदद्भ्रुकुटीकुटिलाननम् ।
बडवामुखाग्निसदृशं दहन्तं भुवनत्रयम् ॥ २०० ॥
भूतप्रेतपिशाचादीन् भक्षयन्तं महाबलम् ।
एवं ध्यात्वा जपेन्नित्यं रक्षोहाग्निं समाहितः ॥ २०१ ॥

अथ सद्योजातादिमूर्तयः —

सद्यो वेदाक्षमालाभयवरदकरः कुन्दमन्दारगौरो
वामः काश्मीरवर्णोऽभयवरदपरश्वक्षमालो विलासी ।

---

१. 'व' घ. पाठः.

अक्षस्रग्वेदपाशाङ्कुशडमरुकखट्वाङ्गशूलान् कपालं
बिभ्राणो भीमदंष्ट्रोऽञ्जनरुचिरतनुर्भीतिदश्चाप्यघोरः
[॥ २०२ ॥
विद्युद्वर्णोऽथ वेदाभयवरदकुठारान् दधत् पूरुषाख्यः
प्रोक्ताः सर्वे त्रिनेत्रा विधृतमुखचतुष्काश्चतुर्बाहवश्च ।
मुक्तागौरोऽभयेष्टाधिककरकमलोऽघोरतः पञ्चवक्त्र-
स्त्वीशो ध्येयोऽम्बुजन्मोद्भवमुररिपुरुद्रेश्वराः स्युः शि-
[ वान्ताः ॥ २०३ ॥

इति शिल्परत्ने उत्तरभागे ध्याने शैवप्रकरणं नाम
द्वाविंशोऽध्यायः ॥

---

## अथ त्रयोविंशोऽध्यायः ।

### अथ वैष्णवप्रकरणम् ।

अष्टाक्षरी —

अर्कौघाभं किरीटान्वितमकरलसत्कुण्डलं दीप्तिराज-
त्केयूरं कौस्तुभाढ्यं शबलरुचिरहारं चारुपीताम्बरं च (?)।
नानारत्नांशुभिन्नाभरणशतैयुजं श्रीधराश्लिष्टपार्श्वं
वन्दे दोःसक्तचक्राम्बुरुहदरगदं विश्ववन्द्यं मुकुन्दम् ॥ १॥

गायत्री —

ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती
नारायणः सरसिजासनसन्निविष्टः ।
केयूरवान् मकरकुण्डलवान् किरीटी
हारी हिरण्मयवपुर्धृतशङ्खचक्रः ॥ २ ॥

---

१. 'स्पि', २. 'र', ३. 'चक्रव' घ. पाठः.

धृतशङ्ख + चक्रवराब्जगदाकुलदोःपरिघं सितपद्मगतम् ।
वलयाङ्गदहारकिरीटधरं नवकुन्दनिभं प्रणमामि सदा ॥ ३ ॥

श्रीकराष्टाक्षरम् —

दुग्धाब्धिद्वीपवर्यप्रविलसितसुरोद्यानकल्पद्रुमाधो
भद्राम्भोजन्मपीठोपरिगतविनतानन्दनस्कन्धसंस्थः ।
दोर्भिर्बिभ्रद् रथाङ्गं वरदमथ गदापङ्कजे स्वर्णवर्णे
भास्वन्मौलिर्विचित्राभरणपरिगतः स्याच्छ्रयै वो मुकुन्दः
[ ॥ ४ ॥

सुदर्शनम् —

अव्याद् भास्करसत्प्रभाभिरखिला भाभिर्दिशो भासयन्
भीमाक्षः क्षरदट्टहासविलसद्दंष्ट्राप्रदीप्ताननः ।
दोर्भिश्चक्रदरौ गदाब्जमुसलप्रासांश्च पाशाङ्कुशौ
बिभ्रत् पिङ्गशिरोरुहोऽथ भवतश्चक्राभिधानो हरिः ॥ ५ ॥

अथ निग्रहचक्रं —

शङ्खं चक्रं च चापं परशुमसिमिषुं शूलपाशाङ्कुशाग्नीन्
बिभ्राणं खड्गखेटं हलमुसलगदाकुन्तमत्युग्रदंष्ट्रम् ।
ज्वालाकेशं त्रिनेत्रं कनकमयलसद्गात्रमत्युग्ररूपं
वन्दे षट्कोणसंस्थं सकलरिपुजनप्राणसंहारचक्रम् ॥ ६ ॥

अथ नृसिंहः —

जान्वोरासक्ततीक्ष्णस्वनखरुचिलसद्बाहुसंस्पृष्टकेश-
श्चक्रं शङ्खं च दोर्भ्यां दधदनलसमज्योतिषा भग्नदैत्यः ।
ज्वालामालापरीतो रविशशिदहनत्रीक्षणो दीप्तजिह्वो
दंष्ट्रोग्रं धूतकेशं वदनमपि वहन् पातु वो नारसिंहः ॥ ७ ॥

अथ विदरणनृसिंहः[1] —

उद्यद्भास्वत्सहस्रप्रभमशनिनिभं त्रीक्षणेक्षा वमन्तं (?)
वह्नीनह्नाय विद्युत्ततिविततसटाभीषणं भूषणैश्च ।
दीप्तैरादीप्तदेहं स्वनखरुचिलसद्बाहुदण्डैरनेकैः
संभिन्नं भिन्नदैत्येश्वरमतनुतनुं नारसिंहं नमामि ॥ ८ ॥

तद्भेदः षडक्षरी —

अव्यान्निर्व्याजरौद्राकृतिरतिविकृतास्योल्लसत्तीक्ष्णदंष्ट्र-
श्चक्रं शङ्खं च पाशाङ्कुशकुलिशगदादारणाख्या दधानः ।
रक्ताकारश्च नाभेरध उपरि सितो दिव्यभूषाविशेषो
देवोऽर्काग्नीन्दुनेत्रो निखिलसुखकरो नारसिंहश्चिरं वः[2] ॥ ९ ॥

अथ वराहः —

जान्वोरापादमुद्यत्कनकमिव हिमप्रख्यमाजानु नाभेः
कण्ठादानाभि वह्निप्रभमथ शिरसश्चागलं नीलवर्णम् ।
मौ(लिं व्यो ? लेव्यों)माभमाकं करलसदरिशङ्खासिखेटं ग-
[दाख्यां
शक्तीष्टाभीतियुक्तं प्रणमत वसुधोल्लासिदंष्ट्रं वराहम् ॥ १० ॥

तद्भेदः —

सजलाम्बुवाहनिभमुद्यतदोःपरिघं धराधरसमाननुम् ।
सितदंष्ट्रिकाधृतभुवं त्वथवा प्रविचिन्तयेत् सपदि कोल-
[ममुम् ॥ ११ ॥

चतुरक्षरी —

श्रीमत्कल्पद्रुमोल्लासितकमललसत्कर्णिकामध्यसंस्थ-
स्तच्छाखालम्बिपद्मोदरविगलदसंख्यातरत्नाभिषिक्तः ।

---

१. 'नरसिं' क. ग. पाठः. २. 'वः ॥ व' घ. पाठः.

हैमीभिः स्वप्रभाभिस्त्रिभुवनमखिलं भासयन् वासुदेवः
पायाद् वः पायसाशी नवनवनवनीतामृताशी वशी सः
[॥ १२ ॥

धन्वन्तरिः —

क्षीराब्धेर्मथ्यमानादमृतमभिलषद्बुद्धिभिर्वैबुधौघै-
रुत्तीर्णः पीतवासा घनरुचिररुचिर्विश्वसन्त्राणहेतुः ।
बिभ्रद् दोर्भिश्चतुर्भिर्जलभवमभयं चामृतं शस्त्रयन्त्रं
योऽसौ धन्वन्तरिर्नः सकलगदभयादादिदेवः सदाव्यात्
[॥ १३ ॥

तद्भेदः —

अरिसदरजलूकारत्नपीयूषकुम्भ-
प्रतिघटितकरान्तः कान्तपीताम्बराढ्यः ।
तनुवसनविराजन्मौलिरारोग्यदायी
शतमखमणिवर्णः पातु धन्वन्तरिर्नः ॥ १४ ॥

हयग्रीवः —

क्षीरोदन्वदुदारवीचिवलयैरत्यन्तशीतीकृते
हैमाश्वत्थसुरद्रुमे मणिमये सिंहासने प्रोज्ज्वले ।
आसीनं हयवक्त्रमिन्दुवपुषं व्याख्यानमुद्रान्वितं
शिष्येभ्यः प्रतिपादयन्तमनिशं शास्त्राणि विद्यामहम्[1]
[॥ १५ ॥

अथ कार्तवीर्यः—

कैलासाद्रिसमप्रभं[2] द्विपपतेः पृष्ठस्थितं भीषणं
नागस्यन्दनवाजिपत्तिनिकरैरापूर्णसैन्यावृतम् ।

१. 'हम् । का' घ. पाठः. २. 'भ' क. ग. पाठः.

दोर्दण्डाम्बुजबद्धचापशरपाशाद्यङ्कुशाख्यं परं
ध्यायेद् वा तमरातिवर्गहननायातीव सम्पत्तये ॥ १६ ॥

श्रीपञ्चामृतम् —

क्षीरोदन्वत्प्रदेशे शुचिमणिविलसत्सैकते मौक्तिकानां
मालाक्लृप्तासनस्थः स्फटिकमाणिनिभो[1] मौक्तिकैर्मण्डि-
शुभ्रैरभ्रैरदभ्रैरुपरिविरचितैर्मुक्तपीयूषवर्षैः[2]- [ताङ्गः ।
रानन्दी नः[3] पुनीयादरिनलिनगदाशङ्खपाणिर्मुकुन्दः ॥ १७ ॥

सन्तानगोपालम् —

अव्याद् व्याकोचनीलाम्बुजरुचिररुणाम्भोजनेत्रोऽम्बुजस्थो
बालो जङ्घाकरीषस्थलकलितरणत्किङ्किणीको मुकुन्दः ।
दोर्भ्यां हैयङ्गवीनं दधदतिविमलं पायसं विश्ववन्द्यो
++गोपीपरीतो रुरुनखविलसत्कण्ठभूषश्चिरं वः ॥ १८ ॥

तद्भेदः —

चक्रशङ्खधरं कृष्णं रथस्थं च चतुर्भुजम् ।
सर्वाभरणसन्दीप्तं पीतवाससमच्युतम् ॥ १९ ॥
द्विजवर्यार्चनयुतं विष्णुतेजोपबृंहितम् ।
समर्पयन्तं विप्राय नष्टपुत्रान् सबालकान् ॥ २० ॥

आवहन्ती —

अरुणनलिनसंस्थं काञ्चनोद्दीप्तवर्णं
करधृतदरचक्रं पीतकौशेयवस्त्रम् ।
कनककलशरक्तोत्पलासक्तपाणिं (?)
श्रियमपरकराभ्यां बिभ्रतं नौमि विष्णुम् ॥ २१ ॥

---

१. 'निभैर्मौक्ति' क. ग. पाठः. २. 'परिचि', ३. 'वः' घ. पाठः.

पुरुषसूक्तम् —

गोक्षीराभं पुण्डरीकासनस्थं
चक्राब्जाभ्यां शङ्खकौमोदकीभ्याम् ।
श्रीभूमिभ्यामर्चितं योगिचिन्त्यं
ध्यात्वा देवं[1] पूजयेत् पौरुषाख्यम् ॥ २२ ॥

लक्ष्मीनारायणम् —

हस्ते बिभ्रत् सरसिजगदाशङ्खचक्राणि विद्यां
पद्मादर्शौ कनककलशं मेघविद्युद्विलासम् ।
वामोत्तुङ्गस्तनमविरलाकल्पमाश्लेषलोभा-
देकीभूतं वपुरवतु वः पुण्डरीकाक्षलक्ष्म्योः ॥ २३ ॥

द्वाविंशत्यक्षरी —

वेणुं वेदमयं क्वणन् प्रदिशतु श्रेयांसि भूयांसि मे
पाणिद्वन्द्वसरोजयोर्जपपटीं वेदं दधानो हरिः ।
वाणीवेषविचित्रवेषविलसद्देहस्त्वया सेव्यता-
मज्ञानाख्यतमोविदारणपटुः सर्वार्थदः सन्ततम् ॥२४॥

विंशत्यक्षरी —

श्रीमत्यां द्वारवत्यां नवकनकमये भूतले रत्ननद्यो-
र्मध्ये कल्पद्रुमाधो विलसदमलसन्मण्डपे[2] सन्निविष्टम् ।
चक्रं शङ्खं च वेणुं नलिनमपि गदां योगमुद्रां दधानं
वन्दे संसिच्यमानं[3] मणिमयकलशैर्वल्लभाभिर्मुकुन्दम्
[॥ २५ ॥

तद्भेदः —

मध्ये रत्नस्रवन्त्योर्मणिमयरचिते मण्डपे कल्पमूले
भास्वद्रत्नासनाम्भोरुहकुहरगतं सद्गदाब्जारिशङ्खम् ।

---

१. 'दिव्यं पू' क. ग. पाठः. २. विधमणिल', ३. 'चिन्त्यमा' ब. पाठः.

गोविन्दं स्वर्णवर्णं मणिकलशमुखस्पर्शवामाङ्घ्रिमीडे
रुक्मिण्याद्यष्टदेवीकरमणिकलशौ रत्नधाराभिषिक्तम्॥२६॥

अष्टादशाक्षरी —

अव्यान्मीलत्कलायद्युतिरहिरिपुपिञ्छोल्लसत्केशपाशो
गोपीनेत्रोत्पलाराधितललितवपुर्गोपगो(वि ? वृ)न्दवीतः ।
श्रीमद्वक्त्रारविन्दप्रतिहसितशशाङ्काकृतिः पीतवासा
देवोऽसौ वेणुवाद्यक्षपितजनधृतिर्देवकीनन्दनो वः॥ २७॥

तद्भेदः —

अंसालम्बितवामकुण्डलयुतं मन्दोन्नतभ्रूलेतं[2]
किञ्चित्कुञ्चितकोमलाधरपुटं साचिप्रचारेक्षणम् ।
आलोलाङ्गुलिपल्लवं मुरलिकामापूरयन्तं मुदा
मूले कल्पतरोस्त्रिभङ्गिललितं[3] जाने जगन्मोहनम्॥ २८॥

श्रीरामषडक्षरं —

कालाम्भोधरकान्तिकान्तमनिशं वीरासनाध्यासितं
मुद्रां ज्ञानमयीं दधानमपरं हस्ताम्बुजं जानुनि ।
सीतां पार्श्वगतां सरोरुहकरां विद्युन्निभां राघवं
पश्यन्तं मकुटाङ्गदादिविविधाकल्पोज्ज्वलाङ्गं भजे॥ २९॥

रामध्यानभेदः —

वैदेहीसहितं सुरद्रुमतले हैमे महामण्डपे
मध्येपुष्पकमासने मणिमये वीरासने सुस्थितम् ।

---

१. 'जालो गो' क. ग. पाठः. २. 'तलं कि', ३. 'ङ्ग' घ. पाठः.

अग्रे वाचयति प्रभञ्जनसुते तत्त्वं मुनिभ्यः परं
व्याख्यान्त भरतादिभिः परिवृतं रामं भजे श्यामलम्
[॥ ३० ॥

अथवा —

रामं रत्नकिरीटकुण्डलधरं केयूरहारान्वितं
सीतालङ्कृतवामभागममलं सिंहासनस्थं प्रभुम् ।
सुग्रीवादिसमस्तवानरगणैः संसेव्यमानं सदा
विश्वामित्रपराशरादिमुनिभिः संस्तूयमानं भजे ॥ ३१ ॥

वामे भूमिसुता पुरस्तु हनुमान् पश्चात् सुमित्रासुतः
शत्रुघ्नो भरतश्च पार्श्वदलयोरग्न्यादिकोणेष्वथ ।
सुग्रीवश्च विभीषणश्च युवराट् तारासुतो जाम्बवान्
मध्ये नीलसरोजकोमलरुचिं रामं भजे श्यामलम् ॥ ३२ ॥

वैदेहीमधिरुह्य जातपुलकां वामाङ्कमासेविनीं
वामेन स्तनचूचुकं पुलकिना वामं करेणामृशन् ।
तत्त्वं दक्षिणपाणिना कलितया चिन्मुद्रया शोभयन्
रामो मारुतिसेवितो लसतु मे साम्राज्यसिंहासने ॥ ३३ ॥

गोपालकभेदः —

उदयगिरितटान्ते रुक्मिणीसत्यभामा-
सहितमखिलगोपीवल्लभं देवदेवम् ।
अभयवरदहस्तं पायसादं प्रसन्नं
विबुधगणनिषेव्यं नन्दसूनुं नमामि ॥ ३४ ॥

श्रीकराष्टाक्षरभेदः —

श्रीवत्साङ्कमुदारहारकिरणज्योत्स्नावितानोज्ज्वलं
पीतं शङ्खगदाब्जचक्रविलसद्बाहुं पिशङ्गांशुकम् ।

भास्वत्कौस्तुभमत्स्यकुण्डलविभासंभिन्नमुक्ताङ्गदं
तं वन्दे शिरसा किरीटविलसन्मन्दारमालं हरिम्॥ ३५॥

धन्वन्तरिभेदः —

देवं रविबिम्बस्थं मनोहराङ्गं प्रसन्नमुखकमलम्।
अमृतघटं सजलूकं करयुगलेनादधानममलमतिम्॥ ३६॥

अष्टादशाक्षरीभेदः —

बालं नीलाम्बुदाभं नवमणिविलसत्किङ्किणीजातनद्ध-
श्रोणीजङ्घान्तयुग्मं विपुलरुरुनखप्रोल्लसत्कण्ठभूषम्।
फुल्लाम्भोजाभवक्त्रं हतशकटपतत्पूतनाद्यं प्रसन्नं
गोविन्दं वन्दितेन्द्राद्यमरवरमसुं पूजयेद् वासरादौ॥ ३७॥

अपिच —

वन्द्यं देवैर्मुकुन्दं विकसितकुरुविन्दाभमिन्दीवराक्षं
गोगोपीबृन्दवीतं जितरिपुनिवहं कुन्दमन्दारहासम्।
नीलग्रीवाग्रपिञ्छाकलनसुविलसत्कुन्तलं भानुमन्तं
देवं पीताम्बराढ्यं (जय? यज)तु च दिनतो मध्यमेऽह्नो
[रमायै॥ ३८॥

अपिच —

विक्रान्त्या ध्वस्तवैरिव्रजमजितमपा(न्ता? स्ता)वनीभारमार्यै-
रावीतं नारदाद्यैर्मुनिभिरनुदिनं तत्त्वनिर्णीतिहेतोः।
सायाह्ने निर्मलं तं निरुपममजरं पूजयेन्नीलभासं
मन्त्री विश्वोदयस्थित्यपहरणपरं मुक्तिदं वासुदेवम्॥ ३९॥

अथ वा(म? सु)देवादि(पञ्चकं? चतुष्कं) क्रमेण —

वासुदेवसङ्कर्षणौ प्रद्युम्नश्चानिरुद्धकः।
स्फटिकस्वर्णदूर्वेन्द्रनीलाभा वर्णतो[1] मताः॥ ४०॥

---

१. 'तः क्रमात्॥' क. ग. पाठः.

चतुर्भुजाश्चक्रशङ्खगदापङ्कजधारिणः ।
किरीटकेयूरिणश्च पीताम्बरधरा अपि ॥ ४१ ॥

अथ केशवाद्याः —

सुवर्णगोक्षीरजपाशिलालपीतेन्द्रनीलारुणकैरवाभाः ।
काश्मीरमेघाञ्जनरोचिषश्च क्रमेण वर्णैरपि केशवाद्याः
[॥ ४२ ॥

इतीरिताश्चापकिरीटहारकेयूरपीताम्बरकादितुल्यम् ।
सचक्रशङ्खाः सगदाम्बुजाश्च संपूजनीयाः स्तवनैः क्रमेण
[॥ ४३ ॥

बराहभेदः —

हेमप्रख्यं पार्थिवे मण्डले वा
नीहाराभं नीरजेऽग्नेस्तदाभम् ।
वायोः कृष्णं द्युप्रभं वा दिविस्थं
क्रोडव्यास्यं सत्यसंस्थं यजेद्वा ॥ ४४ ॥

विश्वरूपं —

विष्णुं भास्वत्किरीटं मणिमकुटकटीसूत्रकेयूरहार-
ग्रैवेयोर्म्यादिमुख्याभरणमणिगणोल्लासदिव्याङ्गरागम् ।
विश्वाकाशावकाशप्रविततमयुतादित्यनीकाशमुद्यद्-
बाह्वग्र्यग्र्यनानायुधनिकरधरं विश्वरूपं नमामि ॥४५॥

अथायुधानि —

चक्रं च चक्राङ्किकिरीटमौलिं
सचक्रशङ्खं सगदं सशार्ङ्गम् ।
रक्ताम्बरं रक्ततनुं करालं
दंष्ट्राननं प्राग्दलकेऽर्चयेत ॥ ४६ ॥

पूज्या गदा गदाङ्कितमौलिः सगदा सचक्रशङ्खधनुः ।
पीताम्बरानुलेपा पीता क्रुद्धा च याम्यसंस्थदले ॥ ४७ ॥

श्यामं शार्ङ्गाङ्कितकं शार्ङ्गं शार्ङ्गारिदरगदाहस्तम् ।
श्यामांशुकानुलेपनमाल्यादिं वारुणे यजेत् पत्रे ॥ ४८ ॥

खड्गं सखड्गशिरसं खड्गारिगदाधनुष्करं धूम्रम् ।
विकृताम्बरानुलेपस्रजं समभ्यर्चयेद्वुदक्पत्रे ॥ ४९ ॥

शङ्खं सशङ्खशिरसं शङ्खारिगदाधनुष्करं सुसितम् ।
सितवसनमाल्यभूषं यजेन्महानादमग्निसंस्थदले ॥ ५० ॥

शङ्खोक्तचिह्नभूषान् स्वास्त्रादिकधरचतुर्भुजानपरान् ।
हलमुसलशूलसंज्ञान् यजेन्निशाचरादिकोणेषु ॥ ५१ ॥

इति शिल्परत्ने उत्तरभागे ध्याने वैष्णवप्रकरणं नाम
त्रयोविंशोऽध्यायः ॥

## अथ चतुर्विंशोऽध्यायः ।

### अथ शक्तिमार्गः ।

तत्र पूर्वं मूलदुर्गा —

शङ्खारिचापशरभिन्नकरां त्रिनेत्रां
तिग्मेतरांशुकलया विलसत्किरीटाम् ।
सिंहस्थितां ससुरसिद्धनतां च दुर्गां
दूर्वानिभां दुरितवर्ग[2]ह(रा ? रां) नमामि ॥ १ ॥

अथवा —

दुर्गां ध्यायतु दुर्गतिप्रशमनीं दूर्वादलश्यामलां
चन्द्रार्धोज्ज्वलशेखरां त्रिनयनामापीतवासोवसम् ।

---

१. 'क्षु पत्रे' क. ग. पाठः. २. 'दु' घ. पाठः.

चक्र शङ्खमिषुं धनुश्च दधतीं कोदण्डबाणांशयो-
र्मुद्रे वाभयकामदे सकटिबन्धाभीष्टदां वानयोः ॥ २ ॥

लिपिः —

देवीं कुन्देन्दुगौराममृतकरकलास्मेरकोटीरबन्धां
मुद्राबोधाक्षमालावरकलितकरां पुस्तकाक्रान्तहस्ताम् ।
शुभ्राकल्पां त्रिनेत्रां त्रिभुवननमितामक्षराधीनमूर्तिं
वन्दे वाग्देवतां तां जगदुदयकरीं मातृकां विश्वयोनिम्[1] ॥ ३ ॥

अथ भुवनेश्वरी —

उद्यद्भास्वत्समाभां (विजितनवजपापिन्दुखण्डावनद्धां
ज्योतिर्मालां त्रिनेत्रां विविधमणिलसत्कुण्डलां पद्मसंस्थाम् ।
हारग्रैवेयकाञ्चीमणिगणवलयैः संयुतामम्बराढ्या-
माद्यां पाशाङ्कुशाभ्यामभयवरकरां भावयेद् भौवनेशीम्)
[॥ ४ ॥

अथवा —

मुक्ताविद्युत्पयोदस्फटिकनवजपाभास्वरैः पञ्चवक्त्रैः
शीतांशूल्लासिचूडैस्त्रिनयनलसितैर्भासुरामच्छवर्णाम् ।
चक्रं शङ्खं कपालं गुणपरशुसुधाकुम्भवेदाक्षमाला-
विद्यापद्मान् वहन्तीं नमत मुनिनतां भारतीं पद्म-
[संस्थाम् ॥ ५ ॥

अपिच —

मृगपोतकपुस्तकाक्षमाला-
परशून् + दधतीं सिताम्बुजस्थाम् ।
तुहिनद्युतिशेखरां त्रिनेत्रां
सितभूषां सुसितां नमामि वाणीम् ॥ ६ ॥

---

१. 'निम् । अथवा' घ. पाठः.

हल्लेखा —

रक्तप्रायो + गौरां स्मररसविलसद्यौवनारम्भशोभा-
माताम्राकल्पकभ्रां शशिशकलमिलत्कुन्तलां कान्त-
[नेत्राम् ।
नानालङ्कारकान्तां करयुगलसमाक्रान्तपाशाङ्कुशाढ्यां
देवीं त्रैलोक्यवन्द्यामभयवरकरां हारिसर्वाङ्गहृद्याम् ॥ ७॥

अथ वागीश्वरी —

शान्तां शारदनीरदेन्दुविमलामालेखिनीपुस्तक-
व्यासङ्गोद्यतबाहुमूर्जितवचोविज्ञानबोधात्मिकाम् ।
शुभ्राकल्पविभूषितां त्रिनयनां भास्वज्जटाशेखरां
सम्बोधाय सरस्वतीं भगवतीं वन्दे मनोज्ञाकृतिम् ॥ ८॥

अथ श्रीः —

मुक्तागौरैश्चतुर्भिर्द्विपपतिभिरथो पुष्करोद्यद्घटास्या-
न्निर्यद्रत्नाभिषिक्ता करकमललसत्पद्मयुग्माभयेष्टा ।
नानाकल्पाभिरामा द्रुतकनकनिभा रक्तपङ्केरुहस्था
रम्याङ्गी सुप्रसन्ना वितरतु विपुलां सन्ततं श्रीः श्रियं वः ॥९॥

अपिच —

शुभ्रेभद्वयपुष्करेरितघटश्च्योतद्विशुद्धोदकैः
स्नायन्तीमतिहृद्यरूपविभवां नीलोल्लसत्कुन्तलाम् ।
शुभ्राकल्पविशेषविभ्रमरसामुत्तप्तहेमप्रभां
वन्दे बाहुयुगप्रसक्तकमलां देवीं सरोजासनाम् ॥ १०॥

अथ त्वरिता —

भावोद्भेदवृता सहाभयवरा विस्रस्तनीलालका
बिम्बोष्ठी तरुणारुणाब्जचरणा रक्तान्तनेत्रत्रया ।

---

१. 'महोवि', २. 'गर्भाभ', ३. 'त्न' क. ग. पाठः.

पीनोरुस्तनभारभङ्गुरतनुः श्यामा प्रसन्नानना
देवी वस्त्वरिता तनोतु विभवानानन्दयन्ती मनः॥ ११॥

अथवा —

मायूरीकृतशेखरप्रविलसद्गुञ्जागुणालङ्कृता
स्निग्धा शिखिपिञ्छनालवलया वन्यप्रसूनोज्ज्वला।
नागेन्द्राहितकुण्डलाङ्गदलसत्काञ्चीस्फुरन्नूपुरा
पायाद् वस्त्वरिता गृहीतशबरीवेषा प्रवालांशुका॥ १२॥

धूमावती —

काकारूढातिकृष्णा प्रविरलदशना मुक्तकेशी विरक्ता
धूम्राक्षी क्षुत्तृषार्त्ता प्रतिभयचरिता चञ्चला कामलोला।
क्लिष्टा पुष्टालसाङ्गी क्रमजलकलिता व्यक्तगर्वार्वरूढा
भूतिं धूमावती वः प्रदिशतु विधवा धूतशूर्पाग्रहस्ता॥ १३॥

अथ काली —

अतिरौद्रा महादंष्ट्रा भ्रुकुटीकुटिलेक्षणा।
विवर्तनयना शूरा दीर्घघोणा मदान्विता॥ १४॥

स्निग्धगम्भीरनिर्घोषा नीलजीमूतसन्निभा।
भ्रुकुटीकूटसन्दीप्ता महावदनभीषणा॥ १५॥

दंष्ट्रोष्ठकोपताम्राक्षी रक्तदीर्घशिरोरुहा।
त्रिशूलव्यग्रदोर्दण्डनखकीर्त्तकवादिनी॥ १६॥

अतिरक्ताम्बरा देवी रक्तमांसासवप्रिया।
शिरोमालाविचित्राङ्गी च्यिन्वन्ती शोणितासवम्॥ १७॥

नृत्यन्ती च हसन्ती च पिशाचगणसेविता।
पिशाचस्कन्धमारुह्य भ्रमन्ती वसुधातलम्॥ १८॥

१. 'ति' क ख. पाठः.

इत्थंभूतां भद्रकालीं मातृभिः परिवारिताम्[1] ।

अपिच,

प्रत्यग्राम्भोजवर्णा शशधरशकलोल्लासिदंष्ट्रोज्ज्वलास्या
वज्राकारं कृपाणं चेषकमपि मधुव्रातपूर्णं दधाना ।
मुण्डस्रङ्मण्डिताङ्गी विविधफणिफणारत्नजालप्रदीप्ता
भद्रं वो भद्रकाली वितरतु सुमनस्सङ्घसंस्तूयमाना[2]

[॥ १९½ ॥

अथ भेलखी —

भास्वत्सिन्दूरवर्णा द्रुतकनकलसत्पादुका मुक्तकेशी
नानाहृद्याङ्गभद्रा घनगुरुजघना तुङ्गपीन(स्तार्थाऽस्तनार्ता)।
धून्वाना लम्बयुग्मं करयुगलधृतं कङ्कणप्रायलम्बा
+ + + + + + + + + + + + + + + फेलखी + + + +

[॥ २०½ ॥

अथ मातङ्गी —

बिम्बोष्ठीं नवयौवनार्द्रचरणामाकीर्णकेशालकां[4]
हृद्याङ्गीं सितशङ्खकुण्डलधरालङ्कारवेषोज्ज्वलाम्[5] ॥ २१½ ॥

शक्तिप्रणवः —

प्रकाशमध्यस्थितचित्स्वरूपां वराभये सन्दधतीं त्रिनेत्राम् ।
सिन्दूरवर्णामतिकोमलाङ्गीं मायामयीं तत्त्वमयीं नमामि

[॥ २२½ ॥

---

१. 'म् । प्र', २. 'झ' ग. पाठः. ३. 'ना । भे' घ. पाठः,
४. 'शी', ५. 'म् । अथ' क. ग. पाठः.

अथ वनदुर्गा—

अरिशङ्खकृपाणखेटबाणान् सधनुश्शूलकतर्जनीर्दधाना ।
भवतां महिषोत्तमाङ्गसंस्था नवदूर्वासदृशी श्रियेऽस्तु दुर्गा ॥ २३½ ॥

अपिच,

उदयार्कसमप्रख्यां किरणानेकसङ्कुलाम् ।
बन्धूकपुष्पस्तबकसिन्दूरसदृशोज्ज्वलाम् ॥ २४½ ॥
पीतवस्त्रावृतां देवीं सर्वाभरणभूषिताम् ।
नीलकुञ्चितकेशाढ्यां प्रसन्नवदनाम्बुजाम् ॥ २५½ ॥
विचित्ररत्ननिष्ठ्यूतकुण्डलोद्द्योतिताननाम् ।
स्वनेत्रकान्तिनिर्धूतकर्णोत्पलविराजिताम् ॥ २६½ ॥
अर्धचन्द्राकृतिस्पर्धिललाटतिलकोज्ज्वलाम् ।
चतुष्टयभुजाकल्पशङ्खारीष्टाभयोद्यताम् ॥ २७½ ॥
वलित्रयोर्मिसंभिन्नमध्यराजिविराजिताम् ।
तप्तहाटकसंकल्पस्तम्भोरुद्वयशोभिताम् ॥ २८½ ॥
वृत्तजङ्घां गूढगुल्फां रश्म्यावृतपदाम्बुजाम् ।
रक्ताम्भोजे समासीनामुद्यत्सूर्यायुतप्रभाम् ॥ २९½ ॥
सर्वलोकमयीं देवीं दुर्गां महिषमर्दिनीम् ॥ ३० ॥

यद्वा,

हेमप्रख्यामिन्दुखण्डात्तमौलिं
शङ्खारीष्टाभीतिहस्तां त्रिनेत्राम् ।
हेमाब्जस्थां पीतवर्णां प्रसन्नां
देवीं दुर्गां दिव्यरूपां नमामि ॥ ३१ ॥

---

१. 'कपालखे', २. 'वनदू', ३. 'स्र', ४. 'ल' घ. पाठः. ५. 'भि' क. ग. पाठः. ६. 'मध्यराजितसं' घ. पाठः. ७. 'अपिच, हे' क. ग. पाठः.

त्रैलोक्यमोहिनी —

पद्मस्थामिक्षुचापं कुसुमशरसृणीपद्मयुग्माक्षमाला-
विद्यापाशान् दधानां कुचभरविनमन्मध्यवल्लीं त्रिनेत्राम् ।
रक्तां रक्ताङ्गरागाम्बरकुसुमयुतां सुप्रसन्नाननाब्जां
त्रैलोक्यक्षोभदात्रीं मुनिविबुधनुतां देवतां तां नमामि ॥३२॥

संवित् —

उद्यद्भास्करसप्रभां त्रिनयनामापीनतुङ्गस्तनीं
पाशं पुस्तकमङ्कुशं जपपटीं चाबिभ्रतीं बाहुभिः ।
रक्ताकल्पदुकूलमाल्यलसितां बालेन्दुचूडामणिं
भक्ताभीप्सितकामधेनुमनिशं वन्दे परां देवताम् ॥ ३३ ॥

इन्द्राणी —

कल्पद्रूद्यानमध्ये विविधमणिलसन्मण्डपान्तर्विराज-
न्मातङ्गारातिपीठप्रविलसितसरोजन्मसंस्थां प्रसन्नाम् ।
पीनोत्तुङ्गस्तनार्तां पृथुजघनभरां पद्मपत्रायताक्षी-
मिन्द्राणीमिन्द्रनीलोत्पलशकलसमां हृद्यभूषां नमामि
अथवा — [॥ ३४ ॥

सञ्चिन्त्य नन्दनोद्यानं मन्दाराद्यैः सुरद्रुमैः ।
कल्पवल्लीशतैश्चापि फलपुष्पभरानतैः ॥ ३५ ॥
अलङ्कृतं तस्य मध्ये रत्नमण्डपमुज्ज्वलम् ।
रत्नसिंहासनगतां तन्मध्ये शक्रवल्लभाम् ॥ ३६ ॥
मन्दारमाल्यैर्मसृणमल्लधम्मल्लमन्थराम् ।
मृगाङ्कवल्लीमन्दारमन्दस्मितमनोहराम् ॥ ३७ ॥
मत्तमातङ्गमहितमस्तकोद्यत्स्तनद्वयाम् ।
मृणालतन्तुमृदुलमध्यवल्लीमनोरमाम् ॥ ३८ ॥

१. 'ल्या' क., 'ल' ग. पाठः. २. 'भृङ्गाङ्ग' क. ग. पाठः.

मनोहरतराभोगभरमन्थरगामिनीम् ।
हारग्रैवेयरशनानूपुराद्यैरलङ्कृताम् ॥ ३९ ॥

उत्तंसितेन मणिना चिन्तापूर्वेण सन्ततम् ।
प्लाव्यमानाङ्गलतिकां रत्नजालानि वर्षता ॥ ४० ॥

आन्दोलयन्तीं हस्तेन लीलापद्मं शनैः शनैः ।
शङ्खपद्मनिधिभ्यां च वामदक्षिणपार्श्वयोः ॥ ४१ ॥

वसुप्रवाहं वर्षद्भ्यां सेव्यमानां सदा मुदा ।
रम्भया[1] च सितच्छत्रं रत्नदण्डं शशिप्रभम् ॥ ४२ ॥

काञ्चनस्रावि संगृह्य सेव्यमानां प्रसन्नया ।
घृताचीसहजन्याभ्यामुभयोः पार्श्वयोरपि ॥ ४३ ॥

सविलासं वीज्यमानां व्यजनाभ्यां शनैः शनैः ।
मन्दं मन्दं दोर्लताभ्यां गृहीत्वा पादपङ्कजम् ॥ ४४ ॥

संवाहयन्तीमुर्वश्या निजाङ्के संनिवेश्य च ।
ताम्बूलवीटिकां हस्ते गृहीत्वा पार्श्वसंस्थया ॥ ४५ ॥

भक्त्या मेनकयाजस्रं सेव्यमानां मनोज्ञया ।
अमृतासारमनिशं दुह्यन्त्या हृद्यरूपया ॥ ४६ ॥

संसेव्यमानामभितः सुरभ्या च सवत्सया ।
अशेषयोषित्सौभाग्यलक्ष्मीमेवंविधाकृतिम् ॥ ४७ ॥

एवं ध्यात्वा वरारोहामिन्द्राणीमीप्सितार्थदाम् ।

---

१. 'म' घ. पाठः.

अथवा —

दोर्भिश्चतुर्भिर्बिभ्राणं वज्रशक्तिवराभयान् ।
त्रैलोक्यनाथं वरदं देवेन्द्रं मण्डपाश्रितम् ॥ ४८½ ॥
तस्याङ्कसंस्थामिन्द्राणीं मनोहरतराकृतिम्[1] ॥ ४९ ॥

अथ स्वयंवरा —

बालार्कायुतसप्रभां करतले लोलम्बमालाकुलां
मालां सन्दधतीं मनोहरतनुं मन्दस्मितोद्यन्मुखीम् ।
मन्दं मन्दमुपेयुषीं वरयितुं शम्भुं जगन्मोहिनीं[2]
वन्दे देवमुनीन्द्रवन्दितपदामिष्टार्थदां पार्वतीम्[3] ॥ ५० ॥

अपिच —

हेमाभां मतिवागतीतगुणशीलानल्पशिल्पाकृतिं
प्रेमारोहमनोहरां करलसत्कल्याणदामाञ्चिताम् ।
श्यामामीश्वरमुद्यतां वरयितुं त्रैलोक्यसम्मोहिनीं
कामापादनकल्पवल्लिमनिशं वन्दे परां देवताम्[4] ॥ ५१ ॥

अथ[5]च,

करधृतवरमाला सर्वरत्नाङ्गभूषा[6]
निखिलनयनचेतोहारिरूपाढ्यवेषा ।
भवतु भवदभीष्टप्राप्तये शैलकन्या
पुरुषयुवतिवश्याकृष्टिनित्यप्रगल्भा ॥ ५२ ॥

अथवा —

उद्यद्राकाशशाङ्कान्तरपरिविलसत्पद्मसंस्थां त्रिनेत्रां
दोर्भिः पाशेक्षुचापाङ्कुशकुसुमशरान् बिभ्रतीमिन्दुचूडाम् ।

---

१. 'म् । स्व', २. 'नं', ३. 'म् । हे' घ. पाठः. ४. 'म् । क' ख. पाठः. ५. 'थ, क' क. ग. पाठः. ६. 'क्ता' घ. पाठः.

गौरीं गौराङ्गरागाम्बररुचिरतनुं चिन्तयेन्मन्त्रमेनं
जप्यात् कान्त्यै समृद्ध्यै सुविपुलयशसे लोकसंरञ्जनायै
[॥ ५३ ॥

अथ प्राणशक्तिः —

रक्ताम्भोधिस्थपोतोल्लसदरुणसराजोधिरूढा कराग्रैः
पाशं कोदण्डमिक्षूद्भवमलिगुणमप्यङ्कुशं पञ्च बाणान् ।
बिभ्राणासृक्कपालं त्रिनयनलसिता पीनवक्षोरुहाढ्या
देवी बालार्कवर्णा भवतु सुखकरी प्राणशक्तिः परा वः
[ ॥ ५४ ॥

अथ अश्वारूढा —

पाशेनाबध्य[1] साध्यं स्मरशरविवशां वामदोष्णानयन्तीं
सौवर्णीं वेत्रयष्टिं निजकरकमलेनापरेणादधानाम् ।
रक्तां रक्ताङ्गरागाम्बरकुसुमयुतामश्वसंस्थां प्रसन्नां
देवीं बालेन्दुचूडां मनसि मुनिनुतां[2] पार्वतीं भावयामि
[ ॥ ५५ ॥

वज्रप्रस्तारिणी—

रक्तपयोनिधिगतमणिपोतस्फुरितरविच्छदकमलनिषण्णाम् ।
इक्षुशरासनपुष्पशराभयवरसृणिडाडिमसायकपाशान् ॥५६॥
दधतीमरुणामयुगलनेत्रामरुणविलेपनमाल्यदुकूलाम् ।
हिमकरलेखाकलितकपर्दां हिमगिरितनयामनिशमुपासे
[॥ ५७ ॥

अपिच —

१. 'य । अश्वा', २. 'द्धसाध्यां स्म' घ. पाठः. ३. 'न' ख. पाठः.

इन्दुकलाकलनोज्ज्वलमौलिर्मारमदाकुलितायुगनेत्रा ।
शोणितसिन्धुतरङ्गितपोतद्योतितभानुदलाम्बुजसंस्था॥५८॥

दोर्धृतडाडिमसायकपाशा साङ्कुशचापकपालसमेता ।
शोणदुकूलविलेपनमाल्या शोणतरा भवतोऽवतु देवी॥५९॥

नित्याक्लिन्ना —

बन्धूकारुणविग्रहां त्रिनयनां बालेन्दुचूडामणिं
पाशाभीतिकपालसाङ्कुशलसद्बाहुं[1] मनोज्ञाननाम् ।
रक्ताम्भोरुहविष्टरां मदवशादाघूर्णमानेक्षणां
रक्तालेपनवस्त्रदामलसितां वन्दे सदा पार्वतीम् ॥ ६० ॥

अपिच —

मध्येसुधामयपयोधिविराजमान-
द्वीपप्रवालमणिभूमितलं विशालम् ।
तस्मिन् मणिप्रवरनिर्मितमण्डपान्तः-
सिंहासनोपरिगते कमले निषण्णाम् ॥ ६१ ॥

पाशं कल्पलतां कपालमभयं दानाङ्कुशौ वल्लकी-
कोणाख्यौ दधतीमयुग्मनयनां बन्धूकपुष्पारुणाम् ।
आरोमांशुकभूषणोज्ज्वलतनुं[2] बालेन्दुमौलिं परा-
माद्यां दिव्यजनानतामनुपमां वन्दे सदा पार्वतीम्॥ ६२ ॥

श्रीसूक्तम् —

अरुणकमलसंस्था[3] तद्रजःपुञ्जवर्णा
करकमलधृतेष्टाभीतियुग्माम्बुजा च ।

---

१. 'हां' घ. पाठः. २. 'रा' क. ख. पाठः. ३. 'नलिन-सं' घ. पाठः.

मणिमकुटविचित्रालङ्कृताकल्पजालै-
भवतु भुवनमाता सन्ततं श्रीः श्रियै[1] वः ॥ ६३ ॥

त्रिपुटा —

नवकनकभासुरोर्वीविरचितमणिकुट्टिमे सकल्पतरौ ।
रत्नवरबद्धसिंहासननिहितसरोरुहे समासीनाम् ॥ ६४ ॥

आबद्धरत्नमकुटां मणिकुण्डलोद्य-
त्केयूरकोर्मिरशनाह्वयनूपुराढ्याम् ।
ध्यायेद् धृताब्जयुगपाशकसाङ्कुशेक्षु-
चापां सपुष्पविशिखां नवहेमवर्णाम् ॥ ६५ ॥

चामरमुकुरसमुद्गकताम्बूलकरङ्कवाहिनीभिश्च ।
दूतीभिः समभिवृतां पश्यन्तीं साधकं प्रसन्नदृशा ॥ ६६ ॥

त्रिपुरा —

आताम्रार्कायुताभां कलितशशिकलारञ्जितप्तां त्रिनेत्रां
देवीं पूर्णेन्दुवक्त्रां विधृतजपपटीपुस्तकाभीत्यभीष्टाम् ।
पीनोत्तुङ्गस्तनार्तां वलिलसितविलग्नामसृक्पङ्कराज-
न्मुण्डस्रङ्मण्डिताङ्गीमरुणतरदुकूलानुलेपां नमामि[2] ॥ ६७ ॥

अथ भूमिः —

मुख्याम्भोजे निविष्टारुणचरणतला श्यामलाङ्गी मनोज्ञा
चञ्चच्छाल्यग्रचुम्बच्छुकलसितकर[3]प्रान्तनीलोत्पला च ।
रक्ताकल्पाभिरामा मणिमयमकुटा चित्रवस्त्रा प्रसन्ना
दिश्याद् विश्वम्भरा वः सततमभिमतं वल्लभा कैटभारेः
[॥ ६८ ॥

१. 'यै', २. 'मि ॥ भू', ३. 'रा' घ. पाठः.

शूलिनी —

बिभ्राणा शूलबाणास्यरिसदरगदाचापपाशा(ङ्कुशा ? न् करा)-
[ब्जै-
मेंघश्यामा किरीटोल्लिखितजलधरा भीषणा भूषणाढ्या ।
सिंहस्कन्धाधिरूढा चतसृभिरसिखेटान्विताभिः परीता
कन्याभिर्भिन्नदैत्या भवतु भवभयध्वंसिनी शूलिनी वः
[॥ ६९ ॥

गायत्री —

मन्दाराह्वयरोचनाञ्जनजपाखैाभैर्मुखैरिन्दुम-
द्रत्नोद्यन्मकुटाङ्गसन्ततचतुर्विंशार्णचित्रातनुः ।
अम्भोजेऽरिगदाह्वयौ गुणकपालाख्यौ च[2] पाशाङ्कुशे-[3]
ष्टाभीतीर्दधती भवेद् भवदभीष्टोत्तारिणी तारिणी[4] ॥ ७० ॥

गायत्री त्रिष्टुप् —

गायत्री चतुराननेष्टशयना बाला चतुर्भिर्भुजैः
पद्माक्षालिकमण्डलुस्रगभ(व ? य)प्रोद्भासिभिर्भासुरा ।
ब्राह्मी हंसधृताब्जपत्रनिलया बन्धूककान्तस्फुर-
द्रूषा मे हृदि हार +++++++++++++ ॥ ७१ ॥

भास्वद्विद्युत्करालाकुलहरिगलसंस्थारिशङ्खासिखेटे-
ष्वस्त्रासाख्यत्रिशूलानरिगणभयदां तर्जनीं चादधाना ।
चर्मास्युद्घूर्णदोर्भिः प्रहरणनिपुणाभिर्वृता कन्यकाभि-
र्देद्यात् कार्शानवीष्टांस्त्रिनयनलसिता चापि कात्यायनी
[वः ॥ ७२ ॥

---

१. 'भा', २. 'चापाङ्क', ३. 'रिणी । त्रि' घ. पाठः. ४. 'र्णि' क. पाठः. ५. 'ष्टा त्रिन' घ. पाठः

---

* 'अब्जे चारि' इति प्रपञ्चसारपाठो दृश्यते ।

सौरी चतुरक्षरी —

भास्वद्रत्नौघमौलिस्फुरदमृतरुचो रञ्जयच्चारुरेखां
सद्यःसन्तप्तकार्तस्वरकमलजपाभासुराभिः प्रभाभिः ।
विश्वाकाशावकाशं ज्वलयदशिशिरं धर्तृ[1] पाशाङ्कुशेष्टा-
भीतीनां भङ्गि[2]तुङ्गस्तनमवतु जगन्मातुरार्कं वपुर्वः ॥ ७३ ॥

अन्नपूर्णा —

दुग्धाब्धौ रूप्यवप्रावृतकनकमयद्वीप[3]वर्ये सुराढ्ये
कल्पद्रूद्यानकेऽधो मणिमयलसिते वित्तपस्याग्रभागे ।
आसीने भूश्रियौ वाञ्छितवसुनिचयं मन्त्रिणे संसृजन्त्यौ
मन्त्री सञ्चिन्तयानो जपतु दिनमुखे सम्पदे[4]ऽन्नस्य मन्त्रम्
[॥ ७४ ॥

अथवा —

रुद्रताण्डवविलोकनलोलां
भद्रे[5]वक्त्रनयनां भवकान्ताम् ।
अन्नदाननिरतां जननीं तां
चिन्तयेदुषसि चित्रदुकूलाम् ॥ ७५ ॥

अथ[6] सप्त मातरः —

दण्डं कमण्डलुं बिभ्रत्यक्षसूत्रमथाङ्कुशम् ।
सुवर्णवर्णां ब्रह्माणीं कृष्णाजिनधरां भजेत् ॥ ७६ ॥

शूलं परश्वधं क्षुद्रदुन्दुभिं नृकरोटिकाम् ।
बिभ्रतीमभ्रशुभ्राभां स्मरेन्माहेश्वरीमपि ॥ ७७ ॥

---

१. 'धातृपा', २. 'भागि तु' क. पाठः. ३. 'यी' क. ख. ग. पाठः. ४. 'द', ५. 'क्त्र' घ. पाठः. ६. 'थ मा' क. ख. ग. पाठः.

अङ्कुशं पाशखट्वाङ्गै + + + दधतीं भुजैः ।
ध्यायेत् सिन्दूरसङ्काशां कौमारीं शक्तिमालिकाम् ॥ ७८ ॥

चक्रशङ्खपेताकाख्यशृङ्खलां[2] च चतुर्भुजाम् ।
कलायश्यामलां ध्यायेद् वैष्णवीं पीतवाससम् ॥ ७९ ॥

मुसलासिलसद्घण्टाहलोद्यत्करपङ्कजाम् ।
+ + + + + संयुक्तां वाराहीं नीरदप्रभाम् ॥ ८० ॥

अङ्कुशं तोमरं वज्रं चक्रं च दधतीं शुभाम्[3] ।
इन्द्रोपलाभामिन्द्राणीं स्मरेदुज्ज्वलभूषणाम् ॥ ८१ ॥

शूलासिनृशिरोराजत्कपालविलसद्भुजाम् ।
मुण्डस्रङ्मण्डितां चण्डीं चामुण्डामपि चिन्तयेत् ॥ ८२ ॥

मृगटङ्कवराभीतिकरो वीरस्त्रिलोचनः ।
नागोपवीताभरणः श्वेतचर्माम्बरो भवेत् ॥ ८३ ॥

गजास्यमेकदन्तं च त्रिणेत्रं नागभूषणम् ।
कनकाभं करासक्तपाशाङ्कुशवरं तथा ॥ ८४ ॥

भक्ष्यं च बिभ्रतं देवं ह्रस्वपादकरद्वयम् ।
शुण्डाग्रग्रस्तचषकं महाकायं विचिन्तयेत् ॥ ८५ ॥

अथ प्रसङ्गाच्छ्रीचक्रप्रस्तारो लिख्यते ।

चक्रार्थमच्छमसृणां चतुरश्रकल्पा-
मुर्वीं षडुत्तरनवत्यभिधाङ्गुलाढ्याम् ।
कृत्वाथ सूत्रयुगलं प्रतिपादयेत् त-
न्मध्येऽथ पूर्वपरदक्षिणसौम्यगाग्रम् ॥ ८६ ॥

---

१. 'ङ्कपाशांश्च द' क. ख. ग. पाठः. २. 'कपालाख्य', ३. 'भुजाम्' घ. पाठः. ४. 'सृ' ख. ग. पाठः

अर्धेन वृत्तमथ मध्यभवं विदध्या-
दष्टोर्ध्ववेददशकाङ्गुलसङ्ख्यकेन ।
चक्रार्थमन्तरमलं पुनराद्यसूत्रे
पूर्वादितो +++ लाञ्छनमत्र कुर्यात् ॥ ८७ ॥

तत्रापि षट्षड्विशिखाग्निलोक-
वेदाग्निषट्षड्रसकाङ्गुलान्ते ।
अङ्केषु तेष्वन्तकवित्तपाख्य-
देशाग्रगं सूत्रमिदं करोतु ॥ ८८ ॥

एतेषु सूत्रेष्वपि चोभयाग्र-
भागेऽङ्कयेत् तत्र समुक्तरीत्या ।
विहाय रामाङ्गुलमादिमान्त-
स्थयोस्तथा द्व्यष्टगयोश्चतुष्कम् ॥ ८९ ॥

वेदाङ्कषष्ठाङ्कगसूत्रकान्ते
द्व्यष्टाङ्गुलं पञ्चमगाग्रयोस्तु ।
एकोनविंशाङ्गुलमन्यसूत्रं
वृत्तं गते (तदनु ?) तैश्च पैरिस्त्रिकोणम्॥ ९० ॥

आवृत्तगे लिखतु पश्चिमपूर्वगाग्रे
रेखे तृतीयमुनिजाग्रसमुद्भवे द्वे ।
षष्ठाङ्कगाग्रयुगलं विलिखेत् पुनस्ते-
ऽथाद्यङ्कजाग्रजनिते च यथा त्रिकोणम्॥ ९१ ॥

तत्र द्वितीयाङ्कगताग्रजे द्वे
सूत्रे लिखेदन्तिमचिह्नगाग्रे ।

---

१. 'द्', २. 'णः', ३. 'त' घ. पाठः.

अष्टाङ्कगाग्रे प्रलिखेच्चतुर्थ-
चिह्नस्थसूत्राग्रसमुद्भवे द्वे ॥ ९२ ॥

एवं लिखेत् पञ्चमसूत्रगे द्वे
सूत्रे पुनः पञ्चमलाञ्छनान्तम् ।
तथान्तिमाङ्कस्थसिराग्रजे द्वे
सूत्रे तृतीयान्तमथादिमान्तम् ॥ ९३ ॥

अष्टाङ्कसूत्राग्रसमुद्भवे द्वे
तद्वल्लिखेत् षष्ठगसूत्रसंस्थे ।
सूत्रे द्वितीयान्तमितीरितः स्यात्
त्र्यश्रक्रियायाः क्रम आदिशास्त्रे ॥ ९४ ॥

वृत्तस्य बाह्येऽष्टदलं तथैव
ह्यष्टच्छदं तस्य बहिः पुनश्च ।
अष्टाङ्गुलैरेव पृथग् बहिष्टै-
र्वृत्तानि सद्वारचतुर्भुजानि ॥ ९५ ॥

बिन्दुत्रिकोणवसुकोणदशारयुग्म-
मन्वश्रनागदलषोडशपत्रकाणि ।
वृत्तत्रयं च धरणीसदनत्रयं च
श्रीचक्रमेतदुदितं परदेवतायाः ॥ ९६ ॥

इति शिल्परत्ने उत्तरभागे ध्याने शाक्तेयप्रकरणं नाम
चतुर्विंशोऽध्यायः ॥

---

१. 'तद्वार' घ. पाठः. २. 'तदनुत्र' ख. ग. पाठः.

## अथ पञ्चविंशोऽध्यायः ।

अथेन्द्राद्यन्यदैवतध्यानम् । पूर्वमिन्द्रः ।

उपवने मरुतामथ नन्दने
व्र(त)तिगेहलसल्ललनागणे ।
कनकभासितभूमितलेऽञ्चिते
विबुधशालिशतैरखिलार्थदैः ॥ १ ॥

कलितहेमलतानिकरोज्ज्वलैः
कलनिनादविहङ्गमनोरमैः ।
कनकपङ्कजसौरभवाहिना
सुरसरिन्मरुता च मनोरमे ॥ २ ॥

सुरुचिरं मणिमण्डपमुज्ज्वलं
विबुधपादपपञ्चकमध्यगम् ।
मणिमयं च तदन्तरभूतले
द्विरदवैरिमहासनमद्भुतम् ॥ ३ ॥

उपरिसंस्थितमुज्ज्वलभूषणं
तरुणभास्करकोटिसमप्रभम् ।
महितरत्नकिरीटमनोहरं
मणिमयूखविराजितकुण्डलम् ॥ ४ ॥

मसृणकुङ्कुमपङ्कपरिस्फुर-
त्तिलकशोभिललाटतटान्तरम् ।
कमललोचनमुन्नतनासिकं
मुकुरगण्डतलं मधुरस्मितम् ॥ ५ ॥

---

१. 'देवताध्या' घ. पाठः.

अधरकान्तिपराजितविद्रुमं
विगलिताङ्कशशाङ्कनिभाननम् ।
विमलकम्बुविराजितकन्धरं
विविधहारलताञ्चितवक्षसम् ॥ ६ ॥

कनकतालगतं वसुसञ्चयं
निजकरैर्दधतं निजसेविनाम् ।
महितरत्नमरीचिचयोल्लस-
ज्जठरबन्धमनोरममध्यमम् ॥ ७ ॥

विविधरत्नलसन्मणिमेखला-
कलितसूक्ष्मदुकूलविराजितम् ।
अमरसिन्धुरबन्धुरनासिका-
सदृशपीनवरोरुमनोहरम् ॥ ८ ॥

प्रपदनिर्जितकच्छपमङ्गुली-
नखमयूखजितेन्दुकराङ्कुरम् ।
मुनिसुरासुरसिद्धमहोरगा-
द्यखिललोकनताङ्घ्रिसरोरुहम् ॥ ९ ॥

त्रिभुवनैकपरायणमिष्टदं
त्रिदशनाथमनारतमाश्रये ॥

अपिच —

मन्दाकिनीतटरुहत्रिदशद्रुमाधो
वृन्दारकैः परिवृतं गजराजसंस्थम् ।

दोर्भ्यां सुवर्णचषकस्थमकुप्यजात-
मादाय साधकवराय समर्पयन्तम् ॥ १० ॥

अथवा —

धवलनलिनमध्ये सन्निषण्णं सिताङ्गं
सुरमुनिपितृसिद्धैः सेवितं सुप्रसन्नम् ।
दशशतभुजदण्डोल्लासिपीयूषकुम्भै-
रमृतजलमजस्रं स्रावयन्तं निजाङ्गे ॥ ११ ॥

सुरपरिवृढमेवं चिन्तयित्वा सहस्रं
जपतु नियमयुक्तो मन्त्रं(सुर्वर्यनयो ?)यः ।
स तु दुरितवियुक्तो विश्वसंवादयुक्तो
गदगणरहितं वै विन्दते दीर्घमायुः ॥ १२ ॥

अपिच, ऐन्द्री गायत्री —

पारिजाततरुमूलबद्धमणिकुट्टिमोपरिसमास्थितं
पाणिपङ्कजयुगात्तरत्नकलशाभिषिक्तनिजविग्रहम् ।
पाटलाङ्गमरुणाभवस्त्रममलेन्दुसुन्दरमुखश्रियं
पाकशासनमहर्निशं नमत धर्मकामधन मोक्षदम् ॥ १३ ॥

अथवा —

अरुणाम्बुज + + + मध्यगतं
सृणिपाशशक्तिशतकोटिकरम् ।

---

१. 'क' ख., 'कुर्वजा' क. ग. पाठः. २. 'ग', ३. 'न्तीं', ४. 'जांशे ॥' घ. पाठः. ५. 'न्त्रवर्य' ख. ग. पाठः. ६. 'युः । ऐ', ७. 'ष', ८. 'दं जपे ॥ अ' क· ख. ग. पाठः. ९. 'ग', १०. 'टीरम्' घ. पाठः.

प्रविचिन्त्य मन्त्रममुमेव जपन्
वशयेत् क्षणेन सुरपौरजनम् ॥ १४ ॥

तच्चिष्टुप् —

मातङ्गारातिपीठे स्थितमतिरुचिरे नन्दने कल्पवृक्षै-
र्मन्दाराद्यैर्मनोज्ञैर्विबुधमुनिनतं तप्तकार्तस्वराभम् ।
हस्तोद्यत्स्वर्णकुम्भप्रकरपरिगलद्रत्नधाराप्रवाहान्
वर्षन्तं वाञ्छितार्थप्रदममरपतिं सुप्रसन्नं नमामि ॥ १५ ॥

अथाग्निः[2] —

त्रिनयनमुरुतप्तं बद्धमौलिं सुशुक्ला-
म्बरमरुणमनेकाकल्पमम्भोजसंस्थम् ।
अभिमतवरशक्तिस्वस्तिकाभीतिहस्तं
नमत कनकमालालङ्कृतं तं कृशानुम् ॥ १६ ॥

संवादाग्निः —

धवलनलिनराजच्चन्द्रमध्ये निषण्णं
करविलसितपाशं साङ्कुशं साभयं च ।
(स)वरदममलेन्दुक्षीरगात्रं त्रिनेत्रं
प्रणमत सुरवक्त्रं मङ्क्षु संवादयन्तम् ॥ १७ ॥

समर्द्धिः —

हैमाश्वत्थसुरद्रुमोदरभुवो निर्यान्तमश्वाकृतिं
वर्षन्तं धनधान्यरत्ननिचयं रन्ध्रैः स्रवद्भिः सन्ततम् ।
ज्वालापल्लवितस्वरोमविवरं भक्तार्तिसम्भेदनं
वन्दे धर्मसुखार्थमोक्षफलदं दिव्याकृतिं पावकम् ॥ १८ ॥

---

१. 'नु' ख. पाठः. २. 'अग्निः' घ. पाठः.

तन्नेदैः —

(अथवा) शक्तिस्वस्तिकदर्भाक्षस्रक्(स्रुव)स्रुगभयवरान् ।
दधदमिताकल्पो वोवसु(र)वत्।त् कनकम।लिकालसितः
[॥ १९ ॥

रक्षोहाग्निः —

त्रिशूलं परशुं चैव कपालं डमरुं तथा ।
बिभ्राणमुग्रवपुषं त्रिनेत्रं चन्द्रशेखरम् ॥ २० ॥
दंष्ट्राकरालनिनदद्भ्रुकुटीकुटिलाननम् ।
बडबामुखाग्निसदृशं दहन्तं भुवनत्रयम् ॥ २१ ॥
भूतप्रेतपिशाचादीन् भक्षयन्तं महाबलम् ।
ध्यात्वाजस्रं जपेन्नित्यं रक्षोहाग्निं समाहितः ॥ २२ ॥

अथ यमः —

द्विभुजः कृष्णवर्णस्तु खड्गखेटकसंयुतः ।
करालदंष्ट्रवदनो रक्तमाल्यानुलेपनः ॥ २३ ॥
रक्तवस्त्रधरश्चोग्रः किरीटमकुटान्वितः ।
दीप्ताग्निसदृशाक्षश्च महामहिषवाहनः ॥ २४ ॥
यमस्तु तस्य पार्श्वस्थौ +++++++++ ।
चित्रगुप्तः कलिश्चैव द्वारपार्श्वे तु संस्थितौ ॥ २५ ॥
कृष्णश्यामनिभौ[2] तौ च रक्तवस्त्रधृतावुभौ ।
पीठपार्श्वगतौ मृत्युसहितावु ++++ ॥ २६ ॥
नीललोहितसङ्काशौ द्वौ चामरधृतस्त्रियौ ।
पुरतः संस्थितौ विप्रौ धर्माधर्मसमाह्वयौ ॥ २७ ॥

---

१. 'दाः' क. ख. ग. पाठः. २. 'श्यामकृष्णनि' घ. पाठः.

यमः सिंहासनारूढो महिषारोहितस्तु वा ।

अथ निर्ऋतिः—

निर्ऋतिस्तु महावीरो द्विभुजो रक्षसां पतिः ॥ २८ ॥

खड्गं दक्षिणहस्ते तु वामहस्ते तु खेटकम् ।

प्रीतिहस्तधरो रौद्रः करालवदनान्वितः[1] ॥ २९ ॥

सर्वाभरणसंयुक्तो नानापुष्पैरलङ्कृतः ।

अथ वरुणः—

वरुणः शुक्लवर्णस्तु द्विभुजः पाशहस्तकः ॥ ३० ॥

सर्वाभरणसंयुक्तः करण्डमकुटान्वितः ।

पीतवस्त्रधरः शान्तो महाबलसमन्वितः ॥ ३१ ॥

यज्ञसूत्रसमायुक्तो मकरस्थासनासनः ।

अथ वायुः—

कुञ्चितभ्रूयुतो वायुः शबलाम्बरभूषितः ॥ ३२ ॥

नानाभरणसंयुक्तः केशाढ्यः सुविकीर्णकः ।

सिंहासनोपरिष्टात् तु शीघ्रयात्रोत्सुकः स्थितः[2] ॥ ३३ ॥

अथ *धनदः—

अथ सोमः—

प्रालेयामलमात्मदीधितिसुधासङ्क्रान्तलोकत्रयं

मुक्ताजालविराजिरूप्यविलसद्वेषान्तरालङ्कृतम् ।

भास्वत्कैरवचारुबाहुमभलक्ष्मौमावदातं परं

वन्दे सोममरा(ज?ल)नीलविलसत्केशं मनोनन्दनम्

[॥ ३४ ॥

---

१. 'तः। अथ' ख. ग. पाठः. २. 'तः। सो' घ. पाठः.

* अस्य ध्यानश्लोको मातृकासु न दृश्यते।

अथवा,

विमलकमलसंस्थः सुप्रसन्नाननेन्दु-
वेरदकुमुदहस्तश्चारुहारादिभूषः ।
स्फटिकरजतवर्णो वाञ्छितप्राप्तये वो
भवतु भवदभीष्टद्योतिताङ्कः (शशाङ्कः) ॥ ३५ ॥

अथ ब्रह्मा —

आषाढदण्डस्फटिकाक्षमालासुवर्णकुण्डीसरसीरुहाणि ।
बिभ्राणमारक्तजटाकलापं चतुर्मुखं पितरुचं नमामि ॥३६॥

अथ शेषः —

अनन्तश्चतुर्भुजः सौम्यः सर्वाभरणभूषितः ।
जपापुष्पनिभाकारः करण्डमकुटान्वितः ॥ ३७ ॥
सितवस्त्रधरः शान्तस्त्रिनेत्रः पद्मसंस्थितः ।
अभयं वरदं टङ्कं शूलं चैव धृतः करैः ॥ ३८ ॥

अथ महागणपतिः —

मन्दाराद्यैः कल्पकवृक्षविशेषैर्विशिष्टतरफलदैः ।
शिशिरितचतुराशान्तर्बालातपचन्द्रिकाकुले च तले ॥३९॥
ऐक्षवजलनिधिलहरीकणजालकवाहिना च गन्धवहेन ।
संसेविते च सुरतरुसुमनःश्रितमधुपपक्षचलनपरेण ॥४०॥
रत्नमये मणिवज्रप्रवालफलपुष्पपल्लवस्य सतः ।
महतोऽधस्ताद्दतुभिर्युगपत्संसेवितस्य कल्पतरोः ॥ ४१ ॥
सिंहमुखपादपीठगलिपिमयपद्मे त्रिषट्ककोणोल्लसिते ।
आसीनस्त्वेकरदो बृहदुदरो दशभुजोऽरुणो गजवदनः
[॥ ४२ ॥

---

१. 'वे', २. 'ष्टप्राप्तये द्यो' घ. पाठः. ३. 'ङ्कः । आ', ४. 'स्थि' क. ख. ग. पाठः.

बीजापूरगदेक्षुकार्मुकरुजाचक्राब्जपाशोत्पल-
व्रीह्यग्रस्वविषाणरत्नकलशप्रोद्यत्करा म्भोरुहः ।
ध्येयो वल्लभया च पद्मकरयाश्लिष्टो ज्वलद्भूषया
विश्वोत्पत्तिविनाशसंस्थितिकरो विघ्नो विशिष्टार्थदः ॥४३॥

करपुष्करधृतकलशस्रुतमणिमुक्ताप्रवालवर्षेण ।
अविरतधारां विकिरन् परितः साधकसमग्रसम्पत्त्यै ॥ ४४॥

मदजललोलुपमधुकरमालां निजकर्णतालताडनया ।
निर्वासयन् मुहुर्मुहुरमररसुरैश्च सेवितो युगपत् ॥ ४५ ॥

अग्रेऽथ बिल्वमभितश्च रमारमेशौ
तद्दक्षिणे वटजुषौ गिरिजावृषाङ्कौ ।
पृष्ठेऽथ पिप्पलजुषौ रतिपुष्पबाणौ
सव्ये प्रियङ्गुमभितश्च महीवराहौ ॥ ४६ ॥

ध्येयौ च पद्मयुगचक्रदरैः पुरोक्तौ
पाशाङ्कुशाख्यपरशुत्रिशिखैरथान्यौ ।
युग्मोत्पलेक्षुमयचापशरैस्तृतीया-
वन्त्यौ शुकाह्वकलशाग्रगदारथाङ्गैः ॥ ४७ ॥

ध्येयाः षट्कोणाश्रिषु परितः पाशाङ्कुशाभयेष्टकराः ।
सप्रमदा गणपतयो रक्ताकाराः प्रभिन्नमदविवशाः ॥
अग्राश्रावामोदः प्रमोदसुमुखौ (च) तमभितोऽश्रियुगे ।
पृष्ठे च दुर्मुखाख्यस्त्वमुमभितो विघ्नविघ्नकरौ ॥ ४९ ॥

सव्यापसव्यभागे तस्य ध्येयौ च शङ्ख(पुष्प ? पद्म)निधी ।
माक्षिकमाणिक्याभौ वर्षन्तौ धारया धनानि सदा ॥ ५० ॥

---

१. 'तुं' घ. पाठः.

सिद्धिसमृद्धी चान्ये कान्तिर्मदनावती मदद्रवया ।
द्राविणिवसुधाराख्ये मधुमत्यपि विघ्ननिधियुगप्रमदाः
[॥ ५१ ॥

अथ बीजगणपतिः —

रक्तो रक्ताङ्गरागांशुककुसुमयुतस्तुन्दिलश्चन्द्रमौलि-
र्नेत्रैर्युक्तस्त्रिभिर्वामनकरचरणो बीजपूरात्तनासः ।
हस्ताग्राक्लृप्तपाशाङ्कुशरदवरदो नागवक्त्रोऽहिभूषो
देवः पद्मासनो वो भवतु नतसुरो भूतये विघ्नराजः
[॥ ५२ ॥

अथवा,

धृतपाशाङ्कुशकल्प(क)लतिकास्वरदश्च बीजपूरयुतः ।
शशिशकलकलितमौलिस्त्रिलोचनोऽरुणतनुश्च गज-
[वदनः ॥ ५३ ॥
भासुरभूषणदीप्तो बृहदुदरः पद्मविष्टरो ललितः ।
(ध्येयोऽनायतदोःपत्सरसिरुहः) संपदे सदा मनुजैः ॥ ५४ ॥

अपिच,

*रक्ताक्षमालां परशुं च दन्तं
भक्ष्यं च दोर्भिः परितो दधानम् ।
हेमावदातं त्रिदृशं गजास्यं
लम्बोदरं तं शिरसा नमामि ॥ ५५ ॥

अपिच,

*नमामि पाशाङ्कुशदन्तभक्ष्यसंलक्षितं त्र्यक्षमुदारकुक्षिम् ।
नागाननं नागकृतोत्तरीयमुत्तप्तहेमप्रभमेकदन्तम् ॥ ५६ ॥

---

१. 'व', २. 'ह' घ. पाठः.

---

* इमौ श्लोकौ घ-मातृकायां व्युत्क्रमेण दृश्येते ।

अथवा,

विघ्नेशं सपरश्वधाक्षवटिकादन्तोल्लसल्लड्डुकै-
र्दोर्भिः पाशसृणीस्वदन्तवरदाढ्यैर्वा चतुर्भिर्युतम् ।
शुण्डाग्राहितबीजपूरमुरुकुक्षिं त्रीक्षणं संस्मरेत्
सिन्दूराभमिभास्यमिन्दुशकलाद्याकल्पमब्जासनम् ॥५७॥

अथ हेरम्बः —

सिंहोपरिस्थितं देवं पञ्चवक्त्रं गजाननम् ।
दशबाहुं त्रिनेत्रं च जाम्बूनदसमप्रभम् ॥ ५८ ॥
प्रसादाभयदातारं पात्रं पूरितमोदकम् ।
स्वदन्तं सव्यहस्तेन बिभ्रतं चापि सुव्रते! ॥ ५९ ॥
करकं चाक्षसूत्रं च परशुं मुद्गरं तथा ।
पाशाङ्कुशकरां शक्तिं देवं लम्बोदरं शुभम् ॥ ६० ॥
पीवरं चैकदन्तं चैं तुम्बुरूणां गणान्वितम् ।

अथ बालगणपतिः —

बालः प्रसूतमात्रोऽयमम्बिकाङ्के निवेशितः ॥ ६१ ॥
अतिरक्तो गजमुखो द्विरदो रत्नभूषितः ।
चषकं पुष्करे बिभ्रत् सृणिपाशौ करद्वये ॥ ६२ ॥
द्वाभ्यां कल्पलतां दोर्भ्यां डोलयन् रत्नवर्षिणीम् ।
एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं बालाख्यं गणनायकम् ॥ ६३ ॥

अथ सुब्रह्मण्यः —

सिन्दूरारुणविग्रहं सुरगणानन्दप्रदं सुन्दरं
देवं दिव्यविनोदधाममरुणाकल्पप्रकाशोज्ज्वलम् ।

---

१. 'र्वैः' क. ख. ग. पाठः. २. 'स्कन्दः — सि' घ. पाठः.

नानाविभ्रमभूषणव्यतिकरं स्मेरप्रभासुन्दरं
वन्दे शक्त्यभयौ दधानमुदिताभीष्टप्रभावं गुहम् ॥ ६४ ॥
सिन्दूरारुणकान्तिमिन्दुवदनं केयूरहारादिभि-
र्दिव्यैराभरणैर्विभूषिततनुं स्व(र्णस्य ? र्गादि) सौख्यप्रदम् ।
अम्भोजाभयशक्तिकुक्कुट(व ? ध)रं रक्ताङ्गरागांशुकं
सुब्रह्मण्यमुपास्महे प्रणमतां भीतिप्रणाशोद्यतम् ॥ ६५ ॥

अथवा,

स्फुरन्मकुटपत्रकुण्डलविभूषितं चम्पक-
स्रजाकलितकन्धरं करयुगेन शक्तिं पविम् ।
दधानमथवा कटीकलितवामहस्तेष्टदं
गुरुं घुसृणभासुरं स्मरतु पीतवासोवसम्[1] ॥ ६६ ॥

अथ नागयक्षी —

गात्रं यस्याः सुनेत्रं जलधरकबरीभारमाकल्पजालैः
राजत्कुम्भीन्द्रकुम्भस्तनयुगलभरं मञ्जुमञ्जीरनादैः ।
नागानादाय पाणौ नगनगरतरूनेत्य लीलाविलासैः
संलक्ष्या नागयक्षी कलयतु कुशलं नागराजप्रिया वः
[ ॥ ६७ ॥

अथ शास्ता —

स्निग्धारालविसारिकुन्तलभरं सिंहासनाध्यासितं
स्फूर्जत्पत्रसुकल्पितकुण्डलमथोच्छ्वासभृद्धृदयम् ।
नीलक्षौमवसं नवीनजलदश्यामं प्रभासत्यक-
स्फायत्पार्श्वयुगं सुरक्तसकलाकल्पं स्मरेदार्यकम् ॥ ६८ ॥

---

१. 'सम् । अथ शास्ता' क. ख. ग. पाठः.

अथवा,

पार्श्वस्थापत्यदारं वटविटपितलन्यस्तसिंहासनस्थं
श्यामं कालाम्बराभं श्रितकरयुगलं + + चिन्तामणिं च ।
+ + निस्त्रिंशबाणासनविशिखयुतं रक्तमाल्यानुलेपं
वन्दे शास्तारमीड्यं घनकुटिलबृहत्कुन्तलोदग्रमौलिम्
[॥ ६९ ॥

अपिच —

अंसासक्तसुवर्णकर्णिकमुरोविस्तीर्णहारोज्ज्वलं
शृङ्गारोचितवेषविभ्रमसुखं श्यामांशुकं श्यामलम् ।
रक्तालेपनमाल्यदामदयितं नीलोल्लसत्कुन्तलं
वन्दे बाणशरासनोद्यतकरं वीरेशमाद्यं सदा ॥ ७० ॥

अथ प्रभा —

रक्ताकल्पोज्ज्वलां रक्तां सुरूपां कान्तयौवनाम् ।
धृतवीणां प्रभां वन्दे देवीं रक्तान्तलोचनाम् ॥ ७१ ॥

अथ सत्यकः —

तमालश्यामलं भद्रं पिङ्गलाकल्पसुन्दरम् ।
अधिज्यकार्मुकं वन्दे सत्यमव्यक्तयौवनम् ॥ ७२ ॥

अथ मिश्रमूर्तयः ।

तत्र पूर्वमनुष्टुप्त्रयम् —

हेमाम्भोजे निषण्णं स्रवदमृतघटौ चक्रशङ्खौ कराब्जे-
ष्वक्षस्रक्कुण्डिकाख्ये शिरसि शशिकलां धारयन्तं सुभूषम् ।

---

१. 'कराल' ख. पाठः. २. 'र्तिः । त' क. ख. ग. पाठः,

हेमाभं पीतवस्त्रं रविशशिदहनत्रीक्षणं चित्स्वरूपं
सर्वज्ञं सर्वगं[1] तं हरिहरविधिजं विश्वरूपं नमामि ॥ ७३ ॥

अथ शक्तिगणपतिः —

द्वाभ्यां विभ्राजमानं द्रुतकनकमहाशृङ्खलाभ्यां कराभ्यां
बीजापूरादिशुम्भद्दशभुजललितं पञ्चबीजस्वरूपम् ।
सन्ध्यासिन्दूरवर्णं स्तनभरनमितं तुन्दिलं सन्नितम्बं
कण्ठादूर्ध्वं करीन्द्रं युवतिमयमधो (तं ?) नौमि देवं
[गणेशम् ॥ ७४ ॥

अथ लक्ष्मीनारायणः —

चक्रं विद्यादे[2]रघटगदादर्पणान् पद्मयुग्मं
दोर्भिर्बिभ्रत् सुरुचिरतरं[3] मेघविद्युन्निभाभम् ।
गाढोत्कण्ठाविवशमनिशं पुण्डरीकाक्षलक्ष्म्यो-
रेकीभूतं वपुरवतु वः पीतकौशेयकान्तम् ॥ ७५ ॥

अथार्धनारीश्वरः —

पाशाङ्कुशौ जपपटीमभयं च बिभ्रद्
बालेन्दुचूडमरुणाम्बुजगं त्रिनेत्रम् ।
बन्धूककाञ्चननिभोभयपार्श्वमव्या-
दर्धाम्बिकेशमनिशं रुचिरं वपुर्वः ॥ ७६ ॥

अपिच,

सिन्दूरकाञ्चनसमोभयपार्श्वमर्ध-
नारीश्वरं गिरिसुताहरभूषचिह्नम् ।

---

१. 'गन्धं ह', २. 'ध' क. ग. पाठः. ३. 'नुं' ख. घ. पाठः

पाशाभयाक्षवलयेष्टदहस्तमेवं
स्मृत्वा न्यसेत् सकलवाञ्छितवस्तुसिद्धयै ॥ ७७ ॥

अपिच,

अरुणकनकवर्णं पद्मसंस्थं च गौरी-
हरनियमितचिह्नं सौम्यतानूनपातम् ।
भवतु भवदभीष्टप्राप्तये पाशटङ्का-
भयवरदविचित्रं रूपमर्धाम्बिकेशम् ॥ ७८ ॥

अथ शङ्करनारायणः —

ध्येयो जटामकुटचन्द्रकलार्धमूर्धा
त्रीक्षस्तरक्ष्वजिनपीतदुकूलवासाः ।
ईशाच्युतस्त्रिशिखचक्रकपालशङ्खान्
बिभ्रत् सितासितवपुर्ध्रुचितात्मभूषः ॥ ७९ ॥

अथ सूर्यः—

रक्तासिताम्भोजधरं कराभ्या-
मादीप्तभामण्डलमध्यसंस्थम् ।
सूर्यं पिशङ्गांशुकगन्धमाल्य-
मादीप्तदिव्याभरणं नमामि ॥ ८० ॥

अथ सौरमष्टाक्षरम् —

अरुणसरोरुहसंस्थ-
स्त्रिदृगरुणोऽरुणसरोजयुगलधरः ।
कलिताभयवरदकरो
द्युतिबिम्बोऽमितभूषणस्त्विनोऽवतु वः ॥ ८१ ॥

---

१. 'त्र्य' घ. पाठः.

अथ कामः—

अरुणमरुणवासोमाल्यदामाङ्गरागं
स्वकरकलितपाशं साङ्कुशाक्षेक्षुचापम् ।
मणिमयमकुटाद्यैर्दीप्तमाकल्पजालै-
रुरुणनलिनसंस्थं चिन्तयेदङ्गयोनिम् ॥ ८२ ॥

अपिच,

रक्ताम्भोरुहसंस्थितं करतले कोदण्डमिक्षूद्भवं
पुष्पास्त्रं वरदाभयौ च दधतं रक्ताङ्गरागादिकम् ।
श्यामाङ्कस्थितयोपगूढमनिशं रत्या च दत्तेक्षणं
तद्वक्त्राम्बुरुहे मनोहरतनुं वन्दे सदा मन्मथम् ॥ ८३ ॥

अथ वीरभद्रः—

गोक्षीराभं दधानं परशुडमरुकौ खड्गखेटौ कपालं
शूलं चाभीतिदाने त्रिनयनलसितं व्याघ्रचर्माम्बराढ्यम् ।
वेतालारूढमुग्रं कपिशतरजटाबद्धशीतांशुखण्डं
ध्यायेद् भोगीन्द्रभूषं निजगणसहितं सन्ततं वीरभद्रम् ॥ ८४ ॥

अथवा,

सितपङ्कजमध्यसंस्थमेनं सुसितं व्याघ्रनखादिबालचिह्नैः ।
उपलक्षितबालभावमाशापरिधानं कमनीयगात्रयष्टिम् ॥ ८५ ॥

अथ हनूमान्—

पिङ्गाक्षं पिङ्गकेशं शशरुधिरनिकाशास्यदोःपादपद्मं
प्रोद्यन्मार्ताण्डकोटिप्रतिमतनुगलद्रश्मिभिर्दुर्निरीक्ष्यम् ।

---

१. 'मदेवः । अ', २. 'मितत' घ. पाठः.

राकाचन्द्रांशुजालप्रसृमरनखदंष्ट्रांशुसन्दोहनश्यद्-
ध्वान्ताशाचक्रवालं कपिवरमनिशं वायुपुत्रं नमामि
[॥ ८६ ॥

अथवा,

वामे जानुनि वामबाहुमपरं ज्ञानाख्यमुद्रायुतं
हृद्देशे कलयन् वृतो मुनिगणैर्नासाग्रदत्तेक्षणः ।
आसीनः कदलीवने मणिमये बालार्ककोटिप्रभो
ध्यायन् ब्रह्म परं करोतु मनसः शुद्धिं हनूमान् मम
[॥ ८७ ॥

अथवा,

क्रोधोद्विग्नविघूर्णितारुणतरप्रोद्यान्तनेत्रद्वय-
प्रोद्यद्वह्निशिखास्फुलिङ्गनिकरप्लुष्टाहिचोरादिकम् ।
घोरं मेरुसमानदेहमरुणश्रोत्रास्यपादस्थलं
वन्दे मारुतिमाञ्जनेयमनिशं दंष्ट्राकरालाननम् ॥ ८८ ॥

अथ गरुडः —

आजानूत्तप्तहेमप्रभमथ + हिमप्रख्यमानाभि साक्षा-
दा कण्ठात् कुङ्कुमाभं भ्रमरकुलसमश्यामलं मूर्ध्नि शान्तम्।
व्याप्तब्रह्माण्डगर्भं द्विभुजमभयदं पिङ्गनेत्रोग्रतारं
तार्क्ष्यं नीलाग्रनासाद्युतिविविधमहापक्षलक्ष्यं नमामि
[॥ ८९ ॥

अपिच,

पायाद् देवो गरुत्मानमृतघटगदाशङ्खचक्रासिना(गा)न्
बिभ्राणः कृष्णपादो निजकरकमलैरष्टभिः स्वर्णवर्णः ।

---

१. 'यद्या' ङ. पाठः. २. 'र्णा' क. ख. ग. पाठः.

पापघ्नैः पक्षवातैरखिलविषहरैराश्रितार्तिघ्नवृत्तः
श्रीमान् वः पन्नगारिः सकलविषभयाद् रत्नजालोज्ज्वलाङ्गः
[॥ ९० ॥

अथाश्विनौ[1] —

एकसिंहासनासीनावश्विनावश्वरूपिणौ ।
डाडिमीपुष्पसङ्काशावुभौ[3] तौ सोपवीतकौ[4] ॥ ९१ ॥
फुल्लरक्तोत्पलाक्षौ च पीतस्रग्वस्त्रधारिणौ ।
करद्वयसमायुक्तौ श्रीभूषणविभूषितौ ॥ ९२ ॥
अभयं दक्षिणे हस्ते वरदं वामहस्तके ।
लम्बितौ दक्षिणं पादं वाममुत्कुटिकासनौ ॥ ९३ ॥

अथ पितरः —

पितरः पीतवर्णाभा द्विभुजाः श्वेतवाससः ।
यज्ञसूत्रसमायुक्ताः सौम्यदृग्वदनान्विताः ॥ ९४ ॥
फलके भद्रपीठे वा त्रयस्तु सहितासनाः ।

अथाप्सरसः —

दुकूलवसनाः सर्वाः पीनोरुजघनस्तनाः ॥ ९५ ॥
मध्ये क्षौमा(र्ध ? श्च) सौम्याश्च किञ्चित्प्रहसिताननाः ।
नानालङ्कारसंयुक्ता भद्रपीठोपरिस्थिताः ॥ ९६ ॥
समभङ्गसमायुक्ताः सप्तसङ्ख्याप्सराः स्मृताः ।

---

१. 'निदेवौ । ए' क. ख. ग. पाठः. २. 'हसहासी' क. ग. पाठः. ३. 'भयोः सो' क. ख. ग. पाठः. ४. 'मवीत' क. ग., 'मनीत' ख. पाठः. ५. 'वामकं वा' क. ख. ग. पाठः. ६. 'क्षौमादिसौ' घ. पाठः.

अथ सप्तर्षयः —

ऋषयः पीतवर्णास्तु नानावर्णाम्बरान्विताः ॥ ९७ ॥
वृद्धाश्च द्विभुजाः शान्ता जटामकुटमण्डिताः ।
बिन्दुकाहृदयान्ताश्च यज्ञसूत्रसमन्विताः ॥ ९८ ॥
भस्मनैवं[1] त्रिपुण्ड्राढ्यां[2]ः स्थानका वासनास्तु वा ।
दण्डं दक्षिणहस्ते तुच्छत्रं वामकरे धृताः ॥ ९९ ॥
छत्रदण्डौ विना वाथ सव्ये वै ज्ञानमुद्रिकाम् ।
वामजानूपरिन्यस्तवामहस्तसमन्विताः ॥ १०० ॥

एकादशरुद्राः —

चतुर्भुजास्त्रिनेत्राश्च जटामकुटमण्डिताः ।
शुक्लवस्त्रधराः सर्वे शुक्लवर्णाः प्रकीर्तिताः ॥ १०१ ॥
अभयं परशुः सव्ये कृष्णश्च वरदोऽन्यतः ।

अथ क्षेत्रपालः —

त्रिविधः क्षेत्रपालस्तु सात्त्विको राजसोऽन्तिमः ॥ १०२ ॥
श्वेतो रक्तस्तथा कृष्णः सात्त्विकादिगुणाद् भवेत् ।
शूलं दक्षिणहस्ते तु कपालमितरे स्मृतम् ॥ १०३ ॥
द्विभुजं ह्येवमाख्यातं चतुर्हस्तमथोच्यते ।
वरंहस्ते तु सव्ये तु वामे डमरुकं न्यसेत् ॥ १०४ ॥
अथवा पूर्वहस्तौ द्वौ वरदाभयसंयुतौ ।
पूर्ववत् परहस्तौ द्वौ घण्टा वा वामहस्तके ॥ १०५ ॥
सात्त्विकं ह्येवमाख्यातमथ राजसमुच्यते ।
शूलं खड्गं च घण्टा च दक्षिणे तु करत्रये ॥ १०६ ॥

---

१. 'वं', २. 'ल्या' घ. पाठः.

खेटकं च कपालं च नागपाशमदक्षिणे ।
तामसे तु धनुर्बाणं दक्षिणेऽदक्षिणे धृतम् ॥ १०७ ॥
शेषं राजसवत् ख्यातं रक्तकेशोर्ध्वमण्डलम् ।
उग्रदृष्टिसमायुक्तं नानानागविभूषितम् ॥ १०८ ॥
त्रिनेत्रं नग्नरूपं च क्षेत्रपालमिमं विदुः ।

अथवा,

व्यालम्बाग्रजटाधरं त्रिनयनं नीलाञ्जनाद्रिप्रभं
दोर्द्वन्द्वात्तकपालशूलमरुणस्रग्वस्त्रगन्धोल्बणम् ।
घण्टामेखलघर्घर(स्यनिबि ? ध्वनिमि)लङ्कुङ्कारभीमं विभुं
वन्दे संहितसर्पकुण्डलधरं तं क्षेत्रपालं सदा ॥ १०९ ॥

अपिच,

दंष्ट्रोग्रदन्तुरमहीश्वरभोगभूष-
माशाम्बरं करधृतोग्रगदाकपालम् ।
वृत्तोग्रचक्षुषमुदग्रपिशङ्गकेशं
तं क्षेत्रपालमनिशं + महं नमामि ॥ ११० ॥

अथ वामनः —

कृष्णाजिन्युपवीती स्याच्छत्री धृतकमण्डलुः ॥ १११ ॥
कुण्डली शिखया युक्तः कुब्जाकारो मनोहरः ।

अथ नृवराहः —

नृवराहं प्रवक्ष्यामि सूकरास्येन शोभितम् ॥ ११२ ॥
गदापद्मधरं धात्रीं दंष्ट्राग्रेण समुद्धृताम् ।
बिभ्राणं कोपरे वामे विस्मयोत्फुल्ललोचनाम् ॥ ११३ ॥

---

१. 'नर्मूर्तिः —' घ. पाठः.

नीलोत्पलधरां देवीमुपरिष्टात् प्रकल्पयेत् ॥ ११४ ॥
दक्षिणं कटिसंस्थं च बाहुं तस्य प्रकल्पयेत् ।
कूर्मपृष्ठे पदं चैकमन्यन्नागेन्द्रमूर्धनि ॥ ११५ ॥
अथवा सूकराकारं महाकाय क्वचिल्लिखेत् ।
तीक्ष्णदंष्ट्राग्रघोणास्यस्कन्धकर्णोर्ध्वरोमकम् ॥ ११६ ॥

अथ नृसिंहः —

नरसिंहाकृतिं वक्ष्ये रौद्रसिंहमुखेक्षणाम् ।
भुजाष्टकसमायुक्तां स्तेम्भपीनसमाश्रिताम् (?) ॥ ११७ ॥
हिरण्यकशिपुं दैत्यं दारयन्तीं नखाङ्कुरैः ।
ऊरोरुपरि विन्यस्य खड्गखेटकधारिणम् ॥ ११८ ॥
तस्यान्त्रमालां निष्कृत्य बाहुयुग्मेन बिभ्रतीम् ।
मध्यस्थिताभ्यां बाहुभ्यां दक्षिणे चक्रपङ्कजम् ॥ ११९ ॥
कौमोदकीं गदां शङ्खं बाहुभ्यामिति वामतः ।
नीलोत्पलपदच्छायां किं वा चम्पकसप्रभाम् ॥ १२० ॥
तप्तकाञ्चनसंकाशां बालार्कसदृशीं लिखेत् ।

त्रिविक्रमः—

तथा त्रिविक्रमं वक्ष्ये वामपादेन मेदिनीम् ॥ १२१ ॥
आक्रामन्तं द्वितीयेन साकल्येन नभस्तलम् ।

अथ मत्स्यमूर्तिः —

मत्स्यावतारिणं देवं मत्स्याकारं प्रकल्पयेत् ॥ १२२ ॥

अथ कूर्मः —

कूर्मावतारिणं देवं कमठाकृतिमालिखेत् ।

---

१. 'पिङ्गमु' घ. पाठः. २. 'स्तब्धपी' क. ख. पाठः.

अथ ब्रह्मा —

लिखेच्चतुर्मुखं देवं चतुर्बाहुं शुभेक्षणम् ॥ १२३ ॥
रत्नकुण्डलसंयुक्तं लम्बकूर्चोपवीतिनम् ।
कृष्णाजिनधरं गौरं शुक्लाम्बरविराजितम् ॥ १२४ ॥
दक्षिणं वरदं हस्तं तत्रान्यं शुभधारिणम् ।
कमण्डलुधरं वामं तथान्यं संयुतं शुचा ॥ १२५ ॥
बिभ्राणं चतुरो वेदान् पुरतश्चास्य विन्यसेत् ।
वामे पार्श्वे तु सावित्रीं दक्षिणे तु सरस्वतीम् ॥ १२६ ॥
आज्यस्थालीं पुरोभागे महर्षींश्च समन्ततः ।
हंसारूढं लिखेत् क्वापि क्वचिच्च कमलासनम् ॥ १२७ ॥
स्रष्टारं सर्वलोकानां ब्रह्माणं परिकल्पयेत् ।

अथ कुमारः —

विलिखेत् षण्मुखं देवं मयूरवरवाहनम् ॥ १२८ ॥
तरुणादित्यसङ्काशं बालभूषणभूषितम् ।
स्थानीये खेटके वापि कुमारो लिख्यते यदा ॥ १२९ ॥
भुजा द्वादश कुर्वीत खर्वटे चतुरो भुजान् ।
ग्रामे वने द्विबाहुः स्याल्लेखनीयो विचक्षणैः ॥ १३० ॥

अथ नागः —

नागानां वक्ष्यते रूपं नाभेरूर्ध्वं नराकृति ।
सर्पाकारमधोभागं मस्तके भोगमण्डलम् ॥ १३१ ॥
एकं फणं त्रयं वापि पञ्च वा सप्त वा नव ।
द्विजिह्वास्ते विधातव्याः खड्गचर्मकरैर्युताः[2] ॥ १३२ ॥

---

१. 'दा' ग. पाठः. २. 'पमक' ब. पाठः.

अथासुराः —

किरीटकुण्डलोपेतास्तीक्ष्णदंष्ट्रा भयानकाः ।
नानाशस्त्रधराः कार्या दैत्याः सुरगणद्विषः ॥ १३३ ॥

अथ दानवाः —

दानवा विकृताकारा भ्रुकुटीकुटिलाननाः ।
किरीटेन च कुब्जेन मण्डिताः शस्त्रपाणयः ॥ १३४ ॥

दंष्ट्राकरालवदना भ्रुकुटीकुटिलेक्षणाः ।
नानारूपा महाकाया नानाशस्त्रधरास्तथा ॥ १३५ ॥

अथ पिशाचाः —

उत्पर्वकृशकायास्ते चाराश्थिस्नायुविग्रहाः ।
ह्रस्वकीर्णशिरोजाः[1] स्युः पिशाचाश्चित्रकर्मणि ॥ १३६ ॥

अथ वेतालाः —

ईदृशा एव वेताला दीर्घदेहाः कृशोदराः ।
कपोलैः पूर्वजैर्मुक्ता लेखनीया मनीषिभिः ॥ १३७ ॥

अथ ग्रहाः ।

रक्तवर्णो महातेजा द्विबाहुः पद्मभृद् रविः ।
सप्तभिस्तुरगैर्युक्ते सर्परज्जुसमन्विते ॥ १३८ ॥

एकचक्रे[2] रथे तिष्ठन् पादाक्रान्तसरोरुहः ।
माणिक्यकुण्डलोपेतः पद्मरागकिरीटकः ॥ १३९ ॥

रक्ताम्बरधरो रम्यः सुव्यक्ताङ्गो मनोहरः ।
अनूरुः सारथिः कार्यः प्रतीहारौ च पार्श्वयोः ॥ १४० ॥

---

१. 'क' क. ख. ग. पाठः. २. 'क' घ. पाठः.

चण्डपिङ्गलनामानौ खड्गखेटकधारिणौ ।
चन्द्रश्चित्रे विधातव्यः श्वेताम्बरसमावृतः ॥ १४१ ॥

दशश्वेताश्वसंयुक्तमारूढः स्यन्दनं शुभम् ।
द्विभुजो दक्षिणे पाणौ गदां बिभ्रत् पृथूदरीम् ॥ १४२ ॥

वामस्तु वरदो हस्तः शशाङ्कस्य निरूप्यते ।
धरापुत्रस्य वक्ष्यामि लक्षणं चित्रकर्मणि ॥ १४३ ॥

चतुर्भुजो मेषगमश्चाङ्गारकसमद्युतिः ।
दक्षिणं पुस्तकं हस्तं वरदं परिकल्पयेत् ॥ १४४ ॥

ऊर्ध्वं शक्तिसमायुक्तं वामौ शुक्लगदाधरौ ।
सिंहारूढं सम्प्रवक्ष्ये कर्णिकारसमप्रभम् ॥ १४५ ॥

पीतमाल्याम्बरधरं स्वर्णभूषाविभूषितम् ।
वरदं खड्गसंयुक्तं खेटकेन समन्वितम् ॥ १४६ ॥

गदया च समायुक्तं बिभ्राणं दोश्चतुष्टयम् ।
एवं लिखेच्चन्द्रसूनुं बुधं ग्रहपतिं वरम् ॥ १४७ ॥

ततो देवगुरुर्लेख्यः शुक्रश्च भृगुनन्दनः ।
चतुर्भिर्बाहुभिर्युक्तश्चित्रकर्मविशारदैः ॥ १४८ ॥

वरदौ साक्षसूत्रौ च कमण्डलुधरौ तथा ।
दण्डिनौ च तथा बाहू बिभ्राणौ परिकल्पयेत् ॥ १४९ ॥

सैंहिरिं नीलसमाभासं गृध्रारूढं चतुर्भुजम् ।
वरदं वामसंयुक्तं चापशूलधरं लिखेत् ॥ १५० ॥

सिंहासनगतं राहुं करालवदनं लिखेत् ।
वरदं खड्गसंयुक्तं खेटशूलधरं क्रमात् ॥ १५१ ॥

---

१. 'बुद्धकं' क. ग. पाठः, 'तद्धरं ह' घ. पाठः.

धूम्रा द्विबाहवः सर्वे वरदाश्च गदाधराः ।
गृध्रपृष्ठसमारूढा लेखनीयास्तु केतवः ॥ १५२ ॥

अथवा,

प्रागादिदिशासंस्थाः
शशिगुरुबुधभार्गवाः क्रमेण रयुः ।
आग्नेयादिष्वश्रिषु
धरणिजमन्दाहिकेतवः पूज्याः ॥ १५३ ॥
शुभ्रसितपीतशुक्ला
रक्तासितधूम्रकृष्णकाः क्रमशः ।
चन्द्राद्याः केत्वन्ता
वामोरुन्यस्तवामकरलसिताः ॥ १५४ ॥
अपरकराभयमुद्रा
विकृतमुखोऽहिः कराहिताञ्जलियुक् ।
दंष्ट्रोग्रास्यो मन्दः
सुवर्णसदृशांशुकादिभूषश्च ॥ १५५ ॥
अरुणसरोरुहसंस्थ-
स्त्रिदृगरुणोऽरुणसरोजयुगलधरः ।
कलिताभयवरदकरो
द्युतिबिम्बोऽमितभूषणस्त्विनोऽवतु वः ॥ १५६ ॥

अथ गृध्राः —

गृध्राः किरीटिनः कार्या नवतालप्रमाणकाः ।
रत्नकुण्डलकेयूरहाराभरणभूषिताः ॥ १५७ ॥

इति शिल्परत्ने उत्तरभागे इन्द्रादिदेवतांध्यानप्रकरणं नाम
पञ्चविंशोऽध्यायः ॥

---

१. 'ताप्र' ख. पाठः.

## *अथ षड्विंशोऽध्यायः ।

### अथ बिम्बदोषाः ।

मांसवर्णैर्नखैर्वाथ पद्मताम्रनिभैस्तथा ।
संयुक्ताः प्रतिमा यत्र तत्रस्थाः सुखिनो नराः ॥ १ ॥

†श्वेतैर्नखैर्दुःखिनश्च शूलाग्रैः स्फटिकोपमैः ।
दरिद्रतां भ(व ? ज)न्त्येव तथैव हरितै(र्नखैः) ॥ २ ॥

(अङ्गुल्यः) प्रोन्नताग्राश्चेद् भवन्ति सुखदाः सदा ।
पादाङ्गुष्ठमतिक्रम्य प्रदेशिन्यनिवर्तयेत् (?) ॥ ३ ॥

लभन्ते तत्रदेशस्था नारीभोगमनुत्तमम् ।
कनिष्ठायां तु दीर्घायां बहुवित्तकरो भवेत् ॥ ४ ॥

अङ्गुल्यः कुटिलाः शुक्ला विरला दुःखभागिनः ।
अस्वेदनौ मृदू रक्तौ पुष्पौ चारुदलाविव ॥ ५ ॥

लग्नाङ्गुली सुपार्ष्णी च सिराविरहितौ तथा ।
मांसलौ गूढगुल्फौ च कूर्मपृष्ठसमावपि ॥ ६ ॥

भवेतां चरणौ यस्य तत्रस्था राजवल्लभाः ।
विवृतौ शूर्पसङ्काशौ सस्वेदौ ह्रस्वपाण्डरौ ॥ ७ ॥

रोमशौ चरणौ यस्य तत्रस्था दुःखभागिनः ।
दीर्घपादतले रेखा हलाङ्कुशनिभा यदि ॥ ८ ॥

सार्वभौमत्वदं लक्ष्म तदि(नं ? दं) नात्र संशयः ।
क्रमाद् वृत्ते प्रशस्येते जङ्घे स्निग्धे त्वरोमके ॥ ९ ॥

---

* घ-मातृकायामेतदादि पञ्चत्रिंशाध्यायारम्भावधिको भागो लुप्तः ।
† इतःप्रभृति क-मातृकायां पत्राणि पञ्च लुप्तानि ।

सिंहव्याघ्रोपमे जङ्घे धनिनां परिकीर्तिते ।
काकजङ्घो भवेद् राजा मृगजङ्घोऽपि तादृशः ॥ १० ॥

जङ्घे(व ? च) मीनवद्[1] यस्य सोऽपि साम्राज्यभाग् जनः ।
स्थूलजङ्घा दीर्घजङ्घा जायन्ते पथिगाः सदा ॥ ११ ॥

सृगालकोलजङ्घा ये ते नरा दुःखभागिनः ।
इदं तु बिम्बे सञ्चिन्त्यं तथा वृत्ते च जानुनी ॥ १२ ॥

मांसले च समे शब्दहीने गूढतरास्थिनी ।
किञ्चिदुन्नतयुक्ते तु भवेतां सर्वमङ्गले ॥ १३ ॥

ऊरू करिकराकारौ रोमभिः परिवर्जितौ ।
सुश्लक्ष्णौ निबिडौ नातिस्थूलौ नातिकृशौ वरौ ॥ १४ ॥

सुखदं मांसलं स्फिक् चेद् व्याघ्रभेकस्फिगेव हि ।
तथैव दुःखदं ज्ञेयं शुष्कस्फिङ् नैव संशयः ॥ १५ ॥

मृगेन्द्रकटिसङ्काशकटिश्चेत् पार्थिवत्वदा ।
कामित्वं स्यात् कोलकटेः++++++++॥ १६ ॥

कर्कटोष्ट्रकटिस्तद्वत् श्वकटित्वं सुतापहम्[2] ।
मेहनं धनदं ह्रस्वं स्थूलं पुत्रार्थनाशदम् ॥ १७ ॥

(अ ? पु)त्रवृद्धिकरं ज्ञेयमेतद् दक्षिणतोन्नतम् ।
माणिनी सोन्नते स्निग्धे धनस्त्रीरत्नभाजनम् ॥ १८ ॥

मध्यनिम्ने भवेन्निःस्वो मध्यादग्रे विशेषतः ।
ईषद्रक्ते समृद्धिः स्यात् पाण्डरे धनहीनता ॥ १९ ॥

---

१. 'मिग्नव' ख. ग. पाठः. २. 'व' ग. पाठः.

मणौ च मलिनच्छाये दारिद्र्यमुपजायते ।
मुष्कयोरुभयोः साम्ये राजराजत्वमाप्नुयात् ॥ २० ॥
लम्बयोर्ह्रस्वयोश्चैव मुष्कयोर्दीर्घजीविनः ।
एक एव यदा मुष्कस्तदा स्यान्मरणं जलात् ॥ २१ ॥
वृत्तविस्तीर्णगम्भीरनाभौ सुखमतीव हि ।
विषमा बिलमध्यस्था नाभिर्दारिद्र्यकारिणी ॥ २२ ॥
दक्षिणावर्तनी शस्ता वामावर्तापकारिणी ।
लम्बोदरो भवेदाढ्यो बहुभोगः समोदरे ॥ २३ ॥
कृशोदरे लघुः कामी दुःखभागी महोदरे ।
घटोदरे भवेन्निःस्वस्तथैव विकृतोदरे ॥ २४ ॥
सर्पोदरे दरिद्रत्वं तथा निम्नोदरेऽपिच ।
बल्यैकया शस्त्रमृत्युः स्त्रीजितत्वं वलिद्वये ॥ २५ ॥
आर्यः स्यात् त्रिवलीयुक्ते पुंटं[1] चतुर्वलीयुते ।
सुतुल्यौ धनदौ पार्श्वौ निर्धनाख्यौ च वक्रकौ ॥ २६ ॥
स्निग्धं विशालमुत्तुङ्गमुरश्चेद् राजलक्षणम् ।
सिरालं विषमं निम्नं वक्षश्चेद् विपदास्पदम् ॥ २७ ॥
समौ चेच्चूचुकौ भूप। लम्बितौ प्रेष्यतां गताः ।
अदृश्यौ तन्तुनाशाख्यौ विषमौ दुःखदौ स्मृतौ ॥ २८ ॥
उच्चकक्षसमायु(क्तौ ? क्ता)धनधान्यविवर्धनाः ।
समकक्षश्च तत्तुल्यो निर्धनो निम्नकक्षकः ॥ २९ ॥
दुःखी विषमकक्षः स्यादथ पृष्ठस्य लक्षणम् ।
अलग्नं मांसलं पृष्ठं मग्नवंशं शुभावहम् ॥ ३० ॥

---

१. 'प्रदं च' ग. पाठः.

निन्दितं विपरीतं चेद् दुःखदारिद्र्यकारणम् ।
उन्नतैर्जन्तुभिर्ज्ञेयं धनधान्यादिभोगदम् ॥ ३१ ॥
तैरेव विषमैर्निम्नैर्विज्ञेयं धनवर्जितम् ।
सुश्लिष्टौ विपुलावंसौ नि(मे ? र्वे)ली(तौ ? कौ) सुखावहौ ॥
रोमशौ (बल ? वालि)संयुक्तौ निर्मांसौ दुःखदायिनौ ।
बाहू करिकराकारौ वरावाजानुलम्बिनौ ॥ ३३ ॥
गूढसंश्लिष्टसन्ध्याढ्यौ विपरीतौ विवर्जितौ ।
लाक्षारुणं पीवरं च मध्ये निम्नं मनागपि ॥ ३४ ॥
तलं शुभदमाख्यातं विपरीतं विनाशकृत् ।
उन्नते दानशीलत्वं शुष्के दारिद्र्यदं भवेत् ॥ ३५ ॥
विषमे तु तले तद्वत् पापदं व्याघ्रपाणिकम् ।
हस्तस्याङ्गुलयो दीर्घाश्चिरजीवी नरः स्मृतः ॥ ३६ ॥
वैदुष्यदा विवलिकाः स्थूला दारिद्र्यदायिनः ।
मूढत्वदा बहिर्नेता[1] पूर्वोक्तान्नखरे वदेत् ॥ ३७ ॥
शूरः स्यान्महिषग्रीवः कम्बुग्रीवः क्षमापतिः ।
शुष्कग्रीवो भवेन्निःस्वः समग्रीवः समो भवेत् ॥ ३८ ॥
अभिन्नाग्रं मृदु स्निग्धं घनं श्मश्रु प्रशस्यते ।
आरक्तं विषमं कूर्चं स्थूलरोमाशोभनम् ॥ ३९ ॥
पूर्णचन्द्रसमाकारं वदनं त्वतिशोभनम् ।
निःस्वाः स्युर्दीर्घवदनाः समाना[2] वर्तुलं मुखम् ॥ ४० ॥

१. 'नें' ख. पाठः. २. 'शरानां व' ग. पाठः.

चतुरश्रानना धूर्ता निम्नास्यः पुत्रवर्जितः।
भीतास्यः पापकारी स्यादेवं वदनलक्षणम् ॥ ४१ ॥

रक्ता स्निग्धा शुभा जिह्वा पापी स्याच्छ्यामजिह्वकः।
स्थूलजिह्वश्च तत्तुल्यः कृष्णजिह्वस्तथैव च ॥ ४२ ॥

कृष्णा च कर्बुराधस्ताद् रसना दुःखदा सदा।
सुवर्णं रक्तवर्णं च तालु दुःखतरं मतम् ॥ ४३ ॥

लम्बमांसलकर्णाः स्युः पापिनः शुष्ककर्णकाः।
शु(ष्क?क)नासः सुखी प्रोक्तश्चिरायुः शुष्कनासिकः॥४४॥

वक्राग्रा धनदा नासा क्रूरा दक्षिणवक्रका।
समाल्प++++ दुःखिनो मानवाः स्मृताः ॥ ४५ ॥

शङ्कुकर्णो महाभागो रोमकर्णाः शतायुषः।
विस्तीर्णकर्णा धनिनः सिंहकर्णस्तु निष्ठुरः ॥ ४६ ॥

कृपणा ह्रस्वकर्णाः स्युः सुभगाः श्याम(कर्णकाः)।
समाल्पविवरा मूर्ध्नि नासा भाग्यप्रदायिनी ॥ ४७ ॥

धनिनः पद्मपत्राक्षा रक्तान्ताक्षास्तु श्रीप्रदाः[1]।
महाक्षा मधुपिङ्गाक्षा गजाक्षाश्च महत्तराः ॥ ४८ ॥

गम्भीरनेत्रा धनिनः स्थूलाक्षश्चैव तत्समः।
सुभगाः श्यामनयना बुधा नीलोत्पलेक्षणाः ॥ ४९ ॥

अधोदृष्टिश्चोर्ध्वदृष्टिः सततं दुःखदा नृणाम्।
पार्श्वदृष्टिश्च तत्तुल्या समदृष्टिः शुभावहा ॥ ५० ॥

जिह्माः स्युः सारमेयाक्षास्तस्करा मर्कटेक्षणाः।
निःस्वा निर्गतनेत्राः स्युः पापा मार्जारलोचनाः ॥ ५१ ॥

१. 'न्त' ग. पाठः.

भ्रुवा + त्यन्तयाल्पायुर्विशालोन्नतया सुखी ।
भ्रुवा विषमया निःस्वो बालेन्दुनतया धनी ॥ ५२ ॥
उन्नतैर्विपुलैः शङ्खैर्भवन्ति (पि ? व)शिनो नराः ।
निम्नयार्थेन सन्त्यक्तास्तनयैश्च विवर्जिताः ॥ ५३ ॥
ललाटैर्विषमैर्निःस्वा धनिनोऽर्धेन्दुसन्निभैः ।
केशैरेकै(क)शो जातैः स्निग्धैः कृष्णैश्च कुञ्चितैः ॥ ५४ ॥
अभिन्नाग्रैश्च मृदुभिर्बहुभिस्तैर्महीपतिः ।
एकमूलैश्च बहुभिर्विषमैरतिपिङ्गलैः ॥ ५५ ॥
स्थूलैर्विशीर्णपर्यन्तैर्ह्रस्वै रूक्षैर्दरिद्रता ।
एकैकेन भवेद् रोम्णा राजा द्वाभ्यां (त्व ? तु)पण्डितः॥५६॥
त्रिभिर्निःस्वश्चतुर्भिस्तु सर्वदा दुःखभाग् जनः ।
सिंहेभवृषहंसानां गमनं शुक(हंसयोः ? बर्हिणोः) ॥ ५७ ॥
गमनेनानुकुरुते यो नरः स महीपतिः ।
मेषोष्ट्रमहिषोलूकवराहबलिभु(क्कवि: ? क्च्छ्वभिः)॥ ५८ ॥
समाना स्याद् गतिर्यस्य स पुमान् भाग्यवर्जितः ।
अङ्गुष्ठमध्यसन्धिस्थयवेन स्या(द्) धनी नरः ॥ ५९ ॥
अङ्गुष्ठमूलगेनापि बहुपुत्रो निरूप्यते ।
स्निग्धाभिः कररेखाभिर्निम्नाभिर्धनवान् भवेत् ॥ ६० ॥
अस्निग्धाभि(न ? र)नि(ष्ठा ? म्ना)भिर्भवेद् दारिद्र्यभाग् [ जनः ।
मणिबन्धोत्थिता रेखास्तिस्रः करतलं गताः ॥ ६१ ॥
राज्यकारणमित्याहुः सामुद्रमतवेदिनः ।
मीनयुग्मकरः सत्री मीनपुच्छकरः सुखी ॥ ६२ ॥

आका(रा ? रो) जायते पाणौ रेखया वक्ररूपया ।
शङ्खातपत्रशिबिकागजपद्माश्वसै(स्विभिः ? न्निभः) ॥६३॥

चक्रवर्ती भवेद् राजा जायते नास्ति संशयः ।
गवाढ्यो दामरूपाभिः स्वस्तिकाकृतिभिर्धनी ॥ ६४ ॥

चक्रखड्गधनुःप्रासतोमराकृतिभिर्नृपः ।
अङ्गुष्ठमूलरेखाभिः (स्थूलाभिः) पुत्रवान् भवेत् ॥ ६५ ॥

तत्रत्यसूक्ष्मरेखाभिः कन्यां जनयति ध्रुवम् ।
प्रदेशिनीतलं प्राप्तरेखाः स्युः शतजीविनः ॥ ६६ ॥

न्यूनाभिश्छिन्नरूपाभिर्द्रुमपात[1]द् भवेन्मृतिः ।
अरेखा बहुरेखाश्च मानवा धनवर्जिताः ॥ ६७ ॥

नखा दन्ता रोमकेशाव्योमच्छायाः(?) सुखप्रदाः ।
समन्ताद् भूमिसंलग्नं यस्याश्चरणयोस्तलम् ॥ ६८ ॥

अष्टौ पुत्रान् प्रसूते सा पत्युः सन्तानवर्धना(त् ? न्) ।
अङ्गुष्ठं समतिक्रम्य दीर्घा यस्याः प्रदेशिनी ॥ ६९ ॥

संरक्षितापि यत्नेन सा भवेद् व्यभिचारिणी ।
दीर्घा स्यान्मध्यमा यस्याः सर्वा वा चरणाङ्गुली ॥ ७० ॥

दुःशीला दुर्भगा नित्यं सा कन्या निन्दिता बुधैः ।
काकजङ्घा च या नारी या च रोमशजङ्घिका ॥ ७१ ॥

अचिरेण परिज्ञेयं वैधव्यमुभयोस्तयोः ।
अंसौ च पृथुलौ यस्याः सा दासी समुदाहृता ॥ ७२ ॥

---

१. 'साविभः', २. 'दा' ग. पाठः.

ऊरू कृशौ रोमशौ वा यस्याः स्यातां भुजावपि ।
भर्तारं त्वरितं हन्ति विवाहे सापि वर्जिता ॥ ७३ ॥
अश्वत्थदलसङ्काशं गूढगुह्यमणिस्थितम् ।
यस्याः सा सुभगा कन्या धन्या पुण्यैरवाप्यते ॥ ७४ ॥
नितम्बबिम्बभृद् दृष्टं[1] विस्तीर्णं शस्यते स्त्रियाः ।
मध्यं वलित्रयोपेतं कृशं शुभसरोमशम् ॥ ७५ ॥
स्तनौ वृत्त(स्त ? घ)नौ शस्तावुरो रोमविवर्जितम् ।
ग्रीवा रेखात्रयोपेता बिम्बाकारोऽधरोऽधरः ॥ ७६ ॥
ग्रीवया स्थूलया चण्डी दरिद्रा ह्रस्वया तया ।
कुलस्य नाशिनी निम्नदीर्घया जायते पुनः ॥ ७७ ॥
श्मश्रुभिः सहिता कन्या विषमश्रवणा च या ।
सा विरुद्धा भवेद् भर्तुरुत्तरोष्ठे तथोन्नता ॥ ७८ ॥
विषमा दशना यस्या विरलाः स्थौल्यभागिनः ।
पूर्वाचार्यैः परिज्ञेया सर्वक्लेशकरी परा ॥ ७९ ॥
द्वितीयचन्द्रसङ्काशभ्रूयुगा समनासिका ।
ऋज्वङ्गुलीका रमणी पत्युः संपत्करी सदा ॥ ८० ॥
पार्श्वे गले ललाटे वा वामतोला(जध ? ञ्छ)नान्विता ।
तस्मिंस्तिलकिता चापि जनयेत् प्रथमं सु(ख ? त)म् ॥ ८१ ॥
प्रसन्नवदना राज्ञी लम्बकेशी तपस्विनी ।
दुःखिताबहुकेशी स्यात् सामुद्रमतमीदृशम् ॥ ८२ ॥
कोष्ठाब्जकलशाकारा रेखा यस्यास्तथैव च ।
तोरणं स्वस्तिकं चक्रं करे बाहुतलेऽपिवा ॥ ८३ ॥

---

१. 'दिष्टं' ग. पाठः.

यस्या विभाव्यते स्त्रीणामाधिपत्यं लभेत सा ।
पद्मरेखा करे वामे या विरती[1] वराङ्गना (?) ॥ ८४ ॥

इत्यादिलक्षणं युक्त्या बिम्बे चैव निरूप्यताम् ।
यदुक्तं तत्फलं सर्वं तत्र +++देदिदम् ॥ ८५ ॥

इति शिल्परत्ने उत्तरभागे बिम्बदोषलक्षणं नाम
षड्विंशोऽध्यायः ॥

## अथ सप्तविंशोऽध्यायः ।

### अथ पीठादिलक्षणम् ।

तत्र पूर्वं पद्मपीठं —

पद्मं तालसमुच्छ्रयं द्विगुणविस्तारं च षोढा कृते
मूले पट्टमिलांशतो द्वितयतोऽस्याधस्तनाष्टच्छदम् ।
अङ्घ्र्यूनप्रथमब्जमध्यमुपरिष्टादष्टपत्रं त्रिभि-
र्भागैः पट्टयुतं करोतु कमलेनामात्र पीठोच्छ्रयः ॥ १ ॥

आसने शयनादौ तु तत्तद्योग्यविशालकम् ।
वृत्तं वायतवृत्तं वा पद्मं कुर्याद् यथोचितम् ॥ २ ॥

अथ नालः —

विंशत्या प्रतिमाङ्गुलैः प्रविततं वृन्ते तया सैकया
नालं सद्वितयापिवाथ वितते रष्टाचलाङ्गांशकैः ।
अन्ते हीनवितानमारचयतु ब्रह्मोपलान्तायतं
तुर्यश्रं सकलेषु वैधसमिदं वृत्तं क्वचिच्चैश्वरम् ॥ ३ ॥

---

१. 'वित्तीव व' ख. पाठः.

अथ पीठं —

बिम्बे बिम्बोच्छ्रयसमसमायामविस्तारयुक्तं
स्वव्यासार्धोच्छ्रयपरिगतं च प्रकुर्वीत पीठम् ।
लिङ्गव्यासत्रिगुणितविततात्यतिभ्यां[1] समेतं
लिङ्गे स्वाष्टाश्रकसमसमुच्छ्रायि तुर्यश्रूरूपम् ॥ ४ ॥
पूजांशद्विगुणं हीनं श्रेष्ठं लिङ्गोन्नतेः समम् ।
नवैते लिङ्गविस्तारास्तयोर्मध्येऽष्टभाजिते ॥ ५ ॥
विस्तारार्धोच्छ्रयं नीचं श्रेष्ठं द्वित्र्यांशकं[2] ततः ।
विष्कम्भत्रिगुणं वाथ नाहतुल्यं विशालकम् ॥ ६ ॥
गर्भव्यासत्रिभागैकं चतुर्भागैकमेव वा ।
विष्कम्भकर्णत्रिगुणं द्विगुणं वापि विस्तृतम् ॥ ७ ॥
पीठं कुर्यात्तु विष्ण्वंशसमानोच्चं हि सर्वथा ।
मण्डनाय स्वविस्तारादष्टांशमधिकं ततः ॥ ८ ॥
सर्वेषामपि पीठानां जन्मान्तं मूलविस्तृतिः ।
पीठाग्रस्य च विस्तारः स्यान्महापट्टिकान्तकम् ॥ ९ ॥
नागरादित्रयाणां तु पीठलक्षणमुच्यते ।
त्रिखण्डलिङ्गायामेन तुल्यव्यासमिहोत्तमम् ॥ १० ॥
इत्यादिपूर्वगदितैं[3]नवकं नागरे स्मृतम् ।
वेसरेऽप्युत्तमं त्वेवं[4] नीचे तन्नवसप्तकम् ॥ ११ ॥
तयोर्मध्येऽष्टधा भक्त्वा[5] पीठव्यासा नव स्मृताः ।
अष्टांशे ब्रह्मविष्ण्वंशे त्रिद्व्येकांशमधस्त्यजेत् ॥ १२ ॥

१. 'णकवि' ख. पाठः. २. 'त्र्यं', ३. 'तं', ४. 'त्वै', ५. 'क्त्वा' ग. पाठः.

शेषमानं तु नीचादि पीठोच्चं द्राविडे मतम् ।
अथ वेसरलिङ्गस्य द्व्यष्टांशे परिणाहके ॥ १३ ॥
मुख्यं हि तत्समं व्यासं जगत्यंशैस्तथा समम् ।
विष्णुतुल्योच्छ्रयं तत्र स्याच्च चतुर्थांशाधिकं तु वा ॥ १४ ॥
सर्वेषामपि लिङ्गोच्चं पीठोच्चादवशेषितम् ।
पीठमूलस्य विस्तारात् वसुनन्दिदिगंशकैः ॥ १५ ॥
हीनः पीठाग्रविस्तारे हीने मध्ये तथोत्तमे ।
नागरादित्रयं पीठं क्रमेण सुसमाहितम् ॥ १६ ॥
चतुरश्रं च वस्वश्रं वृत्तं चैतत् त्रिधा मतम् ।
पीठं निष्कललिङ्गानां विज्ञेयं सर्वतः समम् ॥ १७ ॥
आयतं प्रतिमानां स्यात् सकले वार्धचन्द्रकम् ।
चतुर्दशांशे पीठोच्चे भागात् स्यान्मूलपट्टिका ॥ १८ ॥
पद्मं त्रिभिर्भृगधार्शमर्धेनाब्जं ततो भवेत ।
वृत्तं द्व्यंशं पुनः पद्ममर्धमर्धेन कम्पकम् ॥ १९ ॥
सार्धद्व्यंशेन कण्ठोच्चमर्धेनोर्ध्वाम्बुजं स्मृतम ।
अर्धेन कम्पो द्व्यंशः स्यात् क्रमेणैवोर्ध्वपट्टिका ॥ २० ॥
कम्पाज्यधारिण्यर्धेन स्यादेवं मेरुसुन्दरम् ।
अष्टादशांशे पीठोच्चे जन्म द्व्यंशमहोदितम् ॥ २१ ॥
चतुर्भिर्जगतीं कुर्यात् कुमुदं त्रिभिरेकतः ।
कम्पं कण्ठमथैकेन स्रक्पाशाद्व्जमन्ततः ॥ २२ ॥
वृत्तं चतुर्भिस्त्वंशेन पद्ममर्धेन कम्पकम् ।
त्रिभिः कण्ठं तथांशेन वाजनं त्वथ भागतः ॥ २३ ॥

---

१. 'तस्य चतु' ग. पाठः.

नि(द्रवं? द्रां तु) पट्टिकां द्व्यंशादर्धात् पद्माज्यधृग् भवेत्।
लक्ष्मीसुन्दरसंज्ञं तु पीठमेवं प्रसिध्यति ॥ २४ ॥

पीठोच्चे षोडशांशे तु वाश्विभूतकराब्धिभिः।
करेणैकेन जगतीमब्जं वेत्रं च पङ्कजम् ॥ २५ ॥

पट्टिकामाज्यधारां च विष्णुसम्मीलनाभिधे।
अष्टादशांशे पीठोच्चे भवेत् सार्धांशतः खुरम् ॥ २६ ॥

सार्धत्रयेण जगती सार्धेनाब्जं धृगर्धतः।
पट्टं चार्धेनोपपट्टं कण्ठं त्र्यंशं तदूर्ध्वतः ॥ २७ ॥

उपपट्टं करोत्वर्धं पट्टमर्धेन चोपरि।
द्व्यंशं वाजनमुद्दिष्टमर्धं पट्टाज्यधृग् भवेत् ॥ २८ ॥

पद्मभद्रमिदं पीठं विज्ञेयमतिशोभनम्।
धृत्यंशे पीठतुङ्गे तु घृतवार्यर्धतः स्मृता ॥ २९ ॥

अर्धेन कम्पः सार्धाभ्यां भागाभ्यां वाजनं भवेत्।
पट्टोपपट्टावर्धाभ्यां कण्ठोंऽशौ पट्टमर्धतः ॥ ३० ॥

उपपट्टोर्ध्वमष्टाश्रः कुम्भः स्याच्चतुरंशतः।
पञ्चांशा जगती तद्वत् सार्धांशेन खुरं भवेत् ॥ ३१ ॥

एतत् सामाङ्गभद्राख्यं पीठं भवति शोभनम्।
अत्यष्टयंशे तु पीठोच्चे खुरं भागेन वप्रकम् ॥ ३२ ॥

चतुर्भिश्च दलं सार्धादर्धं कम्पो धृगंशतः।
कम्पोऽर्धमर्धेनाम्भोजं वृत्तं (चावर्ति? द्वावर्ध)तो दलम् ॥

पट्टमर्धेन कण्ठोंऽशः कम्पोऽर्धेनार्धमम्बुजम् ।
द्व्यंशं वाजनमर्धेन पद्मं क्षेपणमर्धतः ॥ ३४ ॥
एतद्धि रुद्रकान्ताख्यं पीठमुक्तं सुशोभनम् ।
अतिधृत्यंशिते पीठे भागं भूगतमंशकौ ॥ ३५ ॥
वप्रं महाब्जं वेदांशैर्धृगर्धं वेत्रमंशतः ।
अर्धं गलं चार्धमब्जं वृत्तमध्यर्धतो भवेत् ॥ ३६ ॥
अर्धेनोर्ध्वदलं कुर्याद् वेत्रमंशं धृगर्धतः ।
अंशेन वेत्रं सार्धांशैस्त्रिभिरूर्ध्वाम्बुजं भवेत् ॥ ३७ ॥
अध्यर्धं घृतभृच्चेति सोमकान्तमुदीरितम् ।
पीठोच्चे षोडशांशे तु भागाभ्यां मूलपट्टिका ॥ ३८ ॥
महापद्मं तु वेदांशैर्धृगर्धेनांशतो गलम् ।
अर्धेन पद्मं वृत्तं तु (भागेनार्धेन पङ्कजम् ॥ ३९ ॥
धृगर्धमूर्ध्वपद्मं तु) चतुर्भिरथ पट्टिका ।
द्व्यंशेन घृतभृत् प्रोक्तमेतत् सर्वाङ्गभद्रकम् ॥ ४० ॥
पीठोच्चे षोडशांशेऽश्विशरार्धैकार्धसागरैः ।
नेत्रेन्दुभिर्जगत्यब्जधृग्वेत्रं धृक् चपङ्कजम् ॥ ४१ ॥
पट्टिका चाज्यभृच्चेति श्रीकरे स्याद् यथाक्रमम् ।
एकस्मिन्नेव सार्धांशाज्जगत्यर्धेन कम्पकम् ॥ ४२ ॥
(पट्टिकाधः स्ववेदांशात् सकम्पा पुष्टिवर्धने ।
पीठोदये षोडशांशे खुरं द्व्यंशमथार्धतः ॥ ४३ ॥
क्षेपणं सार्धवेदांशैः) पद्ममर्धेन कम्पकम् ।
धृगर्धं वज्रमेकं स्यादूर्ध्वाब्जं वेदभागतः ॥ ४४ ॥

अ(धः?र्ध) क्षेपणमंशौ द्वौ पट्टिकार्धेन चाज्यधृक्।
सामान्यं नागरादीनां सौम्यं पीठमिदं स्मृतम्॥ ४५॥

एवं द्वादशभेदेन पीठानां लक्ष्म वर्णितम्।

अथ सामान्यपीठं—

द्व्यष्टांशे शिवपीठके क्षितिशराब्धीन्द्वंशकैः पादुकं
प्रादध्याज्जगतीं तथा कुमुदकं तत्पट्टिकां च क्रमात्।
अंशाभ्यां गलमंशकेन गलपट्टिं जागतेऽब्ध्यंशिनि
ग्रीवान्तेऽर्धयुतद्वयेन वलभिं शिष्टेन पट्टिं सदा॥ ४६॥

चतुर्दशपकारेण पीठानीत्यब्रवीन्मयः॥ ४७॥

वेदर्तुवसुसूर्याश्रैः षोडशाश्रं च वर्तुलम्।
एतेषामायतैः षड्भिस्त्र्यश्रं चार्धेन्दुसन्निभम्॥ ४८॥

पीठे मुक्त्वा प्रतिष्ठाविधिमुदधिविभागं विधायावशिष्टं
द्वाभ्यामाधाय पाथोवलयमुदकधात्रीं विधायांशकेन।
शिष्टेनाधाय तद्वेष्टनमथ तदुद(यः?क्)त्र्यंशविस्तारदैर्घ्यं
कुर्यादष्टाश्रमाशांशककृतजलकुल्यं कृशाग्रं प्रनालम्॥४९॥

प्राक्प्रत्यङ्मुखबिम्बानां पीठमुत्तरनालकम्।
दक्षिणोदङ्मुखानां तु पूर्वनालं प्रकल्पयेत्॥ ५०॥

पीठव्यासत्रिवेदांशं नालमूलस्य विस्तृतम्।
आयामं तत्समं तस्मात् त्रिचतुर्भागहापनात्॥ ५१॥

कुर्यान्नालाग्रविस्तारं तन्मूलविकृतौ पुनः।
मूलादर्धत्रिभागं वा गोमुखाकारमाचरेत्॥ ५२॥

गजोष्ठसदृशं वाथाप्युन्नताग्रं मनाक् शुभम् ।
नालतारत्रिभागैकं खातं व्यासांशतः समम् ॥ ५३ ॥
पीठमध्ये तु कौबेर्यां नालमित्थं प्रकल्पयेत् ।
स्यादूर्ध्वपट्टबहलं समं पादाधिकं तु वा ॥ ५४ ॥
अध्यर्धं वाज्यभृद्व्यासो मूल(घा ? खा)तं च तत्समम् ।
आलिङ्गमूलपर्यन्तं तत् क्रमेणोन्नतं भवेत् ॥ ५५ ॥
पीठोपलं त्वेकभागं ह्येकमेवोर्ध्वमण्डनम् ।
अधोमण्डनमेकं वा स्यान्नैकं चोपपत्तितः ॥ ५६ ॥
तत्र मध्यं (ज ? वि)ना कोणं सन्धयेत् सुन्दरं यथा ।
उपर्यङ्गावसानं तदूर्ध्वसन्धानमाचरेत् ॥ ५७ ॥
शिवभागस्त्वधःपीठान्न किञ्चिदवलम्बनम् ।
उन्नतोऽपिच दोषाय तस्मात् तौ परिवर्जयेत् ॥ ५८ ॥
निस्सन्धिकं भवेत् पीठं प्रशस्तं शिलयैकया ।
तदलाभेऽप्येकयैव प्रकुर्यादूर्ध्वमण्डनम् ॥ ५९ ॥
क्षुद्रे महति मध्ये च स्यादधः सन्धिमण्डनम् ।
उपर्युपरि पीठानां सन्धिरङ्गावसानके ॥ ६० ॥
नालमध्ये तथा मध्ये कर्णे सन्धिर्न शस्यते ।
युञ्जीयाद् दक्षिणे वामे दीर्घादीर्घं यथाक्रमम् ॥ ६१ ॥
त्रिखण्डं नैकखण्डं वा युक्त्या कुर्यादधोगतम् ।

अथ पादशिला —

बिम्बे नपुंसकशिलां निजनालमूल-
विस्तारतोऽधिचरणांशदलांशतानाम् ।

द्विघ्नप्रथां च विदधीत निजप्रथार्ध-
पादोनतत्समसमुच्छ्रयसंप्रपन्नाम् ॥ ६२ ॥
भक्त्वा त्रिधाङ्घ्रिद्वषदुच्छ्रयमेकमंशं
पीठे द्विभागमुपवेशयतूर्वरायाम् ।
हृत्येकार्धताङ्गुलिमितं खनतूत्तमादि-
ब्रह्माश्ममूर्ध्न्युचितनालनिवेशनाय ॥ ६३ ॥

लिङ्गायामसमो नपुंसकशिलाव्यासो वरिष्ठोऽवरः
पूजांशद्विगुणस्तदन्तरमितावष्टांशितायां क्रमात् ।
अंशार्धार्धमममध्यमादिकविधिर्व्यासार्धतोऽङ्घ्र्यन्तिम-
श्चोत्सेधश्च तथात्र लिङ्गविनिवेशार्हश्च कार्योऽवटः ॥ ६४ ॥

अथवा लिङ्गविष्कम्भाच्छ्रेष्ठा स्याद् द्विगुणा घना(त्) ॥
विस्ताराध्यर्धतो नीचा भवेद् ब्रह्मशिला क्वचित् ।
खातं ब्रह्मशिलामध्ये ब्रह्मभागोपमं भवेत् ॥ ६६ ॥
प्रविशेद् ब्रह्मभागं तु नीरन्ध्रं च यथा भवेत् ।
नन्द्यावर्तसमाः कार्याश्चतस्रस्तु शिलाः क्रमात् ॥ ६७ ॥
पीठब्रह्माश्मनोर्मध्ये प्रादक्षिण्येन योजयेत् ।

अथ नागरादिब्रह्मशिला —

द्विगुणं लिङ्गविस्तारात् *त्रिगुणं वेदसङ्गुणम् ॥ ६८ ॥
तुङ्गं व्यासत्रिपादांशाद् भवेल्लिङ्गे तु नागरे ।
गर्भकर्णचतुर्थांशव्यासा श्रेष्ठा(थ? य)तस्य तु ॥ ६९ ॥

---

*'विस्तृतं वेदभागतः' इति गुरुदेवः ।

व्यासाध्यर्धविहीना स्यान्नीचा मध्येऽष्टधा तयोः ।
(मध्ये ? भक्ते) तु नवधा ब्रह्मशिला स्याद् द्राविडे शिवे ॥

व्यासार्धं तत्र पादोनं तयोर्मध्येऽष्टभाजिते ।
तुङ्गं ब्रह्मशिलायाः स्यान्नवधा द्राविडाह्वये ॥ ७१ ॥

अथ गर्भगृहार्धेन त्रिचतुर्भागविस्तृता ।
व्यासार्धवेदभागोच्चा प्राग्वन्मध्येऽष्टभाजिते ॥ ७२ ॥

नव ब्रह्मशिलाः प्रोक्ता लिङ्गब्रह्मांशतोऽवटम् ।
द्वियवाधिकविस्तारं विस्ताराष्टांशकं नतम् ॥ ७३ ॥

तन्मध्यवटगं[1] रत्नगर्तं स्याद् वेसराभिधे ।

अथासनशयनादीनां पीठभेदः ।

स्थानासनविभागेन प्रतिमानां (प ? पु)रे (प ? पु)रे । ७४ ॥

एकद्वित्रिचतुष्पञ्चषण्मात्रं वाधिकं ततः ।
आसनानां स्वविस्तारादष्टभागाधिकायतिः ॥ ७५ ॥

द्विगुणं तन्निजायामान्मण्डनं पीठिकास्विव ।
रामवेदेषुभागे तु बेरोच्चे भागतः क्रमात् ॥ ७६ ॥

पीठस्योन्नतिरिष्टा स्याच्छयने वासने स्थिते ।
यथोचितं तथा दैर्घ्यं व्यासश्च शयने स्मृतः ॥ ७७ ॥

**अथासनभेदः —**

ब्रह्मविष्णुशिवानां च गौर्यादीनां तथासनम् ।
सोपपीठमिहाङ्घ्रिस्थसिंहसिंहासनं स्मृतम् ॥ ७८ ॥

---

१- 'कं' ग. पाठः.

दैवार्षकाणां बाणानां लिङ्गानां च स्वयम्भुवाम् ।
प्रासादरूपं पीठं वा यथेष्टं कारयेद् बुधः ॥ ७९ ॥

इति शिल्परत्ने उत्तरभागे पीठादिलक्षणं नाम
सप्तविंशोऽध्यायः ॥

---

## अथाष्टाविंशोऽध्यायः ।

### अथ प्रतिष्ठाविधिः ।

कुर्यात् प्रतिष्ठां सुमुहूर्तलग्ने
देवस्य मन्त्री सुसमाहितात्मा ।
बीजाङ्कुरारोपणमुख्यकर्म-
जालानि कृत्वोचितमूर्तिपान्वितः ॥ १ ॥
सर्वदिङ्मुखसद्मेषु सर्वदेवेषु सर्वदा ।
अदित्युदित्योः कर्तव्यं मङ्गलाङ्कुरमण्डपम् ॥ २ ॥
संवृतं पश्चिमद्वारं ध्वजयोनिगतं शुभम् ।
तुर्यश्रं वायताश्रं वा वितानपरिशोभितम् ॥ ३ ॥
पात्राणि वापविहितानि पृथग् द्विषड् वा
स्युः पालिकाश्च घटिकाश्च शरावकाश्च ।
तत्त्वाष्टिभानुभिरिह प्रतिमाङ्गुलैस्त-
दुत्सेधकल्पितरथ वाष्टिचतुर्दशार्कैः ॥ ४ ॥
तत्त्वांशकोनमुदितोच्छ्रयमत्र कृत्वा
षोढा द्वयेन वदने क्रमशः परांशैः ।
तत्पीठ(दण्डगल)सन्धिगलेषु कुर्याद्
दैर्घ्यं पुरोविरहितेन च पीठसन्धौ ॥ ५ ॥
अङ्घ्र्यूनमंशम(थ ? धि)पीठ(गृ ? मि)हाधिदण्डं
चैके समुच्छ्रयमुशन्त्यपरेऽर्धवृद्धिम् ।

पीठेऽङ्घ्रिहीनमपरत्र च शिष्टयुक्त्या
सन्धि गलांशगतमास्यबिलं च कार्यम् ॥ ६ ॥
दण्डे स्वदैर्घ्यकसमं द्विगुणं स्वदैर्घ्याद्
व्यासं परेषु वियुगांशमधः शिरोधेः ।
तत्पीठिकावितति[1]खण्डमितं च पीठ-
सन्धौ प्रकल्पयतु मङ्गलपालिकायाः ॥ ७ ॥

पीठोच्छ्रयः —

ऊर्ध्वार्धकल्पितपृथुबुध्नघटोत्तराङ्गे
दिक्षूर्ध्वतश्च घटिका घटितेषुवक्त्रैः ।
वर्णाङ्गुलिप्रततिभिः सुगलैरधोर्धे
तत्पालिकावदुदिताङ्घ्रिससन्धिदण्डा ॥ ८ ॥
अष्ट्यङ्गुलात् समधिके सति पालिकायाः
पीठोच्छ्रये तु घटिकाघटिताङ्घ्रिदण्डौ ।
त्रिद्व्यङ्गुलोच्छ्रयनिजोच्चसमप्रतानौ
स्याताम्[2]नाङ्गुलिमितः सकलोच्छ्रयो वा ॥ ९ ॥
व्यासेन दैर्घ्यसुसमं दहनांशहीनं
वास्ये ततो हुतवहांशततं च पीठे ।
कुर्याच्छरावमपकन्धरपालिकाव-
दूर्ध्वार्धमस्य घटिकाव(यव ? दथा)धरार्धम् ॥ १० ॥
पीठाग्रकार्श्यपरिशेषितमूलकार्श्य-
वृत्तिक्रियादिरचना सकलेषु कार्या ।
स्युस्तानि लोहरचितान्यथ मार्त्तिकानि
पात्राणि विष्णुविधिधूर्जटिदैवतानि ॥ ११ ॥

---

१. 'त' ग. पाठः.

देवस्याग्रे मध्यहाराबहिः स्याद्
साधिष्ठानं मण्डपं दक्षभागे ।
साद्यङ्गं सालिन्दकं तोरणाढ्यं
द्वारे द्वारे सद्ध्वजं चाधिवासे ॥ १२ ॥

मण्डपं कलशार्थं यदेवमेव करोतु तत् ।
अन्तर्मण्डलबाह्ये वा मध्यहाराबहिस्तु वा ॥ १३ ॥

अथ कुण्डम् —

दोर्मात्रं परिसूत्र्य तत्र चतुरश्रं क्षेत्रमर्काङ्गुलं
खात्वा तद्द्विगुणं तु वावटतटे तन्मेखलाः कल्पयेत् ।
मार्तण्डाहियुगाङ्गुलोच्छ्रययुताः श्रुत्यङ्गुलव्यासिनी-
स्तिस्रोऽन्तः क्रमतो निजावटनिभाद्याब्ध्यश्ररूपेऽवटे
[॥ १४ ॥

योनिं पश्चिममेखलोपरि मितामर्काङ्गुलैरुच्छ्रया-
यत्योः साधयुगाङ्गुलैरपि तदूनैस्तैश्च विस्तारतः ।
आम्नायाङ्गुलनालकां ससुषिरां स्वाख्यानयोग्याकृतिं
कुर्यात् कुण्डनतां स्वमूलपरिवृत्त्याग्रप्रक्लृप्त्यादिना
[॥ १५ ॥

अथ योनिरूपकुण्डम् —

क्षेत्रेऽब्ध्राब्धिपुटे प्रतीच्यपुटयोः कर्णार्धसूत्रं निजं
संस्थाप्याप्तिसन्धितः सुपरिवर्त्यार्कीन्दुसन्ध्यन्तिमम् ।
ताभ्यां सूत्रयुगं प्रसार्य हरिदिग्बाह्यायुतेष्वंशत-
श्चिह्नेऽन्योन्यमिदं सुयोज्य शिखिकुण्डं योनिरूपं खनेत्
[॥ १६ ॥

अथार्धचन्द्राभम्—

क्षेत्रं विभज्य नवधोदगवाक् च भागौ
त्यक्त्वाचलांशकमितं परिवर्त्य सूत्रम् ।
प्रागादिकाप्यककुबन्तमुदग्भुजां च
तावत् प्रसार्य रचयेच्छशिखण्डकुण्डम् ॥ १७ ॥

अथ त्रिकोणम्—

षष्ठांशकं यमहिमांशुदिशोः प्रतीच्य-
सूत्रे सुयोज्य हरिदिग्बहिरङ्कयित्वा ।
तेनैव तेषु सुविधाय च सूत्रपातं
कुर्यात् त्रिकोणपरिमण्डितवह्निकुण्डम् ॥ १८ ॥

अथ वृत्तम्—

कर्णार्धसूत्रस्य भुजार्धतोऽति-
रिक्तांशकार्धं बहिरर्पयित्वा ।
मध्यस्थसूत्रं परिवर्त्य कुण्डं
कुर्वीत चण्डद्युतिमण्डलाभम् ॥ १९ ॥

अथ षट्कोणम्—

अङ्कौ[1] प्रकल्प्य हरिपञ्चकदिक्पदिक्स्थौ
षष्ठांशतो बहिरतो निजमध्यतश्च ।
द्वौ द्वौ झषौ परदिशोरपि मत्स्यचिह्न-
षट्सूत्रकैर्विरचयेद् रसकोणकुण्डम् ॥ २० ॥

---

१. 'ङ्कं' ख. पाठः.

**अथाष्टदलकुण्डम्—**

क्षेत्रं प्रकल्प्य फणिभागयुतं समन्तात्
तद्बाहुसूत्रदलतोऽथ परिभ्रमय्य।
व्याख्यास्यमानविधिनाष्टदलं लिखित्वा
खात्वा प्रकल्पयतु पद्मनिभं च कुण्डम् ॥ २१ ॥

**अथाष्टाश्रम्—**

क्षेत्रे तत्र समन्ततो दिनकरांशं न्यस्य तुर्यश्रिते
कोणेभ्यो भुजसूत्रकेषु निहितैः स्वैः कर्णसूत्रार्धकैः।
द्वौ द्वौ दिक्षु झषान् प्रकल्प्य मकरेष्वास्फालितैरष्टभिः
सूत्रैरीश्वरदिङ्मुखे विरचयेदष्टाश्रकुण्डं सुधीः ॥ २२ ॥

दोर्मात्रकुण्डे विधिरेष शेषे-
षूह्यीय तन्वीत समस्तमस्मात्।
कुण्डानि तत्तद्भवनोपपत्त्या
द्वित्रादिदोरत्निमितान्यपि स्युः ॥ २३ ॥

अथ स्रुवलक्षणम्।

कुर्यात् स्रुवं खदिरजं द्विजदारुजं वा
मित्राङ्गुलं शशधराङ्गुलमस्य वक्त्रम्।
अङ्काग्निनेत्रयवदीर्घवितानिम्न-
गर्तद्वयं यवदलाहितनेमिवीतम् ॥ २४ ॥

मूलाग्रशातयवनिम्नबिलार्गलाढ्य-
माश्यानपङ्क्तगतधेनुपदोपमं च।
मूले यवाष्टकततं यवहीनमग्रे
दण्डं सुवर्तुलमिलायववेष्टनाग्रम् ॥ २५ ॥

मार्तण्डाङ्गुलदैर्घ्यतच्छरदशांशव्यासतीव्रा जुहू-
ब्रह्मद्यायामशरांशतोऽत्र चतुरश्रं पुष्करं कल्पयेत् ।
अग्र्यंशाहितमेखलावृतपदांशाखातगर्तान्विता
तस्याग्रे गलमर्धविस्तृतितदर्धायामताभ्युज्ज्वलम् ॥ २६ ॥

पञ्चांशायततत्रिपादशशिपादव्यासमूलाग्रकं
कुर्याद् व्यासगुणांशखातघृतकुल्योल्लासितं तन्मुखम् ।
तच्छिष्टेन सुवृत्तपुष्करदलव्यासाढ्यमूलानलां-
शोनव्यासयुताग्रकं विरचयेद् दण्डं च गोपुच्छवत्
॥ २७ ॥

अथ महास्रुक् —

हस्तायामयुगांशविस्तृतितदर्धोत्सेधयुक्ता महा-
स्रुक् स्याद् विस्तृतिदीर्घपुष्करगुणांशाखातवृत्तावटा ।
बाह्याधर्धतदर्धतद्दलवशाच्छेषे चतुर्धा कृते
कुर्यात् तद्दशनात्रयं त्रिभिरथान्तःस्थैः क्रमादंशकैः ॥ २८ ॥

बाह्येऽर्धे त्रियवं तदर्धमपरेंऽशे तद्दलं चान्यतः
संशोध्यावटमेखलां सुपरिवृत्तां पीठभव्जोज्ज्वलम् ।
दण्डं त्र्यंशततं गलं सुषिरितं पादत्रिभागाताति-
व्यासं पादविहीनपुष्करमितं कुर्याज्जुहूवन्मुखम् ॥ २९ ॥

अथ पद्मं तत्र पूर्वं भद्रकम् ।

एकद्विसागरकरप्रमितानि तानि
स्युर्भद्रकप्रकृतिकान्यथ मण्डलानि ।

चक्राम्बुजं द्विकरमप्यवरं वरिष्ठं
तद् वेददोःप्रभृति पन्नगहस्तनिष्ठम् ॥ ३० ॥

विकृतिकृतिपुटे षट्त्रिंशतान्तःस्थकोष्ठै-
र्नलिनमवनिपङ्क्त्या पीठिका वीथिकाथ ।
पुटयुगपरिकल्पा द्वारशोभोपशोभा-
श्रियुतपुटयुगल्या मुद्रिता भद्रके स्यात् ॥ ३१ ।

अब्जक्षेत्रे यवांशं बहिरिह परितोऽप्यस्य वृत्तीकृतेऽर्धे
मित्रांशेऽग्रार्थमन्तः सुसममथ चतुर्धा विभक्ते दलार्थम् ।
सन्ध्यर्थं केसरार्थं भ्रमयतु परितः कर्णिकार्थं च सूत्रं
दिक्कोणाभ्यन्तरेऽष्टौ क्षिपतु च परितस्तत्र सूत्राणि तिर्यक् ॥ ३२ ॥

अग्रादिसन्धिचरमं दलमध्यगास्थं
सूत्रं सुवर्त्य परिलिख्य दलं तदग्रम् ।
तत्सूत्रतन्मुखतयान्तिमवृत्तसंस्थं
तन्मात्रसूत्रमभिवर्त्य लिखेद् द्विपार्श्वे ॥ ३३ ॥

दिशि करयुगकोष्ठैर्द्वारमन्तर्बहिष्ठै-
स्त्रिशशिपदविपर्यस्तैश्च शोभोपशोभे[1] ।
त्रिभुवनपदकल्पं कोणमम्भोजपीठं
श्रुतिदहनपदोद्यद्वात्रपादान्वितं च ॥ ३४ ॥

पीता पङ्कजकर्णिका दलततिः श्वेतान्तरालं हरि-
द्वर्णं रक्तरुचोऽश्रयः सितपदारक्तेषकं पीठकम् ।

१. 'भम्' ग. पाठः.

वीथिः कल्पलतादिचित्रिततराथ द्वारशोभोपशो-
भाश्रि स्यात् सितरक्तपीतशितिवर्णाकीर्णचूर्णोज्ज्वलम्
[ ॥ ३५ ॥

पीताणुमूलपृथुलारुणमध्यशुभ्र-
बिन्द्वग्रकाः[1] प्रतिदलं युगलात्मकाः स्युः ।
तत्केसरा बहिरथ त्रिगुणात्मकाश्च
रेखा लघीयसि महीयसि भूतरूपाः ॥ ३६ ॥

अथ चक्राब्जम् —

चक्राब्जेऽत्र विकारवर्गपदवत् क्षेत्रेऽन्तरर्धेऽभितो
वीथीक्षेत्रशरद्विभागसहिते वृत्तीकृतेऽर्धीकृते ।
बाह्यार्धे दहेनांशनेमिपरिशिष्टं[2] स्यादरक्षेत्रकं
शेषार्धे श्रुतिभागनाभिपरिशिष्टं चाम्बुजक्षेत्रकम् ॥ ३७ ॥

प्राग्वत् पञ्चविभक्तमम्बुजपदं त्रित्रिद्विभक्तं क्रमात्
कृत्वा नाभ्यरनेमिकं च परिवर्त्यारण्यथास्फालयेत् ।
दिक्सूत्रस्पृगरान्तवृत्तनिहितैराकर्णिकान्तायतैः
सूत्रैर्द्वादशधा भ्रमादरपदं षोढा च भङ्क्त्वैकशः ॥ ३८ ॥

एष्वष्टादशकोष्ठवत्स्वरपदेष्वन्तःस्थषट्कोष्ठगा-
न्यन्तर्वृत्तगतैककोच्छुरितपार्श्वद्वन्द्वतुन्दीनि च ।
इत्यष्टाष्टपदैरराण्यपदिशं कुर्यादथ द्वादशा-
यैतावन्ति हरित्पदानि परिशिष्टान्यन्तरालान्यपि ॥ ३९ ॥

अन्तःस्थानरमध्यबद्धदुभयान्तान् द्वादशाथ प्रथीन्
बाह्यानान्तरमध्यबद्धशिरसः कुर्यात् पुनस्तावतः ।

---

१. 'बिद्वग्र', २. 'श' ख. पाठः.

सत्त्वाद्युक्तरुचिस्त्रिनाभिररुणाराल्यन्तरं कृष्णरु-
क्पर्यायारुणपीतरुक् प्रथिगणोऽन्यद् भद्रकोद्दिष्टवत् ॥४०॥

अथ शक्तिदण्डः —

धृतिकृतिपुटक्षेत्रे मध्ये विधाय विधानतो
विकृतिकृतिसङ्ख्यातैः कोष्ठैः समीरितभद्रकम् ।
लिखतु परितः पङ्क्तौ शक्त्यष्टकं रसकोष्ठकै-
र्दिशि विदिशि च स्वोपान्तस्थोपकोष्ठदलाञ्चलम् ॥ ४१ ॥

मध्येशक्ति पदद्वयेन रचयेन्मुष्टिं दिशास्वश्रिषु
त्यक्त्वा कोणगतैकंकं पदयुजा तत्प्रान्तयुक्स्थास्नुना ।
मुष्ट्युद्दिष्टपदान्तपार्श्वयुगदोःसूत्रेण शक्त्यग्रके
तत्तार्तीयककोष्ठमध्यमिलिताग्रेणालिखेद् द्वे अपि ॥ ४२ ॥

विन्यस्यच्छोटिकां मुष्ट्यभिहितपदयुङ्मध्यदिक्सूत्रसंस्थां
सूत्रं तावत्प्रमाणं भ्रमयतु बहिरन्तश्च दोःसूत्रसंस्थम् ।
सूत्रं तत्प्रान्तयोस्तद्दलमितमपि संवर्तयेत् कोणसिद्ध्यै
दिश्येवं कोणमुष्टिं विरचयतु तथा सन्धिभुग्नावलग्नम्
[॥ ४३ ॥

शक्त्यग्रान्तरमुष्टिशिष्टपदवर्णं रक्तपीतारुणा-
कृष्णं श्यामलकोणगैककविराजद्देवताविग्रहम् ।
शोभे पीतहरिद्रुची विरचयेत्कोणं त्रिशूलोज्ज्वलं
पीतां वीथिमथाङ्घ्रिगात्रमसितारक्तं परं पूर्ववत् ॥ ४४ ॥

अथ षड्दलम् —

कुर्यात् षड्दलमब्धिवर्गपुटकेऽत्रान्तश्चतुष्कस्फुर-
द्वृत्तेषु त्रिषु कर्णिकां च दलसन्धीन् षड्दलान्यंशकैः ।

---

१. 'स्ता' क., 'स्का' ख. पाठः.

सन्ध्यर्धेऽत्र तु केसरांश्च रचयेद् द्वाराणि दिक्षु द्विकैः
कोणान्येकपदैरितीषुजनुपि स्यात् षड्दलं मण्डलम् ॥ ४५ ॥

अथ स्वस्तिकभद्रम्*

नीवारशालिप्रभवं सितं स्याद्
रक्तं कुसुम्भप्रभवं रजश्च ।
गोरोचनोत्थं च मनःशिलाजं
पीतं च शालीप्रभवं च दग्धम् ॥ ४६ ॥
कृष्णं तथा याज्ञिकवृक्षपत्रैः
सङ्कल्पितं श्यामरजः प्रशस्तम् ।
शुक्लं च रक्तं च तथैव कृष्णं
मुख्यं रजस्तत् त्रिगुणात्मकं तत् ॥ ४७ ॥
पुष्ट्यर्थमिष्टं त्वथ मुष्टिना च
सर्वार्थसिद्ध्यै तु कराग्रजैश्च ।
मध्याङ्गुलीतुल्यकृताश्च रेखा-
स्तन्मध्यनिम्नं च यवं यथावत् ॥ ४८ ॥

अथ प्रतिष्ठास्थानम्—

कृत्वा गर्भगृहं कुलाद्रिकृतिकोष्ठाढ्यं समन्तात्पदे
ब्राह्मे पञ्चदशांशकान् विरचयेत सौम्याग्रसूत्रैः समम् ।
तत्पृष्ठस्थितदेवमानुषपिशाचावारकेषु क्रमाद्
विश्वोमेशनवांशकानपि ततः स्वं स्वं पदं कल्पयेत् ॥ ४९ ॥

ब्राह्मेंऽशेऽन्तरनन्तरे महति चाल्पे चेशलिङ्गे हरौ
तार्तीये द्रुहिणांशमध्यपदतस्तुर्ये गुहेशाच्युते ।

* इत उपरि मातृकासु पुट एकोऽलेखो दृश्यते ।

षष्ठे सुम्भजिति प्रतिष्ठितिपदं शार्ङ्गीश्वरे चाष्टमे
प्रोक्तं शास्तरि षोडशे गणपतौ विंशे तथैकोत्तरे ॥ ५० ॥

*मध्ये महालिङ्गमतोऽल्पलिङ्गं
नारायणः शङ्करकेशवश्च ।
तत्रैव षड्वक्त्रनिवासभूमिः
स्याद् वासुदेवो भगिनी च पश्चात् ॥ ५१ ॥
सुखासनं सप्तपदे विदध्या-
दतोऽष्टमे वा हरवासुदेवः ।
ततः परस्मिन् मणिलिङ्गधाम
व्यासस्तथैकादशरुद्रभूमिः ॥ ५२ ॥
सूर्यस्तथाग्निर्भिषजौ वसूनां
गणश्च शास्ता प्रहराणि भूयः ।
अष्टादशे मातृनिवासभूमि-
स्ततः परस्तादथवायुधानि ॥ ५३ ॥
स्याद् वाहनं सूकरवामनौ च
लक्ष्मीश्च तत्रैव वसुन्धरा च ।
अनन्तमूर्तिप्रहराणि पञ्च
पश्चादनन्तासनवाहनानि ॥ ५४ ॥
विद्येश्वराश्चानु गणेश्वराश्च
मार्ताण्डचन्द्रौ मुनयः प्रदिष्टाः ।
कृत्वोदङ्मुखमत्र सूत्रमथ मध्यो[1] द्वारविस्तारत-
स्तूत्कृत्याब्यशतांशकं प्रतिगमय्योदीचि चैन्द्राग्रगम् ।

---

१. 'मके वि', २. 'त्स्यद्वा' ग. पाठः.

---

* इत आरभ्य सार्धश्लोकचंतुष्टयं ख. मातृकायां न दृश्यते.

सर्वेष्वीशहरीशयोः पुनरिदं वार्चांशतो वाखिले
दिश्यैश्यां गमयेद् यवं यवयुगं वार्चोद्भवं सन्धितः ॥५५॥
ब्राह्मे कौतुकमामरे न्यसतु मूलार्चां स्थितामासिता-
मीषन्मानुषसंयुते समनृदेवांशे शयानामपि ।
गर्भे षोडशवर्गभेदिनि पदैर्ब्राह्मं चतुर्वर्गकै-
स्त्रिद्येकोन्मितपङ्क्तिभिः सुरनृपैशाचान् प्रकुर्वीत वा ॥ ५६ ॥
ब्राह्मे षोडशभंशकं स्वपुरतो मध्याद् दलाढ्यैककं
वामे चाप्यपहाय वह्निभुवि बिम्बं स्थापयेत् स्थास्नुकम् ।
एवं मानुषमध्यतोऽथ गमयित्वा पृष्ठतो वामत-
श्चांशे स्थापयतु स्वमूलमनुबिम्बं बाहुबेरे विधौ ॥ ५७ ॥
त्रिखण्डलिङ्गस्य ततः प्रतिष्ठां(?)
ब्रह्माश्ममूर्ध्नि विनिधाय पुनश्च मन्त्री ।
उन्नीय मन्दमथ यन्त्रगतं च पीठं
स्थाने प्रविन्यसतु तत्र समाहितात्मा ॥ ५८ ॥
पीठप्रतिष्ठां विनिधाय पूर्वं
पश्चात् स्वबिम्बं त्वथ निष्कलेषु ।
सर्वेषु तत्तत्परिवारजालं
सम्यक् प्रतिष्ठाप(य)तूक्तकल्प्या ॥ ५९ ॥
एवं प्रतिष्ठाप्य निजेच्छयेशं
संपूजयेन्नित्यमनन्यचेताः ।
योऽसाविहाखिलमनोरथौघं
संप्राप्य याति परमायुरन्ते(?) ॥ ६० ॥

---

१. 'र्धा' ख. पाठः.

बल्यर्चा चोत्सवार्चा च तीर्थयात्रार्थकल्पिता ।
स्वापोत्थानकृता चेति चतस्रस्तूपबेरकाः ॥ ६१ ॥
कर्मार्चा स्नपनार्चा च बहुबेरेऽधिकं द्वयम् ॥ ६२ ॥

इति शिल्परत्ने उत्तरभागे प्रतिष्ठाविधानं नाम
अष्टाविंशोऽध्यायः ॥

---

## अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः ।

### अथ जीर्णोद्धारः ।

आकल्पान्तस्थास्नुभावेन भक्त्या
देवस्यैवं सम्प्रतिष्ठापितस्य ।
प्रासादादिस्वाङ्गजीर्त्तिर्यदि स्या-
दुद्धृत्यातस्तं नवाङ्गीकरोतु ॥ १ ॥
जीर्णोद्धृतिं स्थापितमन्त्रबिम्ब-
गृहादिजीर्त्तौ सपदीति कुर्यात् ।
दुःस्थोऽन्यथा चेद् विपदे तथा चेत्
सुस्थोऽत्र देवो यदि सम्पदे स्यात् ॥ २ ॥

जीर्णोद्धारविधिं वदामि शिथिले जीर्णेऽथ दग्धेऽथवा
प्रासादे स्फुटिते[1] विपर्ययगते लिङ्गेऽथवा चोभये ।
ऐशान्यां दिशि तस्य गेहमभितः कृत्वा नवं मन्दिरं
तत्पार्श्वे चतुरश्रकं च पुरतः कुर्यात् पुनर्मण्डपम् ॥ ३ ॥
ऐन्द्रेशानविभागे वा सोमेशा(न ? ना)न्तरेऽपि वा ।
कृत्वा काष्ठमयं गेहमल्पं प्राकारबाह्यतः ॥ ४ ॥

---

१. 'सु' क. पाठः. २. 'रि' ग. पाठः.

नागे शोषेऽथवा मूलप्रासादस्यानुरूपतः ।
प्राग्द्वारे वायुकोणे वा नैर्ऋत्यां वान्यगोमुखे ॥ ५ ॥
प्रासादमल्पं काष्ठैर्वा मृद्भिर्वा सुमनोहरम् ।
देवस्याभिमुखं तत् स्यात् तदग्रे मण्डपं शुभम् ॥ ६ ॥
अर्वाक् सप्तकराच्च मन्दिरसमो विस्तारतो मण्डप-
स्तस्मात् सप्तकराधिके तु भवने पादं विहायार्पयेत् ।
प्रासादस्य समं विभज्य हुतभुग्भागैरधिष्ठानकं
द्वाभ्यां सम्परिकल्पयेच्च विधिवत् प्रत्युन्नतिं मण्डपे ॥ ७ ॥
तन्मध्ये भुवि वेदिका च विहिता तस्याश्चतुर्भागतो
विस्तारेण तदुन्नतिश्च नवभिर्धाम्नः प्रतेरुन्नतिम् ।
भङ्क्त्वैकेन मिताथवा परिमितं कुर्याच्छुभाय स्थितं
विप्रादिष्वथ वर्णभेदविहितं वर्णेषु वा मण्डपम् ॥ ८ ॥
तन्मध्ये दारवं पीठं सश्वभ्रं कारयेद् गुरुः ।
बिम्बं लोहमयं वाल्पं कुर्याद् बिम्बानुसारतः ॥ ९ ॥
रत्नन्यासं विना सर्वं प्रतिष्ठोक्तं समाचरेत् ।
निष्क्रामणेन विधिनात्र तदन्तरङ्गे
वैकल्यभाजि वितनोतु यथापुरं तत् ।
सङ्कोचनेन बहिरङ्गविपद्यदश्च
निष्क्रामणेन चिरकालचिकीर्षितं चेत् ॥ १० ॥
तत्तद्द्रव्यैः शिलाद्यैस्तु समाधेयं हि पूर्ववत् ।
संस्थानं प्राग्वदेव स्यादलङ्कारांस्तु कारयेत् ॥ ११ ॥

१. 'तो' क. पाठः. २. 'भम् ॥ तन्मध्ये दा' ख. पाठः.

मानतुङ्गत्वहानिर्वा वृद्धिश्चापि न शस्यते ।
जातिच्छन्दविकल्पानां स्यान्मानं प्राग्वदेव हि ॥ १२ ॥

स्वयम्भूदैविकार्षाणामल्पं प्राक्तनधाम चेत ।
जीर्णापतितं तस्य नविर्धिर्दोषमावहेत् (?) ॥ १३ ॥

द्वारप्राकारपीठाद्यमनुक्तस्थानगं यदि ।
परिवारं च तत्प्राक्तस्थाने कुर्यात् सलक्षणम् ॥ १४ ॥

सलक्षणं प्रकुर्वीत पूर्वसंस्थानसुन्दरम् ।
स्वायम्भुवार्षदैवं वा निष्कलं सकलं तु वा ॥ १५ ॥

स्थानान्न चालयेल्लिङ्गं पूर्वस्थानेऽर्हति स्थितिः ।
नद्यब्धिजलवाताद्यैर्हृते वा चलितेऽपि वा ॥ १६ ॥

तस्मात् सहस्रदण्डान्तं क्षेमे संस्थापयेत् पुनः ।
तदेव तदभावे तु पूर्वलिङ्गसमं नवम् ॥ १७ ॥

पूर्वतुल्यविमाने तु प्रायश्चित्तादनन्तरम् ।
प्रतिष्ठितं भवेद् वृद्ध्यै राजराष्ट्रप्रजाहितम् ॥ १८ ॥

तत्र मूलालयस्थानाद् (या ? य)माग्निमरुतां दिशम् ।
त्यक्त्वा यथेष्टमन्यत्र विधिना स्थापयेद् दिशि ॥ १९ ॥

यमे (भ ? क)र्तृनृपस्याप(ः ? द्) मरुद(ग्ने ? ग्न्यो)र्जनक्षयः।
तस्मात् ते परिहृत्यैव चलितस्थापनं हितम् ॥ २० ॥

छन्दानां प्राक्तना(ष्वा ? त् स्थाना) त् प्राग्वोदक् परितो-
ऽधिकम् ।
मानोन्मानप्रमाणोच्चं तलाधिक्यं च शस्यते ॥ २१ ॥

पूर्वस्माद्धीनमानाद्यं स्थानं कर्तृनृपाहितम् ।
द्वारभित्त्यङ्गणादीनां गोपनं च विनाशकृत् ॥ २२ ॥

विनष्टवस्तुनो गर्भं त्यक्त्वा गर्भं न्यसेत् पुनः ।
अधिष्ठानादिकं प्राग्वत् कुर्यात् स्तम्भादिकानपि ॥ २३ ॥
यदि तत्प्राक्तनद्रव्यैर्निष्पाद्यं चेद् गृहादिकम् ।
प्रारभ्यादौ नवद्रव्यैः पुराणैर्योजयेत् ततः ॥ २४ ॥
योगं नवैर्नवैरिष्टं पुराणाना पुरातनैः ।
मिश्रयोगे विनाशः स्यादतो मिश्रं न कारयेत् ॥ २५ ॥
पुरग्रामालयादीनि पूर्ववस्त्वनुरूपतः ।
तद्बाधकं ++++ कुलनाशकरं त्यजेत् ॥ २६ ॥
अन्तहाराबहिर्मूलादल्पलिङ्गालयादिकम् ।
कुर्वीत वान्तः सालस्य यथा मूलं न पीडयेत् ॥ २७ ॥
मूलालयसमं क्षुद्रमधिकं तन्न शस्यते ।
शस्तमर्धं च पादोनं शरांशे[1] त्र्यंशमेव वा ॥ २८ ॥
शिखिविशिखसुपिरभक्ते मूलगृहे मूलबिम्बे च ।
नेत्राग्निभूतभागैर्बालगृहं बालबिम्बं च ॥ २९ ॥
दोषे लघुतरे बिम्बं नैव त्याज्यं कदाचन ।
बाहुच्छेदे करच्छेदे पादच्छेदे तथैव च ॥ ३० ॥
तथैव स्फुटिते भिन्ने यस्मिन्नवयवे गते ।
वैरूप्यं जायते यस्य तत् त्याज्यं प्रायशो भवेत् ॥ ३१ ॥
अङ्गुल्यादिपरिच्छेदे बन्धनं शस्यते बुधैः ।
महादोषसमायुक्ते सान्निध्यं लक्ष्यते यदि ॥ ३२ ॥
तथैव बद्ध्वा संशोध्य प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥ ३३ ॥

१. 'शं' क. ग. पाठः.

उत्पाट्योक्तवदल्पबिम्बमुपनीयातो बहिः सन्दहेद्
गोसर्पिःस्नपितं तदर्हदहने तद्दारवं चेद् गुरुः ।
लौहं चेद् गुरवे समर्पयतु तद् विद्राव्य यज्वाथवा
छित्त्वा नालमिदं विशोध्य सुशुभं तत्कौतुकं कल्पयेत्
॥ १४ ॥

एवं जीर्णं गृहं वाथ बिम्बं वा प्रोक्तवर्त्मना ।
कृत्वा नवं दृढं देवं संस्थाप्य सुखमर्चयेत् ॥ ३५ ॥

इति शिल्परत्ने उत्तरभागे जीर्णोद्धारप्रकरणं नाम
एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥

---

अथ त्रिंशोऽध्यायः ।

अथ लिङ्गप्रासादविधिः ।

आर्षं[1] प्रतिष्ठितं पू(र्वं ? र्षं) स्वायम्भुवमथापि वा ।
दृष्ट्वा लिङ्गं वने दिव्यं पश्चात् प्रासादमाचरेत् ॥ १ ॥
ऋषिभिर्देवसिद्धाद्यैः स्थापितं चार्षकं भवेत् ।
मर्त्यैः प्रतिष्ठितं यत्तु तत् पूर्वं समुदाहृतम् ॥ २ ॥
स्वायम्भुवं भुवं भित्त्वा स्वयमुद्गतमेव हि ।
तेषां त्रयाणां दृश्यांशादधोदेशं न शोधयेत् ॥ ३ ॥
मोहादज्ञानतो वापि मूलं ज्ञात्वा निरीक्ष्यते ।
कर्तुश्च ग्रामवा(सी ? सा)नां राज्ञः स्यान्नाशहेतुकृत् ॥ ४ ॥
तस्मात् सकलमस्यैव पूजांशस्य वशात् कुरु ।
पूजांशोच्चं द्विगुणितं पीठव्यासमुदाहृतम् ॥ ५ ॥

---

१. 'र्षं पूर्वं वाथ स्वा' क. ख. पाठः.

तद्व्यासत्रिगुणं गर्भगेहविस्तारमानकम् ।
गर्भार्धं कुड्यविस्तारमलिन्दं तत्समं भवेत् ॥ ६ ॥
गर्भगेहे द्विभागेऽशमलिन्दव्यासमेव वा ।
हारा तत्समाख्याता हारालिन्दं विना तु वा ॥ ७ ॥
शान्तिकाद्युदयं प्राग्वत् कल्पयेत् कल्पवित्तमः ।
त्रिगुणं लिङ्गविष्कम्भं पीठव्यासमथापि वा ॥ ८ ॥
त्रिगुणं पीठतारेण गर्भगेहविशालकम् ।
तदर्धं त्वग्निभागं वा भित्तिविष्कम्भमानकम् ॥ ९ ॥
शान्तिकाद्युदयं प्राग्वत् प्रासादे परिकल्पयेत् ।
अथ पूजांशपरिधेः षोडशांशाशुगांशकम् ॥ १० ॥
तल्लिङ्गबहलं (म ? मा)त्वा तत्कर्णद्विगुणार्धकम् ।
द्विगुणं वा तथाध्यर्धं पीठव्यासं प्रकल्पयेत् ॥ ११ ॥
गर्भगेहस्य विस्तारं तेन द्वित्रिचतुर्गुणम् ।
तदर्धं वा त्रिभागं वा कुड्यं गर्भसमं तु वा ॥ १२ ॥
त्रिभागद्वितयं वाथ प्राग्वदुच्चार्धमाचरेत् ।
पूजांशनाहसदृशं पीठविस्तारमेव वा ॥ १३ ॥
गर्भगेहविशालं तु तेन द्वित्रिचतुर्गुणम् ।
तदर्धं वा त्रिभागं वा कुड्यं गर्भसमं तु वा ॥ १४ ॥
नाडीगृहसमं वाथ त्रिपादं वार्धमेव वा ।
पादं वाथ त्रिभागं वा कुर्यात् पूर्ववदुन्नतम् ॥ १५ ॥
अथ पूजांशनाहस्य कर्णं पीठविशालकम् ।
तेन द्वित्रिगुणं वाथ गर्भगेहं चतुर्गुणम् ॥ १६ ॥

---

१. 'र्ध' ग. पाठः.

तदर्धं कुड्यविष्कम्भं त्रिचतुष्पञ्चभागिकम् ।
शान्तिकाद्युदयं प्राग्वदाचरेच्छिल्पवित्तमः ॥ १७ ॥
पूजांशोच्चस्य कर्णेन कार्यं वा पीठविस्तृतम् ।
गर्भालयविशालं तु तेन द्वित्रिचतुर्गुणम् ॥ १८ ॥
तथा पञ्चगुणं तेन त्रिचतुष्पञ्चभागतः ।
षड्भागेनापि कुड्यस्य तारमन्यद् यथोदितम् ॥ १९ ॥
पूजांशबहलं द्विघ्नं यत् तत्कर्णेन पीठिकाम् ।
तद्वद् द्वित्रिगुणं वाथ गर्भगेहं चतुर्गुणम् ॥ २० ॥
तस्य त्रिभागं कुड्यं वा चतुष्पञ्चांशकं तु वा ।
शान्तिकाद्युदयं प्राग्वदेवं सकललिङ्गके ॥ २१ ॥
पादाद्युष्णीषपर्यन्तं पीठतारं प्रकल्पयेत् ।
नासान्तं चिबुकान्तं वा तेन गर्भालयादिकम् ॥ २२ ॥
प्रकल्प्य पञ्चप्राकाराद्यखिलं पूर्वमुक्तवत् ।
गर्भन्यासादिकं कृत्वा प्रतिष्ठाप्रक्रियां विना ॥ २३ ॥
सर्वं कृत्वा यथान्यायं पूजयेत् परमेश्वरम् ॥ २३½ ॥

इति शिल्परत्ने उत्तरभागे लिङ्गप्रासादकरणं नाम
त्रिंशोऽध्यायः ॥

---

## अथ एकत्रिंशोऽध्यायः ।

## अथ मनुष्यालयविधिः ।

एककुटुम्बसमेतं ग्रामं कुटिकाख्यमिति पूर्वमेवोक्तम् ।
तत्सङ्ग्रहविस्तारं लक्षणतः कथ्यतेऽत्र मुनिगदितम् ॥ १ ॥

पूर्वोक्तलक्षणैः सम्यक् परीक्ष्य बहुधा बुधः ।
स्वस्वयोग्या शुभा भूमि पूर्ववत् परिगृह्यताम् ॥ २ ॥
तद्विस्तारं पृथग् वक्ष्ये वर्णिनां दण्डमानतः ।
पञ्चाशद्दण्डमानं वा त्रिंशद् वा कथितं बुधैः ॥ ३ ॥
चत्वारिंशच्च वा कुर्यान्नृपाणां वेदिविस्तृतम् ।
द्वाविंशद्दण्डमानं वा त्रिंशद् वा तत् प्रकीर्तितम् ॥ ४ ॥
त्रयस्त्रिंशदथ प्रोक्तं द्विजानां वेदिविस्तृतम् ।
एकोनविंशत् त्रिंशद् वा द्वात्रिंशद् दण्डमानकम् ॥ ५ ॥
वैश्यानां वेदिविस्तारः कथितः शिल्पकोविदैः ।
पञ्चविंशच्च विंशच्च दण्डमानमुदाहृतम् ॥ ६ ॥
पञ्चादशाथ वा कुर्याच्छूद्राणां वेदिविस्तृतम् ।
उत्तम चाधमं चापि मध्यमं च यथाक्रमम् ॥ ७ ॥
यदुक्तं वेदिविस्तारमायामं चापि तत्समम् ।
दक्षिणोत्तरमायामं वास्तोः सर्वत्र कीर्तितम् ॥ ८ ॥
अथवा समतुर्यश्रं विप्राणां क्षत्रियस्य तु ।
अष्टांशाधिकमायामं षड्भागेनाधिकं विशाम् । ९ ॥
शूद्राणामब्धिभागैकमधिकं स्वस्वतारतः ।
मुखायामप्रमाणार्धं दक्षिणे चोत्तरेऽपिच ॥ १० ॥
हित्वा तु समतुर्यश्रं वास्तोर्मध्ये समाचरेत् ।
द्रष्टव्यान्यत्र मर्माणि वीथ्याद्या वास्तुदेवताः ॥ ११ ॥
ग्रामोक्तवत् प्रकर्तव्यं द्वारं प्रत्यन्तगं पुनः ।
यत्रोन्नतं ततो द्वारं यत्र नीचं ततो गृहम् ॥ १२ ॥

दण्डात् प्राङ्मणमध्यतोऽब्धिशरषट्सप्तादिसंख्यानती-
त्यादध्यादथ पौष्पदन्तिकपदे द्वारं प्रचारोचितम् ।
भल्लाटे(ऽथ ?न्द्र)गृहक्षतेष्वपि महाद्वाराण्युपद्वारका-
ण्यष्टाशान्तभृशादिकेषु परितः पर्जन्यनिर्ऋत्योरपि ॥ १३ ॥

द्वारं यत्र च विहितं
तद्दिगधीशाधिपं भवेद् धाम ।
एकतलं वा द्वितलं
द्वितले ।द्वेमुखं च निर्मुखं वा स्यात् ॥ १४ ॥

द्वारस्तम्भन्यासो जन्मनि तस्योदितं च शिल्पिवरैः ।
अथ तद्वास्तुपरिधेः सीम्नि कुर्याद् वृतिं बुधः ।
रक्षार्थं लक्षणार्थं च सोमार्थं च स्वशक्तितः ॥ १५ ॥

वृतिपादस्य तु बहलं कुर्याद् विस्तारबाह्यतः पश्चात् ॥ १६ ॥
सौत्रं बहलार्धं यत् तावद्बहलं च कारयेत् तलिपम् ।
तत्र च वप्रं कुर्यात् तुर्यश्रं द्वारगेहसदृशमपि ॥ १७ ॥
यद्वा परिघं कुर्यात् पाषाणैर्बद्धभित्तिसमचतुरम् ।
कण्टकशाखाभिर्वा वृतिमथ करभेक्षणाक्षमं कुर्यात् ॥१८॥
आवृत्यन्तर्भागे दिक्षु च वृक्षाः पुरोक्तवज् ज्ञेयाः ।
सूत्रे प्रादुदगग्रके क्षितितले कृत्वा चतुःखण्डिते
खण्डे कल्पयतु द्विजादिवसतिं शार्वेऽथ वा नैर्ऋते ।
खण्डेऽस्मिन् सति सम्भवे पुनरपि श्रुत्यंशिते ब्रह्मसू-
त्राभ्याशे शुभवास्तुवीथिपदकल्पत्याद्यं पुनश्चोन्नयेत् ॥ १९ ॥

---

१. 'न्' ख. पाठः.

पूर्वापरगतं सूत्रं ब्रह्मसूत्रमिति स्मृतम् ।
याम्योत्तरगतं मध्ये यमसूत्रं विदुर्बुधाः ॥ २० ॥
निर्ऋतीशगतं कर्णसूत्रं वाय्वग्निगं मृतिः ॥ २१ ॥
नन्दद्वन्द्वपुटे नवावृतितया बाह्यादिमध्यान्तिमा
वीथ्यः स्युः परितः पिशाचदितिषद्वित्ताधिभूदण्डिनाम् ।
नागाम्ब्वग्निविनायकद्रुहिणनाम्नां चासु निन्द्याः स्मृताः
पैशाचाग्न्यहिदण्डिनां गृहविधौ वीथ्यश्चतुर्दिक्ष्वपि ॥
कन्यायां पन्नगः शेते प्राक्छिरा याम्यपुच्छकः ।
चापे याम्यशिराः प्रत्यक्पुच्छो मीने पराक्छिराः ॥ २३ ॥
उदक्पुच्छोऽथ मिथुने सौम्यकेशः स्थिते रवौ ।
प्राचीपुच्छो लुठत्येवं मासैर्द्वादशभिः क्रमात् ॥ २४ ॥
स्तम्भा नहि विधातव्यास्तदङ्गेषु नृमन्दिरे ।
तस्मात् कालस्य नियमो मार्ताण्डचरणेन च ॥ २५ ॥
तुलावृश्चिकयोः सिंहं पश्चिमं मृगकुम्भयोः ।
गजं तु मेषवृषयोर्मासयोरालयं नृणाम् ॥ २६ ॥
सिंहे ध्वजालयं कुर्यात् कर्कटोऽत्र निषिध्यति ।
अथवा मृगकुम्भाख्यौ मासौ पूर्वालये शुभौ ॥ २७ ॥
दक्षिणे मेषवृषभौ सिंहः पश्चिमधामनि ।
तुलावृश्चिकमासौ द्वावुत्तरालयकर्मणि ॥ २८ ॥
एकं स्याद् यदि दक्षिणं गृहमुभे चेत् तच्च पाश्चात्यकं
ते सौम्य च गृहत्रिके गृहचतुष्के प्राच्यमेतानि च ।
प्राच्यां केतुजमेणराजजमिदं चापद्यवाच्यामथो-
दीच्यां ते गजजं च तानि वृषजं चाहुः प्रतीच्यां गृहम्
[॥ २९ ॥

योनयोऽग्न्यादिकोणेषु क्रमात् सिंहो वृषो गजः।
ध्वजश्चेति मनुष्याणां विहितं गृहकर्मणि ॥ ३० ॥

अथवा—

कृत्वा दिङ्नवनागवर्गपदभिन्ने क्षेत्रकेऽन्तर्गतै-
रष्टयङ्काब्धिपदैर्विधातृपदयुक्तं प्राङ्मुखं मध्यतः।
शालाः पङ्क्तियुगार्यकादिकजुषस्तद्बाह्यतस्तद्बहि-
र्गोष्ठौलूखलवेश्मकादिविलसत्पङ्क्त्यावृतं कल्पयेत्
[॥ ३१ ॥

पादुकोनां बहिर्भागमङ्कणं कथ्यतेऽत्र हि।
अङ्कणं ध्वजयोनिः स्यान्मुखायामादिसंयुतम् ॥ ३२ ॥

ध्वजः सर्वत्र सम्पूज्य इति शास्त्रनिदर्शनम्।
तत्त्वार्केन्दुवसुद्वारवेश्मकृत्यश्विसागराः ॥ ३३ ॥
अङ्गुल्यः करतश्चापि द्वित्रिसङ्ख्यमथापिवा।
अजिरस्यायतं तारादधिकं प्रकरोतु वा ॥ ३४ ॥

(गुणविस्तारणा स चादद्वि ?)

गुणविस्तारतश्चापि दृश्यते त्ववनाङ्कणेदि(?)।
वेधस्तद्गृहमध्यानां गोत्रनाशकरः स्मृतः॥ ३५ ॥
प्रादक्षिण्यात् स्वया गत्या महादिग्गतवेश्मसु।
परिहर्तव्य एवायं बुद्धिकौशलशालिभिः ॥ ३६ ॥
कर्णसूत्रयुतिर्मध्ये न भवेत् कर्णवेश्मनाम्।
अशुभाय भवत्येषा परिहार्या स्वदीर्घतः ॥ ३७ ॥

---

१. 'कं नाद्दिभागं तु अङ्क' ख. पाठः.

रुद्ररन्ध्रादिबाणाश्च गत्यङ्गुल्यः क्रमात् स्मृताः ।
अष्टाष्टाङ्गुलवृद्ध्या वा हान्या वा यवतोऽथवा ॥ ३८ ॥
पूर्वादीनां गृहाणां तु क्रमादेव गतिः स्मृता ।
सूत्रवेधं तु सर्वेषां स्तम्भमध्यादिषु त्यजेत् ॥ ३९ ॥
आयाममिष्टगेहस्य षट्सप्तादिकरोन्मितम् ।
अष्टघ्नं स्वस्वदिक्सङ्ख्यं त्रिधा कृत्वांशमानतः ॥ ४० ॥
तद्गृहस्य परीणाहं कल्पयेन्नरसद्मनि ।
तदर्धाद् दीर्घशेषं तु विस्तारं तस्य निर्दिशेत् ॥ ४१ ॥
अथवा गुणभागेन तारं पादोनवर्जितम्
दीर्घाधिक्यं विनाशाय मृतये हीनदीर्घता ॥ ४२ ॥
तस्मान्निर्दिष्टहस्तेभ्यो हीनाधिक्यं न कारयेत् ।
अङ्गुलीभिर्न दोषः स्यादुभयत्र करादृते ॥ ४३ ॥
नेष्टमङ्गुलिविच्छेदं[1] गुणविस्तारकल्पने ।
अन्तरालाश्च वसवो दिग्विदिग्भेदकारकाः ॥ ४४ ॥
अन्तरालरय बाहल्यं गृहविस्तारतो विदुः ।
तदाधिक्येऽर्थनाशः स्यात् सूत्रार्धान्न च हीयते ॥ ४५ ॥
तस्मात् सङ्कुचिते व्याधिस्तस्मात् ते परिवर्जयेत् ।
अथ त्रिशालकम् —
उत्तरशालारहितं हिरण्यनाभं त्रिशालकं वसुदम् ।
प्राक्शालारहितं स्यात् सुक्षेत्रं (तत्) समृद्धिदं वास्तु ॥ ४६ ॥
याम्यविहीनं शूलं त्रिशालकं वित्तनाशनं कुरुते ।
पक्षघ्नमपरवर्जे पुत्रघ्नं वैरिमानदं भवति ॥ ४७ ॥

---

१. 'ल' क. पाठः.

अथ द्विशालकम् —

पूर्वापरयोर्हीना यस्मिञ् शाला वदन्ति गृहचुल्लीम्।
दक्षिणसौम्यविहीनं सिद्धार्थकमाह वागधिपः॥ ४८॥

पश्चिमयमगा शाला यमशूर्पे पश्चिमोत्तरा शाला।
दण्डाख्या सा कथिता पुरातनैः शिल्पशास्त्रनिष्णातैः॥ ४९॥

उत्तरपूर्वा शाला वाताख्या भवति मानुषे सदने।
प्राच्यावाच्या शाला यमदैवतनामधेया सा॥ ५०॥

सिद्धार्थेऽर्थावाप्तिर्यमशूर्पे गृहपतेर्मृत्युः॥ ५१॥

दण्डाख्ये दण्डवधं गृहचुल्ल्यामपि कलहमुद्वेलम्।
वाताख्ये वातभयं यमदैवतनाम्नि मृत्युरेव स्यात्॥ ५२॥

अथ चतुःशालम् —

स्वयोनिव्यासगतयो दिग्विदिक्षु च संस्थिताः।
भिन्नशालेति सा प्रोक्ता मनुजानां शुभप्रदा॥ ५३॥

पर्यन्तध्वजमादधीत चतुरश्रं मध्यतश्राङ्कणं
तत्पार्श्वेऽप्यतिपत्रमानमपरं चाभ्यन्तरं केतनम्।
तत्तुर्यश्रयुजोत्थकोणचतुरश्रेपूत्तरान्तर्ध्वजं
युक्त्या तूत्तरविस्तृतिं च जनयेत् तुर्यश्रशालाविधौ॥ ५४॥

इष्टदिग्योनियुक्ता च पर्यन्तेनैकलक्षणा।
समतुर्यश्रका ज्ञेयाप्येकशालाथवायता॥ ५५॥

एतयोः शालयोरत्र नान्तरालानि सन्त्यतः।
शूद्रादिसूतिकादीना प्रवेशे स्पृष्टिसम्भवात्॥ ५६॥

---

१. 'ष्टो', २. 'अ' क. पाठः.

अशुचिर्व्याप्यतेऽन्यस्मिन्नपि तत्र गृहत्रिके ।
एकच्छायेन तस्मात् ते वर्जयेद् भूसुरालये ॥ ५७ ॥

ध्वजः कोणेषु पर्यन्ते दिक्षु दिङ्मानभेदकाः ।
नाम्ना तुर्यश्रभिन्ना या नेष्टा विप्रालयेऽपि सा ॥ ५८ ॥

तद्भेदः —

कृत्वा बाह्यान्तरवृतिमिमामुक्तक्लृप्त्या ततोऽन्यां
दिक्कोणाद् यद्गृहपरिमितिं योनिभेदोपपन्नाम् ।
कुर्याद् युक्त्या मितिषु कुशलः सा तु तुर्यश्रशाला
प्राग्वन्मध्येऽङ्कणविलसिता स्यात् पुनर्भिन्नशाला ॥ ५९ ॥

दिग्गेहानि विदुर्गृहैरभिमतैर्योनिप्रभिन्नैर्मिथः[1]
श्लिष्टानीह बहिः समैः परिमिता सीमा च मध्येऽङ्कणम् ।
श्लिष्टानां तु मिथो भवेदिह मितिः सम्भूय धाम्नां ध्वजं
भिन्ना सैकविदिश्यसत्यपि पुनस्तुर्यश्रशाला मता ॥ ६० ॥

द्वारं मुखेषु कर्तव्यं सर्वेषामपि वेश्मनाम् ।
मध्यस्थं द्वारमध्यं स्याद् वास्तुमन्दिरसूत्रयोः ॥ ६१ ॥

आशाहर्पतिसूत्रभेदिनि गृहे षष्ठेऽथ वा सप्तमे
सूत्रे द्वारमथापरं वितनुयाच्छालासु सव्यार्धके ।
सिंहोक्षद्विपकेतुयोनिविहितं चाग्न्यादिकोणालयं
मित्रे दक्षिणपश्चिमे पुनरुदक्प्राच्ये च गेहे मिथः ॥ ६२ ॥

अथवान्यप्रकारेण मित्रत्वं कैश्चिदिष्यते ।
वास्तु(नः) पूर्वपार्श्वस्थे गेहेऽन्योन्यमिति स्फुटम् ॥ ६३ ॥

---

१. 'दिग्गृहै' ख. पाठः.

एकस्मिन्नशुचौ सत्यां तन्मित्रेऽप्यशुचिः स्मृता ।
अनुसृत्योभयं मार्गमाचरेत् तदनापदि ॥ ६४ ॥

अथ देवालयतो विशेषमाह —

रूपोत्तरस्य तु क्वापि क्षुद्रवाजनमिष्यते ।
अङ्घ्रेस्तथा मध्यखण्डमारूढं भूषणाय च ॥ ६५ ॥

शिलाबडमसूरं च सुधामिलितभित्तिकम् ।
पञ्चैतान्यपि निन्द्यानि दृश्यन्ते नरसद्मनि ॥ ६६ ॥

प्राच्ये चाग्निसमर्चनादिकमुदीचीने कुटुम्बादिकं
व्यत्यस्य प्रकरोतु वा द्वयमिदं याम्येऽतिथिप्रीणनम् ।
पाश्चात्त्ये धनसंनिधापनमतो द्वन्द्वं विपर्यस्य वा
शेषार्धे तु तयोस्तथा शयनविद्याभ्यासनाद्यं चरेत् ॥ ६७ ॥

माहेन्द्रे सलिलाधिराजि च तटाकं कूपमैशानके
पर्जन्ये पचनालयं शिखिनि वा भुक्त्यालयं तत्पुरः ।
कर्तव्यं खलसद्म नैर्ऋतपदे कुर्वीत धान्यालयं
गोशालाम्बुपतौ हरावपि समीरे धाम चौलूखलम् ॥ ६८ ॥

ग्रामादिपूक्तवत् सर्वमनुक्तं स्थानमाचरेत् ।

अथ द्वारं —

द्वारपादस्य बाहल्यं तुल्यमुत्तरमानतः ॥ ६९ ॥
स्वस्वयोन्या गृहादीनां कल्प्यन्तां द्वारयोनयः ।
प्रस्तरोत्तरयोर्मध्यं पञ्चधा विभजेद् बुधः ॥ ७० ॥
द्वारायामं चतुर्भागमष्टसप्तांशमेव वा ।
शेषांशे द्वादशांशे तु पञ्चांशं गुल्फमिष्यते ॥ ७१ ॥

शिरोन्मानं तु सप्तांशमथवा नवभाजिते ।
गुल्फमानं चतुर्भागं तत्र पञ्चांशकं शिरः ॥ ७२ ॥

उत्सेधशेषं परिधेर्द्वारतारमुदाहृतम् ।
उत्सेधे नवसम्भक्ते पञ्चांशं वात्र विस्तृतम् ॥ ७३ ॥

अथवा गुणतारं वा कुर्याद् द्वारं यथोचितम् ।
कुर्यात् प्राङ्मुखतो गमागमकृते द्वारं महत् पादुके
हस्तैर्वाङ्गुलकैः प्रकल्पितशुभायाग्ररूढोत्तरम् ।
स्वायामप्रतिभक्तरुद्रदशनन्देभांसविष्कम्भत-
त्खण्डोत्पन्नघनाङ्घ्रियुग्मविलसन्मङ्गल्यपट्ट्यादिकम् ॥७४॥

आग्नेय्यामप्यमुखद्वारं दक्षिणाशामुखं स्मृतम् ॥ ७५ ॥

प्रत्यङ्मुखं तु नैर्ऋत्यां वायव्यां तदुदङ्मुखम् ।
ईशे तु प्राङ्मुखं कुर्यात् तानि स्युः पादुकोपरि ॥ ७६ ॥

अथान्यथा चतुःशालविधानमाह —

चतुःशालं त्रिशालं च द्विशालं चैकशालकम् ।
वक्ष्यामि भवनं राज्ञां नामलक्षणसंयुतम् ॥ ७७ ॥

अलिन्दगैश्चतुर्द्वारैश्चतुःशालमुदाहृतम् ।
सर्वतोभद्रनामेदं नृपाणां शस्यते गृहम् ॥ ७८ ॥

नन्द्यावर्तमिति ख्यातं पश्चिमद्वारवर्जितम् ।
वर्धमानं तथा ख्यातं दक्षिणद्वारवर्जितम् ॥ ७९ ॥

स्वस्तिकं तद् भवेन्नाम्ना पूर्वद्वारविवर्जितम् ।
उत्तरद्वारहीनं चेद् रुचकं तद् भवेद् गृहम् ॥ ८० ॥

नन्द्यावर्तादि चत्वारि स्युस्त्रिशालानि भूभुजाम् ।

अथान्यथा —

नैर्ऋते मुख्यगेहं स्याच्छाले चोत्तरपूर्वगे ॥ ८१ ॥

पूर्वायाश्चोत्तरद्वारमुत्तरायाश्च पूर्वतः ।
कर्तव्ये गर्भगेहस्य द्वारे वास्तुविचक्षणैः ॥ ८२ ॥

एकं स्यात् पूर्वतो द्वारमन्यदुत्तरतः स्मृतम् ।
अङ्कणाद् दक्षिणा शाला हस्तिनी परिकीर्तिता । ८३ ॥

अङ्कणात् पश्चिमा शाला महिषीति निगद्यते ।
इदं द्विशालं सिद्धार्थं सर्वकामफलप्रदम् ॥ ८४ ॥

नृपाणां शस्यते स्थानं विशेषाद् वित्तवर्धनम् ।
वायव्ये गर्भगेहं स्यात् शाले दक्षिणपूर्वगे ॥ ८५ ॥

द्वारे शालामुखे कार्ये शालाद्वारे च सम्मुखे ।
महिषी त्वङ्कणात् पश्चादुत्तरा गौः प्रकीर्तिता ॥ ८६ ॥

द्विशालं भयदं चैतद् द्वारपुर्यां विनिन्दितम् ।
ईशाने प्रथमे वेश्मे(?) शाले दक्षिणपश्चिमे ॥ ८७ ॥

अङ्कणात् पूर्वशालाखी + गौरुत्तरदिग्गता(?)।
व्यासाख्यं नाम तत् प्रोक्तं नृणामुद्वेगकारणम् ॥ ८८ ॥

विशालमेकं सिद्धार्थं प्रशस्तं पृथिवीभुजाम् ।
क्रीडार्थं तन्निवासार्थं भोगार्थं च प्रशस्यते ॥ ८९ ॥

ध्रुवं हीनमलिन्देन पूर्वालिन्दं तु धन्यकम् ।
जयं स्याद् दक्षिणालिन्दं पश्चालिन्दं खरं भवेत् ॥ ९० ॥

दुर्मुखं चोत्तरालिन्दमेकालिन्दं चतुर्गृहम् ।
धन्यं जयं च शुभदं निन्दिते खरदुर्मुखे ॥ ९१ ॥

पूर्वदक्षिणतोऽलिन्दं नन्दमित्यभिधीयते ।
याम्यपश्चिमतोऽलिन्दं क्षयमित्यभिधीयते ॥ ९२ ॥
पूर्वपश्चिमतोऽलिन्दं कान्तं नाम्ना निगद्यते ।
दक्षिणोत्तरतोऽलिन्दं सुपक्षं परिचक्षते ॥ ९३ ॥
उत्तरालिन्दहीनं चेत् सुखं तत्तु प्रकीर्तितम् ।
पश्चिमालिन्दतो हीनं धनदं गेहमुच्यते ॥ ९४ ॥
दक्षिणालिन्दहीनं यदाक्रोन्तं[1] तदुदाहृतम् ।
पूर्वालिन्दविहीनं यद् विपुलं परिकीर्त्यते ॥ ९५ ॥
सर्वतोऽलिन्दतो युक्तं विजयं गेहमुत्तमम् ।
एवं षोडशगेहानि कथितानि परिस्फुटम् ॥ ९६ ॥
यथानाम फलं तेषु ज्ञेयं तत्र निवासिनाम् ।
धन्यं तस्मात् प्रकर्तव्यं नृपाणां गेहमुत्तमम् ॥ ९७ ॥
हीनस्तम्भमलिन्दं स्याच्छाला स्तम्भैः समावृता ।
नृपाणां गृहकर्तॄणां (कर्म ? क्रम) एष निरूपितः ॥ ९८ ॥
मुखं द्वारं विनिर्दिष्टं मन्दिरस्य विचक्षणैः ।

**अथान्यथा —**

नृपगेहानि वक्ष्यामि स्तम्भसंख्याप्रमाणतः ॥ ९९ ॥
चतुष्कालिन्दशोभीनि चतुर्भद्रैर्मनोहरैः ।
पृथ्वीजयं गृहं कार्यं दशभागं विचक्षणैः ॥ १०० ॥
मध्ये स्तम्भशतं तस्य भद्रेऽष्टाविंशतिस्तथा ।
चतुर्भद्रेषु च शतं स्तम्भानां द्वादशाधिकम् ॥ १०१ ॥

---

१. 'स' क. पाठः. २. 'का' ख. पाठः.

नवकोणविदिग्गेहे (स्यात् ? स्युः) षड्विंशच्चतुर्ष्वपि ।
चत्वारो मध्यगाः स्तम्भा यत्र तस्यां चतुष्कृतम् ॥ १०२ ॥
तस्माद् बहिरलिन्दः स्याच्छाला स्यात् तदनन्तरम् ।
अलिन्दं च पुनः शाला क्रमेणैवं प्रवर्तते ॥ १०३ ॥
यावत् कर्तुमभीष्टं स्याद् गृहं नरपतेः शुभम् ।
यच्चतुष्कशतं क्षेत्रं पञ्चधा तद् विभज्यते ॥ १०४ ॥
तद्भागप्र(तिमं ? मितं) कार्यं त्रिभिर्भागैरलिन्दकम् ।
सार्धत्रिभागिका शाला कर्तव्या सुविचक्षणैः ॥ १०५ ॥
इयं स्थितिः समस्तानां गृहाणां प्रतिपादिता ।
नाम्ना तु मुखकोणं यत् त(द्भागं ? त्कार्यं) रविभागतः ॥
मध्यस्तम्भाः शतं सार्धं षड्भिर्न्यूना निरूपिताः ।
शतं षष्टयधिकं ते स्युश्चतुर्भद्रेषु सङ्ख्यया ॥ १०७ ॥
एकादश तथा कोणे विदिशं विदिशं प्रति ।
चतुर्दश तथा त्रिंशच्चतसृष्वपि संख्यया ॥ १०८ ॥
कथ्यते सर्वतोभ(द्रे ? द्रं) मनुभागैर्विभाजितम् ।
मध्यस्तम्भा भवन्त्यस्य षण्णवत्यधिकं शतम् ॥ १०९ ॥
चत्वारिंशत् तथाचैव भद्रे स्तम्भा निरूपिताः ।
एवं च(तस्य ? तुर्षु) भद्रेषु शतं षष्टिस्तथाष्टकम् ॥ ११० ॥
कोणास्तस्य विधातव्यास्त्रयोदशमिता बुधैः ।
समन्ताद् गुणिताः कोणा द्विपञ्चाशद् भवन्ति ते ॥
श्रीवत्समष्टभागं स्याच्चतुःषष्टिस्तु मध्यमाः ।
तस्य स्तम्भाः प्रयोक्तव्या भद्रेऽष्टादशसंख्यया ॥ ११२ ॥

---

१. 'ग्देशे स्यात्' ग. पाठः. २. 'णे तस्मा वि' ख. पाठः.

चतुर्ष्वपि च भद्रेषु द्विसप्ततिरुदाहृताः ।
सप्तकोणाः समन्ताच्च द्विगुणा मनुसंख्यया ॥ ११३ ॥
एवमादीन्यनन्तानि गेहानि धरणीभुजाम् ।
कियन्त्यपि मयोक्तानि प्रधानानि यथाक्रमम् ॥ ११४ ॥
तिष्ठन् गेहेषु शस्तेषु श्रियमाप्नोति पुष्कलाम् ।
आरोग्यं विजयं कीर्तिं सन्तोषं परमाप्नुयात् ॥ ११५ ॥
ईदृग्लक्षणसंयुक्तान् विविधान् बहुभूमिकान् ।
कारयित्वा महीपालः प्राच्यैचन्द्र(इ ?ब)लं महत् ॥
इति विज्ञाय नृपतिर्वासार्थं गृहमुत्तमम् ।
सुलक्षणयुतं दोषैर्विहीनं कारयेत् सुखम् ॥ ११७ ॥
ईशानभागकोणे तु सर्वलक्षणसंयुतम् ।
पूर्वतो मुखशालाया देवतारूपचिह्नितम् ॥ ११८ ॥
देवकार्यगृहं कार्यं नृपाणां सुमनोहरम् ।
स्नानगेहं तु तत्पार्श्वे कर्तव्यं वेदिकायुतम् ॥ ११९ ॥
होमशाला तदभ्याशे बहिः कुण्डविमण्डिता ।
धूमनिर्गमनोपायकृतजालपरिष्करा ॥ १२० ॥
अन्यान्युपगृहादीनि सुभक्तानि पुरैव हि ।
चित्रं लक्षणसंयुक्तं लेखयित्वा महीपतिः ॥ १२१ ॥
गृहस्यान्तर्बहिःकुड्यमुखेषु च विभूषयेत् ।
पूर्वतः शिल्पिनो गेहं परिगृह्य विनिर्मितम् ॥ १२२ ॥
गोमयाद्यैर्जलाद्यैश्च शुद्धिं विधिवदाचरेत् ।
अथ वास्तुबलिं विप्रैः कारयेत् तद्विधेर्भिदाम् ॥ १२३ ॥

---

१. 'प्य' ख. पाठः.

वक्ष्ये पूर्वोक्तमार्गात्तु तद्धोमस्य विशेषकम् ।
अन्तर्गृहस्य कोणे स्याद् (?) ऐशाने शालिपिष्टकैः ॥
मण्डलं कारयेदेकाशीतिकोष्ठैर्यथापुरम् ।
कुण्डं त्रिमेखलं कार्यं मण्डलेशानभागतः ॥ १२५ ॥
तत्र होमः प्रकर्तव्यः शास्त्रदृष्टेन वर्त्मना ।
ततो मण्डलसंस्थाभ्यो देवताभ्यो बलिं हरेत् ॥ १२६ ॥
घृतान्नं देयमीशाय पर्जन्यायाज्यसंयुतम् ।
ओदनं सात्त्वतं दद्याज्जयन्ताय निवेदयेत् ॥ १२७ ॥
ध्वजानपूपान् पिष्टेन कूर्मरूपं प्रकल्पितम् ।
पैष्टं कुलिशमिन्द्राय पञ्च रत्नानि चार्पयेत् ॥ १२८ ॥
धूम्रवर्णं वितानं च सक्तून् सूर्याय कल्पयेत् ।
सत्याय घृतगोधूममत्स्यान् दद्याद् भृशाय च ॥ १२९ ॥
शष्कुलीरन्तरिक्षाय सक्तून् दद्याच्च पावके ।
पूष्णे लाजाः प्रदातव्या वितथे च(र ?)णकौदनम् ॥
गृहक्षताय मध्वन्नं यमाय पललौदनम् ।
गन्धर्वाय सुगन्धं च *भृ(शा ?ङ्गा)य रणजिह्मकः ?) ॥
मृगाय यावकं देयं पितृभ्यः कृसरांस्तथा ।
दौवारिके दन्तकाष्ठं पैष्टं कृष्णबलिं तथा ॥ १३२ ॥
क्षिपेदपूपं सुग्रीवे पुष्पदन्ते तु पायसम् ।
कमलं सकुशस्तम्बं वरुणाय समर्पयेत् ॥ १३३ ॥

---

* अत्रैव पूर्वभागे 'स्यात् पक्षिजिह्वा त्वथ भृङ्गराजे' (अध्या० ७ श्लो० ५१) इत्युक्तम् ।

असुराय सुरा देया पैष्टं सौवर्णमेव च ।
घृतौदनं च शेषाय यवाः स्युः पापसंज्ञके ॥ १३४ ॥
रोगाय मोदकान् स(पींन्?र्पिः) फणिने नागकेसरम् ।
भक्ष्यो मुख्याय दातव्यः फल्लाटाय ततः क्षिपेत् ॥ १३५ ॥
मुद्गौदनं ततः सोमे पायसं मधुमिश्रितम् ।
शालिपिष्टं त्वर्गलाय लोविकामदितेः क्षिपेत् ॥ १३६ ॥
दित्यै तु पूरिकान् दद्यादित्येवं बाह्यतो बलिः ।
मण्डलान्तरसंस्थानामिदानीं बलिरुच्यते ॥ १३७ ॥
आपाय दापयेत् क्षीरमापवत्साय वै दधि ।
आर्यं पैक्कं[1] तथा मांसं दातव्यं बलिकर्मणि ॥ १३८ ॥
सावि(त्र्यै?त्रे) मोदकं दद्याद् मरिचं[2] सकुशौदनम् ।
सवित्रे गुडपूपांश्च देयं स्याद् घृतचन्दनम् ॥ १३९ ॥
विवस्वते प्रदातव्यं पायसं रक्तचन्दनम् ।
देवाधिपतये दद्यात् तालमिश्रं घृतौदनम्* ॥ १४० ॥
मित्राय सघृतं भक्तं रुद्राय (सुध?गुड)पायसम् ।
पृथ्वीधराय मांसानि सकूश्माण्डानि दापयेत् ॥ १४१ ॥
आज्यं च दधिसंयुक्तं ब्रह्मणे विनिवेदयेत् ।
शर्वस्कन्दाय चार्यम्णे जम्भके पिलिपिञ्जके ॥ १४२ ॥

---

१. 'शे' ख. पाठः. २. 'तत्त्वं त', ३. 'चिं' क. पाठः.

---

* इन्द्रानन्तरम् इन्द्रजयस्य, रुद्रानन्तरं रुद्रजयस्य च पूजा मातृकासु लुप्ता स्यात् । सैषा 'शुद्धान्नमेवेन्द्रजयाय शस्तम्', 'मांसं तथा रुद्रजये त्वपक्वम्' (क्रियापा० पट० २७. श्लो० २५) इति गुरुदेववचनादधगन्तव्या ।

तिलाक्षतं पञ्चगव्यं भक्ष्यं भोज्यं पृथग्विधम् ।
मांसौदनं सरुधिरं हरिद्रौदनमेव च ॥ १४३ ॥
ईशानदिशमाश्रित्य चरक्यै विनिवेदयेत् ।
आग्नेयीं दिशमाश्रित्य स्थितायै मांसखण्डकम्॥ १४४ ॥
दध्योदनं सरुधिरं विदार्यै विनिवेदयेत् ।
पूतनायै च नैर्ऋत्यां पीतं रक्तं बलिं क्षिपेत् ॥ १४५ ॥
वायव्ये पापराक्षस्यै मत्स्यमांसं सुरासवम् ।
पायसं वा प्रदातव्यं तन्नाम्ना सर्वतः क्रमात्॥ १४६ ॥
सर्वेषां काञ्चनं दद्याद् ब्रह्मणे गां पयस्विनीम् ।
राक्षसानां बलिं दद्यान्मधुमांसौदनान्वितम् ॥ १४७ ॥
एवं सम्पूजिता देवाः शान्तिं कुर्वन्ति ते सदा ।
विप्रांश्च पूजयेद् भक्त्या विदुषो गृहमागतान्॥ १४८ ॥
इति वा(स्तो ? स्तू)पशमनं विरचय्य समाचरेत् ।
प्रासादभवनोद्यानप्रारम्भे च समापने ॥ १४९ ॥
परमैश्वर्यवृद्ध्यर्थं सर्वदोषोपशान्तये ।
विधाय वास्तुपूजां च गृहं सूत्रेण सर्वतः ॥ १५० ॥
पावमानेन सूक्तेन रक्षोघ्नेन च वेष्टयेत् ।
मङ्गलं तूर्यघोषेण कुर्याद् ब्राह्मणवाचकैः॥ १५१ ॥
वृतं सद्म विशेद् राजा सुमुहूर्ते विशेषतः ।
ब्राह्मणोदीरितैर्मन्त्रैः शोभनैः शङ्खनिस्वनैः ॥ १५२ ॥
मङ्गलैस्तूर्यनादैश्च विशेद् वेश्म विशांपतिः ।
प्रासादे रुचिरोत्तुङ्गे सौवर्णकलशान्विते॥ १५३ ॥

सुधाधवलिते रम्ये रचनापरिशोभिते ।
जालमार्गकृतोद्यानै क्वापि सर्वप्रकाशके ॥ १५४ ॥
क्वापि सन्तमसोपेते मणिदीपप्रकाशिते ।
सौवर्णस्तम्भरुचिरे चन्दनस्तम्भगन्धिनि ॥ १५५ ॥
काचकुट्टिमरोचिष्णौ स्फटिकोज्ज्वलकुट्टिमे ।
स्फाटिकोपलविन्यासदर्पणाकारभित्तिके ॥ १५६ ॥
विचित्रचित्रसंयुक्तप्रमोदप्रदकुट्टिमे ।
चित्रवस्त्रसमाकीर्णवितानेनोपरञ्जिते ॥ १५७ ॥
यथासुखं विशेद् राजा राष्ट्रैश्वर्यसमन्वितः ॥ १५७½ ॥

इति शिल्परत्ने उत्तरभागे मनुष्यालयलक्षणं नाम
एकत्रिंशोऽध्यायः ॥

---

## अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः ।

### अथ कूपप्रश्नः ।

मीनकर्किमृगान्त्यार्धवृषतौल्यलियोषितः ।
कुम्भश्च तोयदानि स्युर्ग्रहेषु शशिभार्गवौ ॥ १ ॥
तोयात्मकौ ज्ञजीवौ तु सतोयौ तोयराशिगौ ।
वितोयावन्यराशिस्थावथ शन्यर्कभूमिजाः ॥ २ ॥
राहुश्च जलराशिस्थाः स्वल्पतोया भवन्ति हि ।
जलवत्यजलेन गतेऽधस्ताज्जलमुपरि भवति विपरीते ।
जलवह्नयसंपाते प्रभूतमुदकं विनिर्देश्यम् ॥ ३ ॥
स्पृशति यदि वामभागे नैर्ऋतभागे विनिर्दिशेद् वारि ।
ऐशान्यामूर्ध्वाङ्गे शेषेषु स्पर्शतोऽनिलस्थाने ॥ ४ ॥

जलसंज्ञो राशिर्वा जलग्रहो वापि लग्नगतः ।
कूपविधौ चिन्त्यः स्यादार्द्रद्रव्यप्रसङ्गो वा ॥ ५ ॥
प्रश्नवचनादिवर्णे वर्गचतुर्थे(थ)वा स्वरे दीर्घे ।
भवति जलं न भवति तद्वर्गादौ चान्तिमे द्वितीये वा ॥ ६ ॥
राहुयुतश्चन्द्रश्चे(च्चर)लग्नस्थो भवेदम्बु ।
दशमगते वा भानौ पातालस्थो गुरुस्तथा तादृक् ॥ ७ ॥
लग्ने जलवति सेन्दौ प्रष्टरि जलराशिगे भवेदम्भः ।
पातालस्थे पाते पृच्छकचन्द्रौ सहस्थितौ तद्वत् ॥ ८ ॥
स्वोच्चगतौ भृग्विन्दू नीचगतैः प्रेक्षितौ पृथग् जलदौ ।
प्राग्गमने चण्डालो यद्यागच्छेत् तदाशु वेश्या वा ॥ ९ ॥
प्रमुषितको यदि वायात् कूपे वाच्यं जलं भूरि ।
आर्द्रद्रव्यं स्पृशति यदि वा वारे तत्संज्ञितं वा ।
तोयासन्नो भवति यदि वा तोयकार्योन्मुखो वा ।
प्रष्टा वाच्यः सलिलमचिरादस्ति निःसंशयेन
पृच्छाकाले सलिलमिति वा श्रूयते यत्र शब्दः ॥ १० ॥
अम्भःप्रश्ने सलिलनिलयं राशिमाश्रित्य चन्द्रो
लग्नं यातो भवति यदि वा केन्द्रगः शुक्लपक्षे ।
सौम्यैर्दृष्टः प्रचुरमुदकं पापदृष्टोऽल्पमम्भ-
श्चिन्त्यो युक्त्या सुमतिभिरतश्चन्द्रवद् भार्गवोऽपि ॥ ११ ॥
पातालराशियुक्ताद् ग्रहयोगाद् दर्शनाच्चापि ।
कूपाम्भोरसमाहुर्लग्नवांशेशतुल्यं वा ॥ १२ ॥
कटुलवणतिक्तमिश्रा मधुराम्लौ + कषायमर्कादेः ।
प्रश्नवचनादिवर्णाद् रसभेदाः स्युस्तथा वाच्याः ॥ १३

अकचटतपयशवर्गाश्चन्द्राद्यर्कान्तरसतुल्याः ।
सास्थिनि देहे स्पर्शो नेष्टः शिष्टेषु पुष्टफलम् ॥ १४ ॥
मांसाढ्ये पङ्कयुतं फाले पाषाणसंयुक्तम् ।
प्रष्टरि तोयगते चेत्तोयं सुलभं तथा दृषद् दृषगे ॥ १५ ॥
रुदिते क्षवथौ कासे निष्ठीवे नासिकास्रवे ॥ १६ ॥
शीतच्छायाप्रवेशे च जले दृष्टे श्रुतेऽथवा ।
जलमस्तीति वक्तव्यं पृष्टकाले दृषद्यपि ॥ १७½ ॥

इति शिल्परत्ने उत्तरभागे कूपप्रश्नविधानं नाम
द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥

---

## अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ।

### अथासनादिपरिच्छदलक्षणम् ।

चम्पकाम्रमधूकैर्वा पनसोदुम्बरादिभिः ।
पीठानि कारयेद् विद्वान् सिंहयोन्यन्वितानि वा ॥ १ ॥
गजयोन्यन्वितान्येवं ध्वजयोन्यन्वितानि वा ।
आयतं चतुरश्रं च समं तुर्यश्रमेव वा ॥ २ ॥
वृत्तं वा कच्छपाकारं कारयेत् पीठमुत्तमम् ।
चतुष्पादसमायुक्तं पृष्ठाधारयुतं तु वा ॥ ३ ॥
यथोचितोन्नतोपेतं श्लक्ष्णं दृष्टिमनोहरम् ।
फलकामयमेवं स्याद् वेत्रबन्धमथापि वा ॥ ४ ॥
एतत् पूतासनं देवकार्यादौ विहितं बुधैः ।
कार्पासपूरितं वृत्तं स्थूलं पट्टावकुण्ठितम् ॥ ५ ॥

हंसपिञ्छभृतं वापि सुखासनमितीरितम्।
छागचर्ममयं पीठमूर्णागर्भं सुविस्तृतम् ॥ ६ ॥

नानावर्णविचित्रं तदासनं च सुखाभिधम्।
सितपट्टपिनद्धैश्च हंसपिञ्छैः सुपूरितम् ॥ ७ ॥

स्वेद +++++++ शय्यासनमुत्तमम्।
पञ्चभिः सप्तभिर्वापि नवभिर्लोहजैः पदैः ॥ ८ ॥

लोहपट्टकृताधारैर्लोहजालकमूर्धभिः।
(छटिको ?) पट्टगर्भस्थकार्पासेन विनिर्मितम् ॥ ९ ॥

लोहासनमिदं प्रोक्तमूर्ध्वतः कलितं दृढम्।
एकदारुकृतं श्लक्ष्णं दन्तिदन्तसुचित्रितम् ॥ १० ॥

नानावर्णविचित्राढ्यं पृष्ठे फलकसंयुतम्।
चतुष्पादकृताधारं सार्धहस्तविशालकम् ॥ ११ ॥

प्रायेण सार्धत्रिकरदीर्घं तस्योर्ध्वतः पुनः।
तावन्मात्रायताद्युक्तमृदुशय्यासनादिकम् ॥ १२ ॥

ईषत् समुन्नतं राज्ञां पृष्ठाधारासनं स्मृतम्।
रुचिरेण सुवर्णेन निर्मितं रत्नमण्डितम् ॥ १३ ॥

अष्टाभिः स्फाटिकैः सिंहैः मूर्धभिः सुविधारितम्।
अधः काञ्चनविन्यस्तरत्नवेदित्रयान्वितम् ॥ १४ ॥

आस्थानमण्डपे राज्ञां सिंहासनमिदं वरम्।

अथ व्यजनं—

चामरं तालवृन्तं च द्विविधं व्यजनं स्मृतम् ॥ १५ ॥

मयूरपिच्छसम्भूतं वृत्ताकारविचित्रितम् ।
तालवृन्तमिति ख्यातं ध्वजयोनिसमन्वितम् ॥ १६ ॥

चामरं चमरीपुच्छसम्भवं स्थूलमूलकम् ।
कृशाग्रं सुसितं स्निग्धं तयोर्दण्डं च कारयेत् ॥ १७ ॥

हेमजं रत्नखचितं वृत्तं सुस्पर्शमेव च ।
चन्द्रमण्डलसङ्काशं नानापट्टविनिर्मितम् ॥ १८ ॥

तालवृन्तविशेषं तद् व्यजनं समुदाहृतम् ।
तालपत्रसमुद्भूतमभ्रकालङ्कृतं तु वा ॥ १९ ॥

अथच्छत्रं —

चन्द्रमण्डलसङ्काशं पङ्कजाकारमेव वा ।
लम्बितानेकवरणनीप्रयुक्तमथापि वा ॥ २० ॥

सदण्डं मकुटोपेतं वंशसूत्रादिनिर्मितम् ।
नानाविधपटीच्छन्नं ध्वजयोनिसमन्वितम् ॥ २१ ॥

चित्रितं पट्टसूत्राद्यैश्छत्रमेवं समीरितम् ।
तालीपत्रकृतं वापि वंशदण्डं विशेषतः ॥ २२ ॥

मकुटेनान्वितं वापि वर्जितं वा सुशोभनम् ।
सितपट्टकृतं रत्नदण्डं पङ्कजसन्निभम् ॥ २३ ॥

सरत्नहेममकुटं मुक्तादामविभूषितम् ।
सितच्छत्रमिदं ख्यातं सार्वभौमोचितं स्मृतम् ॥ २४ ॥

प्रतिषिद्धवृक्षनिर्मितशयनासनसेविनां कुलविनाशः ।
व्याधिभयव्ययकलहा भवन्त्यनर्थाश्च नैकविधाः ॥ २५ ॥

(धू?पू)र्वच्छिन्नो (यदिवा) दारुरतद्वत् परीक्ष्य(मा?आ)रम्भे।
यद्यारोहेत् तस्मिन् *कुमारादिकावस्त्रपशुदः सन् (?)॥ २६॥

(सितकुसुम)मत्तवारणदध्यक्षतपूर्णकुम्भरत्नानि।
मङ्गल्यान्यन्यानि च दृष्ट्वारम्भे शुभं ज्ञेयम्॥ २७॥

कर्माङ्गुलं यवाष्टकमुदरासक्तं तुषैः परित्यक्तम्।
अङ्गुलशतं नृपाणां महती शय्या जयाय कृता॥ २८॥

नवतिः सैव षडूना द्वादशहीना त्रिषट्कहीना च।
नृपपुत्रमन्त्रिबलपतिपुरोधसां स्युर्यथासङ्ख्यम्॥ २९॥

अर्धमतोऽष्टांशोनं विष्कम्भो विश्वकर्मणा प्रोक्तः।
आयामत्र्यंशसमः पा(दो)च्छ्रायः सकुक्षिशिराः॥ ३०॥

यः सर्वैः श्रीपर्ण्या पर्यङ्को निर्मितः स धनदाता।
असनकृतो रोगहरस्तिन्दुकसारेण वित्तकरः॥ ३१॥

यः केवलशिंशपया विनिर्मितो बहुविधं स वृद्धिकरः।
चन्दनमयो रिपुघ्नो धर्मयशोदीर्घजीवितकृत्॥ ३२॥

पद्मकपर्यङ्कः श्रियमायुर्दीर्घं श्रुतं शुभं वित्तम्।
कुरुते सालेन कृतः कल्याणं शाकरचितश्च॥ ३३॥

अन्येन समायुक्ता न तिन्दुकिः शिंशपा (च) शुभफलदा।
न श्रीपर्णी नच देवदारुवृक्षो नचाप्यसनः॥ ३४॥

शुभदौ तु सालशाकौ परस्परं संयुतौ पृथक्त्वे च।
तद्वत् पृथक् प्रशस्तौ सहितौ च हरिद्रककदम्बौ॥ ३५॥

फलतरुणा शयनासनमिष्टफलं भवति सर्वेषाम्।
गजदन्तः सर्वेषां प्रोक्ततरूणां प्रशस्यते योगा(त्)॥ ३६॥

* 'कुमारकः पुत्रपशुदः सः' इति पाठः स्यात्।

कार्योऽलङ्कारविधिर्गजदन्तेन प्रशस्तेन ।
दन्तस्य मूलपरिधिं त्र्यायामात् प्रोज्झ्य कल्पयेच्छेषम् ॥
अधिक(मग्रो ?)मनूपचराणां न्यूनं किञ्चिद् गिरीन्द्रचाराणाम् ।
ईषायोगे दारु प्रदक्षिणाग्रं प्रशस्तमाचार्यैः॥ ३८ ॥
अपसव्यैकादिगग्रे भवति भयं भूतसंजनितम् ।
पादे कुम्भाधश्चेद् ग्रन्थिस्तस्मिन् सुदारुणो रोगः॥ ३९॥
कुम्भाधस्ताज्जङ्घा तत्र कृतो जङ्घयोः करोति भयम् ।
तस्याश्चा(धो ?धा) रोऽधः क्षयकृद् द्रव्यस्य तत्र कृतः ॥
खुरदेशे यो ग्रन्थिः खुरिणां पीडाकरः स निर्दिष्टः ।
ईषाशीर्षण्योश्च त्रिभागसंस्थो भवेन्न शुभः ॥ ४१ ॥
निष्कुटमथ कोलाक्षं सूकरनयनं च वत्सनाभं च ।
कालकमन्यद् वृद्धकमिति कथिताश्छिद्रसङ्क्षेपाः ॥ ४२ ॥
*पादपसुषिरं मध्ये सङ्कटमास्ये च निष्कुटच्छिद्रम् ।
निष्पावमाषमात्रं नीलं छिद्रं च कोलाक्षम् ॥ ४३ ॥
सूकरनयनं विषमं विवर्णमध्यं§ द्विपर्वदीर्घं च ।
वामावर्तं भिन्नं पर्वयुतं वत्सनाभाख्यम् ॥ ४४ ॥
कालकसंज्ञं कृष्णं वृद्धकमिति यद् भवेद् विनिर्भिन्नम् ।
दा(रौ पर्य ?रुसवर्ण) छिद्रं न तथा पा(ङ्गं ?पं) समुद्दिष्टम्॥
निष्कुटके द्रव्यस्य क्षयमथ कोलेक्षणे कुलध्वंसः ।
शस्त्रभयं सूकरके रोगभयं वत्सना(भाख्ये ॥ ४६ ॥
कालकवृद्धकसंज्ञं कीटैर्विद्धं च न शुभदं छिद्रम् ।
सर्वं ग्रन्थिप्रचुरं सर्वत्र न शोभनं दारु ॥ ४७ ॥

* 'घटवत् सुषिरम्' इति, § 'अध्यर्धपर्वदीर्घं च' इति च बृहत्संहिता ।

एकद्रुमेण धन्यं वृक्षद्वयनिर्मितं च धन्यतरम् ।
त्रिभि)रात्मजवृद्धिकरं चतुर्भिरर्थो यथाश्वाढ्यम् ॥ ४८ ॥
पञ्चवनस्पतिरचिते पञ्चत्वं याति तत्र यः शेते ।
षट्सप्ताष्टतरूणां काष्ठैर्घटिते कुलविनाशः ॥ ४९ ॥
भूमयो ब्राह्मणादीनां यथोक्ता वास्तुकर्मणि ।
ता एव तेषां शस्यन्ते देवतायतनेष्वपि ॥ ५० ॥

अथ वाहनम् —

डोला सुखासनं तद्वद् रथो नौः प्लवकस्तथा ।
वाहानि पञ्च ज्ञेयानि नराणां कृत्रिमाणि वै ॥ ५१ ॥
सुवक्त्रया वेणुजया हेमरत्ननिबद्धया ।
स्वर्णशृङ्खलया पट्टन्यस्तशय्योपधानया ॥ ५२ ॥
दिव्यपट्टप्रच्छदया वाहकद्वयवाह्यया ।
एकदण्डिकया नद्धं डोलायानं तदुच्यते ॥ ५३ ॥
दन्तिदन्तकृतं हेमरत्नजालविभूषितम् ।
शार्दूलचर्मसंनद्धं दण्डकद्वयधारितम् ॥ ५४ ॥
चतुर्भिर्वाहकैर्वाह्यं हंसशय्यासमन्वितम् ।
पृष्ठाधारेण संयुक्तं सुखासनमिति स्मृतम् ॥ ५५ ॥
वक्ष्यमाणक्रमं चोक्तलक्षणाकारलक्षितम् ।
निर्मितं दन्तिदन्ताद्यैर्नानावर्णविचित्रितम् ॥ ५६ ॥
हेमरत्नसमाकीर्णं मृदुशय्यास्तृतान्वितम् ।
डोलोक्तमार्गसंबद्धदण्डया च समन्वितम् ॥ ५७ ॥
तद्दण्डमध्यसंलम्बहस्ताधारसमन्वितम् ।
यानं यत्तु तदेव स्याद्डोलाभेदमिति स्मृतम् ॥ ५८ ॥

लोहजं दण्डकं मध्यं कृतं दार्वादिभिः पुनः ।
मूलाग्रवाहसुभगं शृङ्खलापट्टिकान्वितम् ॥ ५९ ॥
लोहडोलमिदं तत्तु यानं मानुषसम्मितम् ।
अश्वैश्चतुर्भिर्द्वाभ्यां वा युक्तश्च युगलान्वितैः ॥ ६० ॥
विस्तारादाततताधिक्यः सर्वचित्रसमन्वितः ।
मुखे पृष्ठे यथान्यायं मकराननलक्षितः ॥ ६१ ॥
नानावर्णपताकाभिर्भ्राजितः सुदृढा(त्म ? क्ष)कः ।
स्यन्दनोऽयं नृपाणां वै निर्मितो वाहनोत्तमः ॥ ६२ ॥
डोलादण्डायतं तत्र कारयेद् योनिभेदतः ।
अष्टाङ्गुलोनषड्धस्तं रविहस्तौ प्रशेरते (?) ॥ ६३ ॥
सप्तहस्तं तथाप्यष्टमात्रोनदशहस्तकम् ।
पञ्चहस्तं तथाप्यष्टमात्रान्वितदिगक्षरम् ॥ ६४ ॥
एवं षोढोत्तमं मध्यं सप्तधा कीर्तयाम्यहम् ।
साष्टमात्राष्टहस्तं चाप्येकादशकरं तथा ॥ ६५ ॥
साष्टाङ्गुलं (च) षड्धस्तं नवहस्तं तथैव च ।
साष्टार्काङ्गुलहस्तं च पर्ववद्यो ++++॥ ६६ ॥
अष्टाङ्गुलोनाष्टकरं त्रयोदशकरं पुनः ।

अथ नौः —

लाकुचैः फलकैः क्लृप्ता चोपवल्कलवेष्टिता ॥ ६७ ॥
आयता सुदृढा नीरे सा नौर्यानेषु प्रशस्यते ।
वेणुकम्रीभि(?)रन्योन्यं गुम्फितो वर्तुलाकृतिः ॥ ६८ ॥

---

१. 'र्भी' ख. पाठः.

पिनद्धश्चर्मणा बाह्ये प्लवकोऽयं जलेचरः।
एकवृक्षभवा वा स्यान्नानाकारसमन्विता ॥ ६९ ॥
नौका *नद्रीचिका धान्या (?) महती सागरोचिता।
नानाप्रमाणफलका बहुबद्धा यथादृढम् ॥ ७० ॥
सर्वेषामायतत्र्यंशादधिकं नैव विस्तृतिः।
उत्सेधं च तथायामसमं वा पटपादके ॥ ७१ ॥
नौतारत्रिगुणं प्रोक्तं सर्वत्र पटविस्तृतम्।
एकत्रिपञ्चसप्त स्युः पटपादा यथोचितम् ॥ ७२ ॥
कर्णधारादिसंयुक्तं कार्यं नौवाहनं स्मृतम्।
उत्तमं ध्वजजं यानं मध्ये सिंहगजान्विते ॥ ७३ ॥
वृषयोनिसमायाममधमं वाहनं स्मृतम्।

अथ शयनसाधनम् —

(निषिद्ध ?)हंसपिच्छमयी काचिच्छाल्मलेस्तूलजा परा॥
कार्पासरचिता चान्या केसरैरितरा कृता।
एता वस्त्रदुकूलादिकल्पिताः सुविचित्रिताः ॥ ७५ ॥
पल्लवैः कल्पिता काचित् काचित् कुसुमनिर्मिता।
शीताम्भःपूरिता छागचर्मणा रचिता परा ॥ ७६ ॥
ताः सर्वाः स्वायसंपन्ना दशतालायतान्विताः।
नवतालान्विताः कार्या अष्टतालान्विताश्च वा ॥ ७७ ॥
स्वायामार्धत्रिपादादिविस्तीर्णाः प्रायशः स्विताम् (?)।

अथ खट्वा —

दन्ताङ्घ्रिर्लोहचरणः साष्टापदपदस्तथा ॥ ७८ ॥

---

* 'नभ्रीचिता धन्या' इत्येवञ्जातीयः पाठः. स्यात्

अचलश्च चलश्चैव वेत्रकः पट्टिकामयः ।
डोलाख्यश्चेति कथिता शय्या विद्वद्भिरष्टधा ॥ ७९ ॥
द्विपद(न्त)कृतैः पादैश्चतुर्भिरुपशोभितः ।
दन्ताङ्घ्रिर्नाम मञ्चोऽयं सर्व(मञ्च ? दन्त)मयः शुभः ॥
ताम्रारकूटघटितैश्चरणैस्तन्मयैः शुभैः ।
लोहमञ्चकनामायं सुदृढः परिकीर्तितः ॥ ८१ ॥
चारुचामीकरानद्धो रचनापरिराञ्जितः ।
अष्टापदमयः प्रोक्तो मञ्चकोऽयं चतुष्पदः ॥ ८२ ॥
यन्त्रयन्त्रीकृतैर्नादैरानन्दं तनुते नदन् ।
अचलोऽयं समाख्यातो रतिकेलिसुखावहः ॥ ८३ ॥
उपवेशनमात्रेण गच्छत्यूर्ध्वमधश्च यः ।
दृढाङ्घ्रिश्चारुरूपश्च चलमञ्चः प्रकीर्तितः ॥ ८४ ॥
त्वग्भिर्वेत्रस्य बाह्याभिस्तनुभिर्गुम्फितो घनम् ।
आयामतिर्यक्कर्णाभिर्यथादृष्टिमनोहरम् ॥ ८५ ॥
स्पर्शे मन्दरवाद्यश्च वेत्रमञ्चः प्रकीर्तितः ।
कार्पासगुणकल्पाभिः सुपट्टाभिः सुगुम्फितः ॥ ८६ ॥
दीर्घाभिश्चित्रवर्णाभिर्मञ्चोऽयं पट्टिकाभिधः ।
श्रीकण्ठदारुघटितो नदत्काञ्चनभूषितः ॥ ८७ ॥
फलकामैस्तु(?)तन्नीव्रफलकाचित्रसंयुतः ।
सौघर्णशृङ्खलाबद्धो लम्बमानः स डोलकः ॥ ८८ ॥
मञ्चानामायतं तारं शय्यावत् कारयेद् बुधः ।
आधारमुपधानस्य मञ्चतारसमायतम् ॥ ८९ ॥

---

१. 'मयस्तु' क. पाठः.

तदर्धं वा त्रिपादं वा तुङ्गं तत्सममेव वा ।
फलकं जालकं वाथ कारयेदग्रमूलयोः ॥ ९० ॥
शिरोपधानं पादोपधानं कार्यं यथाशुभम् ।
शय्यातारसमायामं तदर्धविपुलान्वितम् ॥ ९१ ॥
तूलादिपूरितं प्राग्वच्चतुष्कोणसमन्वितम् ।
वृत्ताकारं तु वा कुर्यान्नानावर्णविचित्रितम् ॥ ९२ ॥

अथ पादुकम् —

लघुदारुकृतं चारु सुस्निग्धं पादसंयुतम् ।
तत्तत्पादतलायामविस्तारं सुलघुक्रियम् ॥ ९३ ॥
लघुच्छत्रकृताधारं पादसौख्यप्रदं परम् ।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं कारयेत् पादुकद्वयम् ॥ ९४ ॥
छागत्वचाथ वा कार्यं नानाचित्रविचित्रितम् ।
शुभयोन्यादिसंयुक्तं स्वर्णरत्नविभूषितम् ॥ ९५ ॥
एतेषामपि वस्तूनां हस्तैर्वाङ्गुलकैर्यवैः ।
यथासम्भवमायादि परिध्यादिषु कारयेत् ॥ ९६ ॥

अथ कुडुबादिमानसाधनम् —

वृत्तं वा चतुरश्रं वा धान्यादेर्मानसाधनम् ।
एकाङ्गुलमितं तारं दीर्घं घातं च तत्समम् ॥ ९७ ॥
यत्तद् घनाङ्गुलं प्रोक्तं तेनाहुस्तस्य लक्षणम् ।
सार्धत्रयोदशमितं यत्र जातं घनाङ्गुलम् ॥ ९८ ॥
कुडुबोऽयं समुद्दिष्टः चतुष्पञ्चाशदङ्गुलः ।
घनरूपं यत्र दृष्टं प्रस्थः स्याद् द्विशतोत्तरम् ॥ ९९ ॥

यत्र षोडशकं जातं घनसंज्ञकमङ्गुलम् ।
आढकोऽयं समाख्यातः सर्वधान्यादिमापने ॥ १०० ॥

चतुःषष्टियुतं यस्मिन् घनमष्टशताङ्गुलम् ।
द्रोणोऽयमयुतादूर्ध्वं त्रिसाहस्रघनाङ्गुलम् ॥ १०१ ॥

शतानामष्टकयुतं चतुर्विंशत्समन्वितम् ।
खारीति विदिता तज्ज्ञैः सर्वे वै दारुलोहजाः ॥ १०२ ॥

यथा तेषां बहिर्भागे शुभायादिसमुद्भवः ।
तथा भित्तेर्घनं कुर्यात् सङ्क्रमीथं च लोहजम् ॥ १०३ ॥

ऊर्ध्वभागे तु तन्मध्ये तदाधाराय लोहजम् ।
पादं च पत्रचित्राढ्यं भित्तिबाह्ये सशृङ्खलम् ॥ १०४ ॥

दण्डं सुवर्तुलं लौहं कार्यं धान्यापसारकम् ।
तुर्यश्रे व्यासगुणितमायामगतमात्रकम् ॥ १०५ ॥

तद्धाताङ्गुलनिघ्नं यत् तत् दन्तर्घनाङ्गुलम् ।
वृत्ते व्यासार्धगुणितं नाहार्धं घाततादितम् ॥ १०६ ॥

अथोलूखलादि—

हस्तमात्रससुत्सेधं वर्तुलं लघुमध्यमम् ।
आयामार्धं त्रिपादं वा तारं तच्चयंशमानतः ॥ १०७ ॥

गर्तस्य घातं तारं च शैलं वा वार्क्षमेव वा ।
उलूखलाङ्घ्रिभित्येवं कारयेत् सुदृढं यथा ॥ १०८ ॥

सारदारुकृतान्येव मुसलानि भवन्ति हि ।
पञ्चाङ्गुलोनद्विकराद्यायतानि दृढानि च ॥ १०९ ॥

आयामषोडशांशादिविष्कम्भान्यग्रमूलयोः।
कृष्णलोहैर्मुखं कुर्यात् सर्वधान्यक्षतक्षमम् ॥ ११० ॥
यावद्भिर्मुसलैरिष्टमवघातं नरैरिह।
तावद्भिरेव कार्यं स्यादथवा यन्त्रसंस्थितैः ॥ १११ ॥
मुसलैर्बहुभिश्चेत्तत् कार्यमेकेन तद्दिदा।

अथ तुला —

दशार्धगुञ्जं प्रवदन्ति माषं
माषाह्वयैः षोडशभिश्च कर्षः।
कर्षैश्चतुर्भिश्च पलं तुला त-
च्छतं सुवर्णस्य सुवर्णसंज्ञम् ॥ ११२ ॥

अथ तैलद्रोणिः —

धाराद्यर्थं रोगिणां वैद्यकर्म-
ण्येवं खट्वां कारयेच्छिल्पिवर्यैः।
वृक्षैर्वातघ्नोदितैराम्रदार्वा-
द्यैस्तद्युक्त्या मानुषाणां हिताय ॥ ११३ ॥

खट्वा रुद्रवितस्तिदीर्घमाहिता तुर्यांशविस्तारिता
(सा न चरद्भित्तिकां धर्मतला ?)स्निग्धोपधानाग्रतः।
मूले मात्रमितोक्तनालसुषिरा मूले तथाप्यग्रके
भास्वत्तद्द्विगुणाङ्गुलोच्चचरणद्वन्द्वान्विता स्याद् दृढम्
[॥ ११४ ॥

अथ जलयन्त्रम् —

निर्माय शकटद्वन्द्वं तयोर्दूरस्थयोः पुनः ॥ ११५ ॥

पट्टिकाभिर्नेमिबन्धे परितः परिवेष्टयेत् ।
तिर्यग्गताभिः सुदृढं सान्तरं वृषयोनिकम् ॥ ११६ ॥
तद् यन्त्रं चतुरश्राभं दण्डप्रोतस्वनाभिकम् ।
सुवृत्तं तद्दण्डिकाग्रद्वयं तु भ्रमणक्षमम् ॥ ११७ ॥
जलाशयोपरि यथा तथा स्तम्भेषु योजयेत् ।
पाशे बद्ध्वा त(सः?तः)पात्रं प्रक्षिपेत् तज्जलाशये ॥
तत्पाशाग्रं यन्त्रपृष्ठे वेष्टयित्वा वृतिद्वयम् ।
आकृष्योद्धरणं कार्यं जलस्य लघु यत्नतः ॥ ११९ ॥
अथवा जलपात्राणि वेणुनालकृतानि वै ।
बहूनि पाशे सम्बध्य मालाकारं निरन्तरम् ॥ १२० ॥
मुखे पृष्ठं परस्यास्य मुखेऽन्यस्य यथा तथा ।
यन्त्रपृष्ठे क्षिपेन्मालां जलपात्रमयीमिमाम् ॥ १२१ ॥
भ्रामयेद् यन्त्रमथ तत्तीरगौर्वा महावृषैः ।
तद्दण्डिकास्थसुमहद्यन्त्रान्तरगतैर्नरैः ॥ १२२ ॥
पात्राणि तोयमादाय गत्वोर्ध्वं यन्त्रपृष्ठतः ।
प्रक्षिप्य गच्छन्ति पुनस्तद्भ्रमक्रममानतः ॥ १२३ ॥
तुलायन्त्रेण वा तोयोद्धारणं तत्तु कथ्यते ।
कूपाद्यगाधमानेन दशभागकृतं पुनः ॥ १२४ ॥
तदष्टांशोन्नतं पादद्वन्द्वं तीरेऽब्धिभागतः ।
दूरे संस्थाप्य पादाग्रे दण्डं भ्रमरिकान्वितम् ॥ १२५ ॥
बद्ध्वा भ्रमरिकायां तु तुलादण्डं च योजयेत् ।
पादतुल्यसमायामं भ्रमरादूर्ध्वगं पुनः ॥ १२६ ॥

भ्रमराधोगतं (?) युक्त्या कृत्वास्मिन् भारवाहकम्।
ह्यंशायतं चलं बद्ध्वा भारं तन्मूलतः क्षिपेत् ॥ १२७ ॥
दण्डाग्रे क्षेपणीं बद्ध्वा पाशैर्वंशाग्रजां दृढाम्।
भाण्डं च क्षेपणीमूले योजयेच्चलबन्धतः ॥ १२८ ॥
जलाशयोपरिगतः सङ्क्रमीथस्थितो नरः।
गृहीत्वा क्षेपणीं दोर्भ्यामाकृष्य जलमुद्धरेत् ॥ १२९ ॥

अथेक्षुयन्त्रं —

षडङ्गुलविष्कम्भं वा पादोनद्विकरायतम्।
सुवृत्तमार्जवयुतं सुस्निग्धं सारदारुजम् ॥ १३० ॥
तदग्रेऽर्काङ्गुलायामं शिरःकाष्ठं दशाङ्गुलम्।
विष्कम्भमुभयोः कार्यं तन्नाहेऽथाष्टधा कृते ॥ १३१ ॥
एकैकांशैश्चतुर्दिक्षु कारयेच्चतुरर्गलम्।
अर्गलद्वयमध्यस्थान्यन्तरालान्यथान्यकैः ॥ १३२ ॥
वृत्तपृष्ठान्यर्गलानि काष्ठोष्ठोच्चाय(मका ? ता)नि च[1]।
अन्तरालानि निम्नानि द्विद्विमात्रप्रमाणतः ॥ १३३ ॥
एवं स्तम्भयुगं कृत्वा संस्थाप्योलूखलावटे।
अन्तरालेऽर्गलं कृत्वा मेलयित्वा निरन्ध्रकम् ॥ १३४ ॥
शिरःकाष्ठादधः कार्यं स्तम्भं तत्रगपट्टिका।
यन्त्रस्तम्भद्वयप्रोता विश्लेषभयशङ्कया ॥ १३५ ॥
तयोरन्यतरस्योर्ध्वशिखासम्बन्धयष्टिगैः।
वृषैः स्तम्भमयेत् स्तम्भं तदन्यस्त्वन्यथा तदा ॥ १३६ ॥

१. 'ष्ठोय' ख. पाठः.

करोति भ्रमणं तस्मात् तन्मध्यन्यस्तमैक्षवम् ।
खण्डं संपीड्य निस्सारं पतत्यन्यत्र तत्क्षणात् ॥ १३७ ॥

**अथ नाडीयन्त्रं —**

शुद्धताम्रादिकल्पं यत् कपालं वर्तुलाकृति ।
सर्वतस्तुल्यघनमप्यत्यन्तं लघु तस्य तु ॥ १३८ ॥
मध्ये सूच्यग्रवेधेन कृत्वा सुषिरमल्पकम् ।
कारयेद् घटिकायन्त्रं कालज्ञानाय सर्वतः ॥ १३९ ॥
गालितं जलमादाय महद् भाण्डं प्रपूरयेत् ।
घटिकायन्त्रमादाय तज्जलोपरि विन्यसेत् ॥ १४० ॥
सुषिरेणागतजलैस्तत्पूरणनिमज्जनात् ।
कालो विज्ञायते सम्यक् तत्परीक्षणमुच्यते ॥ १४१ ॥
खमध्यगेऽश्विनीपूर्वतारेष्वन्यतमे बुधः ।
न्यस्य यन्त्रं यथान्यायं विनिद्रः प्रतिपालयेत् ॥ १४२ ॥
यावत् परेऽह्नि तत्तारं खमध्यमधिगच्छति ।
तत्र यन्त्रस्य संजातं षष्ट्यावृत्तिनिमज्जनम् ॥ १४३ ॥
तर्हि सूक्ष्मं भवेद् यन्त्रं नो चेत् सूक्ष्मत्वमाचरेत् ।
अथवा सुषिरीभूतं काचपात्रद्वयं मिथः ॥ १४४ ॥
सुसूक्ष्मवालुकापूर्णं सम्यक् संयोज्य तेन वा ।
नाडीपरीक्षणं युक्त्या कार्यं तत्सिकतास्रवात् ॥ १४५ ॥
ऊर्ध्वपात्रस्थसिकतं निरवशेषमधःस्थिते[1] ।
पात्रे पतनकालं यत् तन्नाडीति निगद्यते[2] ॥ १४६ ॥

---

१. 'व' क. पाठः. २. 'ते अथ स्वर्ण' ख. पाठः.

अङ्गुलं + + + काभिर्घटिकावलयं तथा(?) ।
आवर्तनं च निर्माय बद्ध्वान्योन्यं यथाविधि ॥ १४७ ॥
जलैर्वालुकभाराद्यैर्भ्रामयेद् यन्त्रयन्त्रितम्

अथ स्वर्णकीलं —

स्वर्णकीलस्य वक्ष्यामि लक्षणं वर्णसिद्धये ॥ १४८ ॥
पञ्चवर्णादिपादोनरुद्रवर्णावसानकम् ।
पादवर्णविवृद्ध्या तत्कीलं स्याद् द्वादशद्वयम् ॥ १४९ ॥
आदौ द्वादशकीलानां बहिर्भागे तु लाञ्छनम् ।
अन्तर्भागे तदन्यानामिति पूर्वैरुदाहृतम् ॥ १५० ॥
छेदपञ्चकमाद्यस्य वृत्तत्रयमतःपरम् ।
आवर्तद्वयमन्यस्य वृत्तमेकं परस्य तु ॥ १५१ ॥
अन्ये छेदचतुष्कं तु वृत्तोर्ध्वविपदं परे ।
केवलं हंसपादोऽन्ये हंसपादोपरिस्थितम् ॥ १५२ ॥
छेदश्छेदत्रयं[1] पश्चात् कर्णरेखा ततः परम् ।
छेदद्वयं तथा पश्चादेकच्छेदस्तथैव च ॥ १५३ ॥
अथोर्ध्वद्वादशस्याद्ये कर्णरेखाद्वयं विदुः ।
एकैव + तथा कर्णरेखान्यस्य तथा पुनः ॥ १५४ ॥
हंसपादं तथान्यस्य पञ्चच्छेदं परस्य तु ।
चतुष्कं छेदरेखानां त्रिकं च द्विकमेककम् ॥ १५५ ॥
दशवर्णस्य कीलस्य नोक्तं किमपि लाञ्छनम् ।
वृत्तत्रयं द्विवृत्तं च वृत्तमेकमतःपरम् ॥ १५६ ॥

---

१. 'च्छे' क. पाठः.

एवं सुवर्णकीलानामिदं पूर्वोक्तलक्षणम् ।

अत्रानुक्तं शारिकापञ्जराद्यं
भूषापेटीवस्त्रभाण्डादिकं च ।
हस्तैर्मात्रैर्वा यवैर्नाहविस्ता-
रायामाढ्यं कारयेद् युक्तियुक्तम् ॥ १५७½ ॥

इति शिल्परत्ने उत्तरभागे आसनादिलक्षणं नाम
त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥

---

## अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ।

### अथ कर्मकारवेतनाक्रमः ।

व्रीहीणां वाथ शालीनां प्रस्थषट्कं यदेव सा ।
प्रायेण तक्षकादीनां दृश्यते नित्यवेतना ॥ १ ॥
एतद् द्विगुणितं दद्यात स्थपतेस्तद्विसङ्गुणम् ।
गुरोरिति महद् वाक्यमस्ति शास्त्रेति शुश्रुमः ॥ २ ॥

अथ दारुखण्डिज्ञानं —

दारूणां मूल्यविज्ञाने तदायामस्य मध्यतः ।
त्वचं सारेतरं सर्वं त्यक्त्वा नाहं परिग्रहेत् ॥ ३ ॥
तन्नाहाङ्गुलिवेदांशे स्वघ्ने दार्वायतैः करैः ।
सङ्गुण्य वेदमनुभिः संहता पादखण्डिका ॥ ४ ॥
तच्चतुष्कं पूर्णखण्डी तद्वारा मूल्यमादिशेत् ।
समभूगतवृक्षस्यच्छायामानकरं पुनः ॥ ५ ॥
त्रयोदशहतं स्वस्यच्छायापदयुगाहतम् ।
तरुदीर्घकरं ज्ञेयं नाहं मूलप्रदेशतः ॥ ६ ॥

गृहीत्वा तच्चिभागोनशेषं नाहं प्रकल्पयेत् ।
एवं स्थितस्य वृक्षस्य खण्डिज्ञानं विधीयते ॥ ७ ॥

अथ ककचं —

ककचैर्बहुधा दारौ दारिते सुमहामतिः ।
पृथक् तत्खण्डविस्तारं मात्वा मात्रैः पृथक् पृथक् ॥ ८ ॥
ककचस्पृष्टपार्श्वेषु तत्तदायाममध्यतः ।
तदङ्गुलार्धं गुणयेदायामकरमानतः ॥ ९ ॥
हृत्वा तस्माद् द्वादशाभिस्तत्फलं ककचं स्मृतम् ।
ककचानां समं प्रस्थशालिकं कथ्यवेतना (?) ॥ १० ॥
तद्दशांशं स्थपतये दत्त्वा शेषं परिग्रहेत् ।
वृक्षाणां छेदने तेषां दारणे तक्षणादिषु ॥ ११ ॥
तत्काठिन्यमृदुत्वादिवशान्न्यूनं तथाधिकम् ।
कल्पयेद् वेतना यस्तु तत्तत्कर्मकृतास्तथा (?) ॥ १२ ॥
दशांशकं स्थपतये देयमष्टांशकं तु वा ।

अथ शिलायाः —

शिला कीलचतुष्केण यावत्करमितायता ॥ १३ ॥
दारिता वेतना तस्या व्रीहिप्रस्थं न संशयः ।
दारणद्विगुणं तक्षणे सुश्लक्ष्णीकरणे पुनः ॥ १४ ॥
तस्माद् द्विगुणमेवं स्याद् यावच्छायात्र दृश्यते ।
पूर्वस्माद् द्विगुणा पश्चाद् वेतना शिल्पकारिणाम् ॥ १५ ॥

---

१. 'र', २. 'मुद्धृतः' ख. पाठः. ३. 'तं तथा' क. ग. पाठः. ४. 'ष्कं' ख. पाठः.

अन्योन्यमेलने[1] तक्षणस्तुल्या प्रायेण कल्पिता ।

अथ बिम्बादौ —

यावदङ्गुलमुत्सेधं शिलादार्वादिकल्पिते ॥ १६ ॥
बिम्बे तावत् पणः प्रोक्तस्तदर्धं वात्र चित्रके ।
हस्तायामवितानाढ्यफलकादौ विचक्षणैः ॥ १७ ॥
पणपञ्चकमाख्याता वेतना चित्रलेखने ।

अथ लोहानां —

प्रायशः स्वर्णकारस्य वेतनार्कदशांशकम्[2] ॥ १८ ॥
भूषादिकरणे किञ्चिन्न्यूनं वाप्यधिकं क्वचित् ।
द्राविते तापिते लोहकूटेनाभिहतेऽपि वा ॥ १९ ॥
पूर्वप्रमाण(मो ? तो) हानिर्न स्वर्णस्य मनागपि ।
दृश्यते रजते हानिर्दशांशादिक्रमेण तु ॥ २० ॥
शुद्धताम्रे न हानिः स्यात् सीसे नागेऽथ पैत्तले ।
कृष्णलोहे च पञ्चांशं कांस्ये हानिर्दशांशतः ॥ २१ ॥
एतेषां कर्मकर्तॄणां तत्तद्द्रव्यदशांशकः ।
प्रायेण वेतना प्रोक्ता षडंशं रजते स्मृतम् ॥ २२ ॥
लोहदारुदृषत्तन्तुमृत्तिकादिकृताभिह ।
कुटुम्बपोषणापूर्णा पूर्णा वा स्याद्[3] द्विवेतना ॥ २३ ॥

इति शिल्परत्ने उत्तरभागे वेतनाक्रमविधिर्नाम
चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥

---

१. 'दो' क. पाठः. २. 'तद्दशां' ख. पाठः. ३. 'द्धि वे' क. पाठः.

## अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ।

### अथ शस्त्रलक्षणम् ।

शस्त्रप्रश्नः पूर्वपक्षे पृच्छकस्याशुभाय च ।
शुभवारे तथा वामभागगे पृच्छकेऽपि वा ॥ १ ॥
शुभाय दक्षिणे कृष्णपक्षे पापवारके(?) ।
यत्र दूतः समायाति तद्गतश्चेत् तदा मरुत् ॥ २ ॥
तच्छस्त्रमिष्टफलदमन्यथानिष्टदं वदेत् ।
दूते मरुति दक्षस्थे शुभमन्यत्र मध्यमम् ॥ ३ ॥
दूरादाहूय वा मार्गे यात्रासमयतोऽथवा ।
प्राभृतेन विना मौनमानसो यदि पृच्छति ॥ ४ ॥
तत्कार्यमशुभं वेद्धि तत्र शस्त्रे विशेषतः ।
स्नानभूषादिसंयुक्तो मृष्टाशी हृष्टमानसः ॥ ५ ॥
पृच्छको वा स्वयं वा चेच्छुभं स्यादन्यथाशुभम् ।
नागवल्लीदलं पूगं पुष्पमुर्वारुकादिकम् ॥ ६ ॥
केरवृक्षफलं वेक्षुविकारं कदलीफलम् ।
गोरसानि च मुख्यानि प्राभृतानि विशेषतः ॥ ७ ॥
भिन्ने जीर्णे नीरसे वा प्राभृतेऽप्यशुभं वदेत् ।
कुट्टिमोपरि विन्यस्य पादमेकं परं भुवि ॥ ८ ॥
पृच्छेदशुभदं विद्यादूर्ध्वमालोक्य चेत् तथा ।
कक्षे विन्यस्य पृच्छा चेत् पृष्ट्वा पश्चाद्गतोऽथवा ॥ ९ ॥
तस्कराद्यैः क्षयं ब्रूहि शुभं वक्षसि मेलनम् ।
सच्छिद्रमायुधं विद्यान्नवद्वारगते करे ॥ १० ॥

छिद्रमग्रे ह्यधद्वारस्पर्शनेऽन्यत्र चेदधः ।
अङ्गसन्धौ करं न्यस्येच्छस्त्रे संधार्ममुच्यताम् ॥ ११ ॥
पृच्छकश्चलपादश्चेदाशु गच्छति तत्करात् ।
कृपाणे निश्चलीभूते हिंसादौ न प्रशस्यते ॥ १२ ॥
भूमौ कृपाणं विन्यस्य पृष्टे[1] निष्फलतां वदेत् ।
मध्ये गृहीत्वा चेदेवं शस्त्रमालोक्य चेच्छुभम् ॥ १३ ॥
निम्नभूमिगते दूते स्वस्मादुत्तमजातितः ।
औन्नत्यभूमिगे नीचात् स्वीकृतासीति कथ्यताम् ॥ १४ ॥
तत्पूर्वेऽह्नि यथा स्वस्य सुखदुःखाशनादिकम् ।
तथास्य स्वीकृतेदिने सम्यगूह्य विनिर्दिशेत् ॥ १५ ॥
कण्ठादूर्ध्वाङ्गसंस्पर्शे ब्रह्मवंशं कृपाणकम् ।
तदधः स्तनयोरूर्ध्वे क्षत्रवंशं न संशयः ॥ १६ ॥
स्तनादधः कटेरूर्ध्वे वैश्यवंशमिहायुधम्[2] ।
कट्यधः शूद्रवंशं स्यादिति निश्चित्य निर्दिशेत् ॥ १७ ॥
तत्कालोदयराशिर्वा दूतगो वा तदायुधम् ।
दृश्यते यत्र तद्राशिर्न्यस्तराशिरथापि वा ॥ १८ ॥
स्थिरश्चेच्छुभदं ब्रूयात् तदन्यौ मध्यमौ स्मृतौ ।
मेषत्रिकोणाद् विप्राद्या जातिभेदा भवन्ति हि ॥ १९ ॥
अनामिकाङ्गुलस्याद्यद्वितीयपर्वायतम् (?) ।
दक्षिणस्य करस्याहुर्मिलित्वा मानसाधनम् ॥ २० ॥

---

१. 'स्पृ' घ. पाठः. २. 'होदितम् ।' क. पाठः.

मात्वा मूलाग्रमायामं दशभिर्गुणयेत् पुनः ।
आयमर्कहृताच्छेषं नवभिरथ वर्धयेत् ॥ २१ ॥
चतुर्दशहृतं शेषं व्ययं शस्त्रस्य निश्चयः ।
त्रिघ्ने अष्टहताच्छेषं योनिः स्यान्नवभिः पुनः ॥ २२ ॥
हत्वा त्रिपञ्चकैर्हत्वा शेषेण तिथिमानयेत् ।
कृत्वा दशगुणं सप्तविंशत्या तारमानयेत् ॥ २३ ॥
हत्वा चतुर्भिर्वारः स्याच्छैलाहरणशेषतः ।
आयाधिक्यं व्ययाद् भद्रमथ योन्यष्टकस्य तु ॥ २४ ॥
ध्वजमार्जारपञ्चास्यश्ववृषाखुशशाः[1] क्रमात् ।
योनयस्तेषु शुभदास्तार्क्ष्यसिंहश्वगोवृषाः[2] ॥ २५ ॥
अथवा ध्वजधूमादीन् कल्पयेद्[3] यदि कथ्यते ।
अर्थलाभश्च कलहो विजयं रोगमेव च ॥ २६ ॥
लाभं दुःखं शुभं तद्वन्निष्फलं च क्रमात् फलम् ।
करणे सिंहशार्दूलौ पशुवृष्टिगजाः[3] शुभाः ॥ २७ ॥
स्थिरविष्टिखराः शस्त्रे करणेषु विनिन्दिताः ।
स्वाङ्गक्षतिस्तु गण्डान्ते शुभवारः प्रशस्यते ॥ २८ ॥
स्वस्य स्ववंशजं शस्त्रं मुख्यमाहुर्मनीषिणः ।
व्ययायौ योनिनक्षत्रतिथिवारान् समूह्य तु ॥ २९ ॥
यज्जातं तत्तदायुस्तत् पञ्चधा विभजेत् पुनः ।
बाल्यकौमारकादीनि शेषादानीय तद् वदेत् ॥ ३० ॥

१. 'सिंहमा' क. पाठः. २. 'खरगजाः क', ३. 'गजाः' घ. पाठः. ४. 'ल्प्यते य' ख. पाठः.

मरणं मरणं दद्याद् बालो वृद्धो न विक्रमी ।
कुमारयौवनौ युद्धदुर्मदौ हेतिलक्षणे ॥ ३१ ॥
आयुःसङ्ख्यां त्रिभिर्भक्त्वा निःशेषेऽन्धत्वमादिशेत् ।
एकशेषे एकचक्षुर्द्विचक्षुः स्याद् द्विशेषतः ॥ ३२ ॥
हृत्वायुर्वेदसङ्ख्याभिस्तच्छेषैर्वा कुलं नृपात् ।
आयुधर्क्षमृगैरस्य जन्मादिमृगमित्रताम् ॥ ३३ ॥
शत्रुत्वमपि विज्ञाय वदेदिष्टमनिष्टदम् ।
ताम्बूलं द्विगुणीकृत्य त्वेकयुक्तं पुनस्तथा ॥ ३४ ॥
पञ्चघ्नं द्वादशहृतं कृत्वा शेषं विलग्नकम् ।
सप्तविंशहृताच्छेषं नक्षत्रमिति वा वदेत् ॥ ३५ ॥
शुभे वार्केऽथवारूढे शुभं पापेऽशुभं वदेत् ।
एवं परीक्ष्य बहुधायुधलक्षणानि
तत्पृच्छकस्य शुभदाशुभदं हि वाच्यम् ।
कुन्तादिचापमुसलादिषु मौनवर्जं
सञ्चिन्तयेदखिलमन्यदिहोक्तरीत्या ॥ ३६ ॥

अथ धनुर्लक्षणं —

पुष्पवत् पुङ्खमादाय शत्रुवत् पीड्यते धनुः ॥ ३७ ॥
मुष्टिना लक्षमाच्छाद्य श्वासेन सह मोचयेत् ।

अध्यायैरथ सप्तपञ्चकयुतैः श्रीदेवनारायण-
प्रज्ञाकल्पितशिल्परत्नगतपश्चाद्भागमन्तं गतम् ।

---

१. 'वृ', २. 'न्मर्क्षमृ', ३. 'नामव' घ. पाठः. ४. 'त्या ॥ अध्या' क. ख. ग. पाठः.

नानालक्षणमन्त्रलिङ्गमनुबिम्बाकारभूषायुध-
ब्रह्माश्मासनतत्प्रतिष्ठितिभवं जीर्णोद्धराद्यन्वितम् ॥
करुणापूरसम्पन्नगुरूणां सुप्रसादतः ।
अहं सिद्धरसोऽस्म्यज्ञस्तत्पादेभ्यो नमोनमः ॥ ३९ ॥

इति शिल्परत्ने उत्तरभागे शस्त्रलक्षणविधानं नाम
पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥

शिल्परत्नोत्तरभागः समाप्तः ॥

---

शुभं भूयात् ।

# LIST OF SANSKRIT PUBLICATIONS FOR SALE.

| | Rs. | As. | P. |
|---|---|---|---|
| भक्तिमञ्जरी **Bhaktimanjari** (Stuti) by H. H. Svāti Śrī Rāma Varma Mahārāja. | 1 | 0 | 0 |
| स्यानन्दूरपुरवर्णनप्रबन्धः **Syanandurapuravarnana-prabandha** (Kāvya) by H. H. Svāti Śrī Rāma Varma Mahārāja, with the commentary Sundarī of Rājarāja Varma Koil Tampuran. | 2 | 0 | 0 |

---

## Trivandrum Sanskrit Series.

| | | | |
|---|---|---|---|
| No. 1—दैवम् **Daiva** (Vyākaraṇa) by Deva with Puruṣakāra of Kṛṣṇalīlāśukamuni (*out of stock*). | 1 | 0 | 0 |
| No. 2—अभिनवकौस्तुभमाला-दक्षिणामूर्त्तिस्तवौ **Abhinavakaustubhamala and Dakshinamurtistava** by Kṛṣṇalīlāśukamuni (*out of stock*). | 0 | 2 | 0 |
| No. 3—नलाभ्युदयः **Nalabhyudaya** (Kāvya) by Vāmana Bhaṭṭa Bāṇa (*second edition*). | 0 | 4 | 0 |
| No. 4—शिवलीलार्णवः **Sivalilarnava** (Kāvya) by Nīlakaṇṭha Dīkṣita (*out of stock*). | 2 | 0 | 0 |
| No. 5—व्यक्तिविवेकः **Vyaktiviveka** (Alankāra) by Mahima-Bhaṭṭa with commentary (*out of stock*). | 2 | 12 | 0 |
| No. 6—दुर्घटवृत्तिः **Durghatavrtti** (Vyākaraṇa) by Śaraṇadeva (*out of stock*), | 2 | 0 | 0 |
| No. 7—ब्रह्मतत्त्वप्रकाशिका **Brahmatattvaprakasika** (Vedānta) by Sadāśivendrasarasvatī (*out of stock*). | 2 | 4 | 0 |
| No. 8—प्रद्युम्नाभ्युदयम् **Pradyumnabhyudaya** (Nāṭaka) by Ravi Varma Bhūpa (*out of stock*). | 1 | 0 | 0 |

| | RS. | AS. | P. |
|---|---|---|---|
| No. 9—**विरूपाक्षपञ्चाशिका Virupakshapanchasika** (Vedanta) by Virūpākṣanātha with the commentary of Vidyāçakravartin (*out of stock*). | 0 | 8 | 0 |
| No. 10—**मातङ्गलीला Matangalila** (Gajalakṣaṇa) by Nīlakaṇṭha (*out of stock*). | 0 | 8 | 0 |
| No. 11—**तपतीसंवरणम् Tapatisamvarana** (Nāṭaka) by Kulaśekhara Varma with the commentary of Śivarāma (*out of stock*). | 2 | 4 | 0 |
| No. 12—**परमार्थसारम् Paramarthasara** (Vedānta) by Ādiśeṣa with the commentary of Rāghavānanda (*out of stock*). | 0 | 8 | 0 |
| No. 13—**सुभद्राधनञ्जयम् Subhadradhananjaya** (Nāṭaka) by Kulaśekhara Varma with the commentary of Śivarāma (*out of stock*). | 2 | 0 | 0 |
| No. 14—**नीतिसारः Nitisara** (Nīti) by Kāmandaka, with the commentary of Śankarārya (*out of stock*). | 3 | 8 | 0 |
| No. 15—**स्वप्नवासवदत्तम् Svapnavasavadatta** (Nāṭaka) by Bhāsa (*second edition*) | 1 | 8 | 0 |
| No. 16—**प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् Pratijnayaugandharayana** (Nāṭaka) by Bhāsa (*out of stock*). | 1 | 8 | 0 |
| No. 17—**पञ्चरात्रम् Pancharatra** (Nāṭaka) by Bhāsa (*out of stock*). | 1 | 0 | 0 |
| No. 18—**नारायणीयम् Narayaniya** (Stuti) by Nārāyaṇa Bhaṭṭa with the commentary of Deśamangalavārya (*out of stock*). | 4 | 0 | 0 |
| No. 19—**मानमेयोदयः Manameyodaya** (Mīmāmsā) by Nārāyaṇa Bhaṭṭa and Nārāyaṇa Paṇḍita (*out of stock*). | 1 | 4 | 0 |
| No. 20—**अविमारकम् Avimaraka** (Nāṭaka) by Bhāsa (*out of stock*). | 1 | 8 | 0 |
| No. 21—**बालचरितम् Balacharita** (Nāṭaka) by Bhāsa (*out of stock*). | 1 | 0 | 0 |

| | RS. | AS. | P. |
|---|---|---|---|
| No. 22—**मध्यमव्यायोग-दूतवाक्य-दूतघटोत्कच-कर्णभारो-रुभङ्गानि Madhyamavyayoga-Duta-vakya-Dutaghatotkacha-Karna-bhara and Urubhanga** (Nāṭaka) by Bhāsa (*out of stock*). | 1 | 8 | 0 |
| No. 23—**नानार्थार्णवसंक्षेपः Nanartharnavasam-kshepa** (Kośa) by Keśavasvāmin (Part I, 1st and 2nd Kāṇḍas). (*out of stock*). | 1 | 12 | 0 |
| No. 24—**जानकीपरिणयः Janakiparinaya** (Kāvya) by Cakra Kavi (*out of stock*). | 1 | 0 | 0 |
| No. 25—**काणादसिद्धान्तचन्द्रिका Kanadasiddhanta-chandrika** (Nyāya) by Gangādhara-sūri (*out of stock*). | 0 | 12 | 0 |
| No. 26—**अभिषेकनाटकम् Abhishekanataka** by Bhāsa (*out of stock*). | 0 | 12 | 0 |
| No. 27—**कुमारसम्भवः Kumarasambhava** (Kāvya) by Kālidāsa with the two commentaries, Prakāśikā of Aruṇagirināṭha and Vivaraṇa of Nārāyaṇa Paṇḍita (Part I, 1st and 2nd Sargas) (*out of stock*). | 1 | 12 | 0 |
| No. 28—**वैखानसधर्मप्रश्नः Vaikhanasadharmaprasna** (Dharmasūtra) by Vikhanas (*out of stock*). | 0 | 8 | 0 |
| No. 29—**नानार्थार्णवसंक्षेपः Nanartharnavasam-kshepa** (Kośa) by Keśavasvāmin (Part II, 3rd Kāṇḍa) (*out of stock*). | 2 | 4 | 0 |
| No. 30—**वास्तुविद्या Vastuvidya** (Śilpa) (*out of stock*). | 0 | 12 | 0 |
| No. 31—**नानार्थार्णवसंक्षेपः Nanartharnavasam-kshepa** (Kośa) by Keśavasvāmin (Part III, 4th, 5th and 6th Kāṇḍas). | 1 | 0 | 0 |
| No. 32—**कुमारसम्भवः Kumarasambhava** (Kāvya) by Kālidāsa with the two commentaries, Prakāśikā of Aruṇagirināṭha and Vivaraṇa of Nārāyaṇa Paṇḍita (Part II, 3rd, 4th and 5th Sargas) (*out of stock*). | 2 | 8 | 0 |

| | RS. | AS. | P. |
|---|---|---|---|
| No. 33—**वाररुचसंग्रहः Vararuchasamgraha** (Vyākaraṇa) with the commentary Dīpaprabhā of Nārāyaṇa (*out of stock*). | 0 | 8 | 0 |
| No. 34—**मणिदर्पणः Manidarpana** (Nyāya) by Rājaçūḍāmaṇimakhin. | 1 | 4 | 0 |
| No. 35—**मणिसारः Manisara** (Nyāya) by Gopīnātha. | 1 | 8 | 0 |
| No. 36—**कुमारसम्भवः Kumarasambhava** (Kāvya) by Kālidāsa with the two commentaries, Prakāsikā of Aruṇagirināṭha and Vivaraṇa of Nārāyaṇa Paṇḍita (Part III, 6th, 7th and 8th Sargas). | 3 | 0 | 0 |
| No. 37—**आशौचाष्टकम् Asauchashtaka** (Smṛti) by Vararuci with commentary. | 0 | 4 | 0 |
| No. 38—**नामलिङ्गानुशासनम् Namalinganusasana** (Kośa) by Amarasimha with the commentary Tīkāsarvasva of Vandyaghaṭīya Sarvānanda (Part I, 1st Kāṇḍa). | 2 | 0 | 0 |
| No. 39—**चारुदत्तम् Charudatta** (Nāṭaka) by Bhāsa (*out of stock*). | 0 | 12 | 0 |
| No. 40—**अलङ्कारसूत्रम् Alankarasutra** by Rājānaka Ruyyaka with the Alankārasarvasva of Mankhuka and its commentary by Samudrabandha (*second edition*). | 2 | 8 | 0 |
| No. 41—**अध्यात्मपटलम् Adhyatmapatala** (Vedānta) by Āpastamba with Vivaraṇa of Śrī Sankara-Bhagavat-Pāda (*out of stock*). | 0 | 4 | 0 |
| No. 42—**प्रतिमानाटकम् Pratimanataka** by Bhāsa (*out of stock*). | 1 | 8 | 0 |
| No. 43—**नामलिङ्गानुशासनम् Namalinganusasana** (Kośa) by Amarasimha with the two commentaries, Amarakośodghaṭana of Kṣīrasvāmin and Tīkāsarvasva of Vandyaghaṭīya Sarvānanda (Part II, 2nd Kanda, 1-6 vargas). | 2 | 8 | 0 |
| No. 44—**तन्त्रशुद्धम् Tantrasuddha** by Bhaṭṭāraka Vedottama. | 0 | 4 | 0 |

| | RS. | AS. | P. |
|---|---|---|---|
| No. 45—**प्रपञ्चहृदयम् Prapanchahridaya.** | 1 | 0 | 0 |
| No. 46—**परिभाषावृत्तिः Paribhashavritti** (Vyākaraṇa) by Nīlakaṇṭha Dīkṣita. | 0 | 8 | 0 |
| No. 47—**सिद्धान्तसिद्धाञ्जनम् Sidhantasiddhanjana** (Vedānta) by Kṛṣṇānanda Sarasvatī (Part I.) | 1 | 12 | 0 |
| No. 48—**सिद्धान्तसिद्धाञ्जनम् Do.** Do. (Part II). | 2 | 0 | 0 |
| No. 49—**गोलदीपिका Goladipika** (Jyotiṣa) by Parameśvara. | 0 | 4 | 0 |
| No. 50 **रसार्णवसुधाकरः Rasarnavasudhakara** (Alankâra) by Singa Bhūpāla. | 3 | 0 | 0 |
| No. 51—**नामलिङ्गानुशासनम् Namalinganusasana** (Kośa) by Amarasimha with the two commentaries, Amarakośodghāṭana of Kṣīrasvāmin and Tīkāsarvasva of Vandyaghatīya Sarvānanda (Part III, 2nd Kanda, 7-10 vargas). | 2 | 0 | 0 |
| No. 52—**नामलिङ्गानुशासनम् Namalinganusasana** (Kośa) by Amarasimha with the commentary Tîkâsarvasva of Vandyaghatîya Sarvânanda (Part IV, 3rd Kâṇḍa). | 1 | 8 | 0 |
| No. 53 **शाब्दनिर्णयः Sabdanirnaya** (Vedânta) by Prakâśâtmayatîndra. | 0 | 12 | 0 |
| No. 54—**स्फोटसिद्धिन्यायविचारः Sphotasiddhinyayavichara** (Vyâkaraṇa). | 0 | 4 | 0 |
| No. 55—**मत्तविलासप्रहसनम् Mattavilasaprahasana** (Nâṭaka) by Mahendravikramavarman. | 0 | 8 | 0 |
| No. 56—**मनुष्यालयचन्द्रिका Manushyalayachandrika** (Silpa) (*out of stock*). | 0 | 8 | 0 |
| No. 57—**रघुवीरचरितम् Raghuviracharita** (Kâvya). | 1 | 4 | 0 |
| No. 58—**सिद्धान्तसिद्धाञ्जनम् Siddhantasiddhanjana** (Vedânta) by Kṛsnânanda Sarasvatî (Part III). | 2 | 0 | 0 |

| | | RS. | AS. | P. |
|---|---|---|---|---|
| No. 59— | नागानन्दम् **Nagananda** (Nâṭaka) by Harṣadeva with the commentary Vimarśinî of Śivarâma (*out of stock*). | 3 | 4 | 0 |
| No. 60— | लघुस्तुतिः **Laghustuti** by Laghubhattâraka with the commentary of Râghavânanda. | 0 | 8 | 0 |
| No. 61— | सिद्धान्तसिद्धाञ्जनम् **Siddhantasiddhanjana** (Vedânta) by Kṛṣnânanda Sarasvatî (Part IV). | 1 | 4 | 0 |
| No. 62— | सर्वमतसंग्रहः **Sarvamatasamgraha.** | 0 | 8 | 0 |
| No 63— | किरातार्जुनीयम् **Kiratarjuniya** (Kâvya) by Bhâravi with the commentary Sabdârthadîpikâ of Citrabhânu (1, 2 and 3 Sargas). | 2 | 8 | 0 |
| No. 64— | मेघसन्देशः **Meghasandesa** by Kâlidâsa with the commentary Pradîpa of Dakṣiṇâvartanâtha. | 0 | 12 | 0 |
| No. 65— | मयमतम् **Mayamata** (Śilpa) by Mayamuni (*out of stock*). | 3 | 4 | 0 |
| No. 66— | महार्थमञ्जरी **Maharthamanjari** (Darśana) with the commentary Parimala of Maheśvarânanda. | 2 | 4 | 0 |
| No. 67- | तन्त्रसमुच्चयः **Tantrasamuchchaya** (Tantra) by Nârâyaṇa with the commentary Vimarśinî of Śankara (Part I, 1–6 Patalas) (*out of stock*). | 3 | 4 | 0 |
| No. 68— | तत्त्वप्रकाशः **Tattvaprakasa** (Âgama) by Śrî Bhojadeva with the commentary Tâtparyadîpikâ of Śrî Kumâra | 1 | 12 | 0 |
| No. 69— | ईशानशिवगुरुदेवपद्धतिः **Isanasivagurudevapaddhati** (Tantra) by Isânaśiva gurudevamiśra (Part I, Sâmânyapâda) | 1 | 8 | 0 |
| No. 70— | आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्पः **Aryamanjusrimulakalpa** (Part I). | 2 | 8 | 0 |
| No. 71— | तन्त्रसमुच्चयः **Tantrasamuchchaya** (Tantra) by Nârâyaṇa with the commentary Vimarśinî of Śaṅkara (Part II, 7—12 Patalas) (*out of stock*). | 3 | 8 | 0 |

| | RS. | AS. | P. |
|---|---|---|---|
| No. 72—ईशानशिवगुरुदेवपद्धतिः **Isanasivagurudevapaddhati** (Tantra) by Iśānaśivagurudevamiśra (Part II, Mantrapāda). | 4 | 0 | 0 |
| No. 73—ईश्वरप्रतिपत्तिप्रकाशः **Isvarapratipattiprakasa** (Vedānta) by Madhusūdanasarasvatī. | 0 | 4 | 0 |
| No. 74—याज्ञवल्क्यस्मृतिः **Yajnavalkyasmrti** with the commentary Bâlakrîdâ of Viśvarûpâcârya. (Part I — Âcâra and Vyavahâra Adhyâyas). | 3 | 4 | 0 |
| No. 75—शिल्परत्नम् **Silparatna** (Śilpa) by Śrīkumâra (Part I). | 2 | 12 | 0 |
| No. 76—आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्पः **Aryamanjusrimulakalpa** (Part II). | 3 | 0 | 0 |
| No. 77—ईशानशिवगुरुदेवपद्धतिः **Isanasivagurudevapaddhati** (Tantra) by Iśānasivagurudevamiśra (Part III, Kriyāpāda 1—30 Patalas). | 3 | 0 | 0 |
| No. 78—आश्वलायनगृह्यसूत्रम् **Asvalayanagrhyasutra** with the commentary Anāvilā of Haradattācārya. | 2 | 6 | 0 |
| No. 79—अर्थशास्त्रम् **Arthasastra** of Kauṭalya with commentary by Mahāmahopādhyāya T. Ganapati Sāstri (Part I—1 & 2 Adhikaraṇas). | 3 | 12 | 0 |
| No. 80—अर्थशास्त्रम् **Do.** Do. (Part II—3—7 Adhikaranas). | 4 | 0 | 0 |
| No. 81—याज्ञवल्क्यस्मृतिः **Yajnavalkyasmrti** with the commentary Bâlakrīḍa of Viśvarūpācārya (Part II. Prâyaścittâdhyâya). | 2 | 0 | 0 |
| No. 82—अर्थशास्त्रम् **Arthasastra** of Kauṭalya with commentary by Mahāmahopādhyāya T. Ganapati Sastri (Part III, 8—15 Adhikaraṇas). | 3 | 4 | 0 |
| No. 83—ईशानशिवगुरुदेवपद्धतिः **Isanasivagurudevapaddhati** (Tantra) by Īśānaśivagurudevamiśra (Part IV, Kriyāpāda 31–64 Patalas and Yogapāda). | 3 | 8 | 0 |

| | RS. | AS. | P. |
|---|---|---|---|
| No. 84—आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्पः **Aryamanjusrimula-kalpa** (Part III). | 2 | 0 | 0 |
| No. 85—विष्णुसंहिता **Visnusamhita** (Tantra). | 2 | 8 | 0 |
| No. 86—भरतचरितम् **Bharatacarita** (Kâvya). by Kṛṣṇakavi. | 1 | 8 | 0 |
| No. 87—सङ्गीतसमयसारः **Sangitasamayasara** (Sangīta) of Sangītâkara Pârśva-deva. | 1 | 2 | 0 |
| No. 88—काव्यप्रकाशः **Kavyaprakasa** (Alankâra) of Mammaṭabhaṭṭa with two commentaries the Sampradāyaprakāśinī of Śrī Vidyācakravartin and the Sâhityacûdâmaṇi of Bhaṭṭagopâla (Part I, 1–5 Ullâsas). | 3 | 0 | 0 |
| No. 89—स्फोटसिद्धिः **Sphotasiddhi** (Vyākaraṇa) by Bharatamiśra. | 0 | 8 | 0 |
| No. 90—मीमांसाश्लोकवार्त्तिकम् **Mimamsasloka-vartika** with the commentary Kāśikā of Sucaritamiśra (Part I). | 2 | 8 | 0 |
| No. 91—होराशास्त्रम् **Horasastra** of Varāhamihirā-cārya with the Vivaraṇa of Rudra. | 3 | 0 | 0 |
| No. 92—रसोपनिषत् **Rasopanishat.** | 2 | 0 | 0 |
| No. 93—वेदान्तपरिभाषा **Vedantaparibhasha** (Vedānta) of Dharmarājādhvarīndra with the commentary Prakāśika of Peddādīkṣita. | 1 | 8 | 0 |
| No. 94—बृहद्देशी **Brihaddesi** (Sangita) of Matangamuni. | 1 | 8 | 0 |
| No. 95—रणदीपिका **Ranadipika** (Jyotiṣa) of Kumaraganaka. | 0 | 4 | 0 |
| No. 96—ऋक्संहिता **Rksamhita** with the Bhāṣya of Skandasvāmin and the commentary of Veṅkaṭamādhavārya (Part I, 1st Adhyāya in 1st Aṣṭaka). | 1 | 8 | 0 |

| | RS. | AS. | P. |
|---|---|---|---|
| No. 97—**नारदीयमनुसंहिता Naradiyamanusamhita** (Smṛti) with Bhāsya of Bhavasvāmin. | 2 | 0 | 0 |
| No. 98—**शिल्परत्नम् Silparatna** (Silpa) by Śrīkumāra. | 2 | 8 | 0 |

***Apply to:—***

*The Curator*
*for the publication of Sanskrit Manuscripts,*
*Trivandrum.*

## IN THE PRESS.

1. Mīmāmsāślokavārtika with Kāśikāṭīkā of Sucaritamiśra (Part II).
2. Kāvyaprakāśa (Alaṅkāra) with the commentary Sampradāyaprakāśinī of Śrī Vidyācakravartin and the Sāhityacūḍāmaṇi of Bhaṭṭagōpāla (Part II).
3. Prakriyāsarvasva (Vyākaraṇa) of Śrī Nārāyaṇabhaṭṭatiri with commentary.
4. Āryabhaṭīya with the Bhāṣya of Nīlakaṇṭhasomasutvan.
5. Ṛksamhitā with the Bhāṣya of Skandasvāmin and the commentary of Veṅkaṭamādhava (Part II).
6. Haramekhala (Vaidyaka) of Māhuka with commentary.
7. Dattila (Bharata) of Dattila.
8. Hamsasandeśa (Vedānta) with commentary.
9. Bālamārtāṇḍavijaya (Nāṭaka) of Devarāja.
10. Sāhityamīmāmsā.
11. Sāmbapañcāśikā (Stuti) with commentary.
12. Arthaśāstra of Kauṭalya with commentary in Malayalam.

---

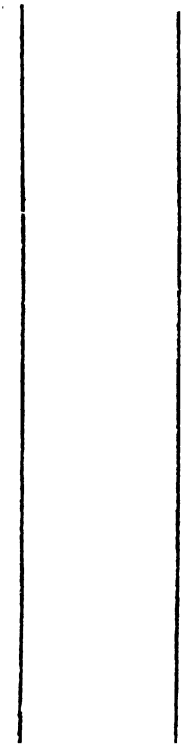
## UNDERTAKEN FOR PUBLICATION.

1. Āśvalāyanagṛhyasūtra with Devasvāmin's Bhāṣya.
2. Pramāṇalakṣaṇa (Mīmāmsā) of Sarvajñātmapāda.
3. Nyāyasārapadapañcikā of Vāsudeva.
4. Sarasvatīkaṇṭhābharaṇa (Vyākaraṇa) of Bhōja with Vṛtti of Nārāyaṇa Daṇḍanātha.
5. Śiśupālavadha with the commentary of Dēvarāja.
6. Sangrāmavijayodaya.
7. Śukasandeśa with the commentaries of Dharmagupta-Gaurīdāsa and Kerala Varmadeva.
8. Pāṇinīyalaghuvivṛti.
9. Vākyapadīya with Prakīrṇakaprakāśa of Helārāja.
10. Uttaranaiṣadhacarita.

---

DATE OF ISSUE

This book must be returned within 3, 7, 14 days of its issue. A fine of ONE ANNA per day will be charged if the book is overdue.



Class No. S.254.5084 Book No. S66257
Vol. :

Author..... KUMAR .....

Title..... शिक्षण रत्न .....

Acc. No. 16467